Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञान स्वभाव और ज्ञेय स्वभाव

पू० श्री कानजी स्वामी के प्रवचन
(समयसार गाथा ३०८ से ३११ तक)

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञान स्वभाव और ज्ञेय स्वभाव

गुजराती लेखक :
ब्र० हरिलाल जैन

हिन्दी अनुवादक :
मगनलाल जैन

प्रकाशक :
सत्साहित्य प्रकाशन एवं प्रचार विभाग
श्री कुन्दकुन्द कहान दि० जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट
ए-४, बापूनगर, जयपुर-३०२०१५

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रथम पांच संस्करण : 8 हजार 500
षष्टम् संस्करण : 2 हजार
(27 मई 1998)
योग : 10 हजार 500

मूल्य : अठारह रुपए

प्रस्तुत संस्करण की कीमत कम करनेवाले दातारों की सूची

श्री भगवानजी भाई कचराभाई शाह, लन्दन	11,885
श्रीमती अचरजकुमारी ध.प. निहालचन्दजी जैन, जयपुर	201
श्री अजीतकुमारजी लुहाड़िया, उदयपुर	51
श्री माणकलालजी ठाकुरिया, उदयपुर	51
श्री हिम्मतकुमारजी मुकेशकुमारजी, उदयपुर	51
कुल योग	12,239

मुद्रक :
जे. के. ऑफसैट प्रिंटर्स
जामा मस्जिद
दिल्ली

Thanks & Our Request

This shastra has been kindly donated by Madhusudan and Manju Shah, London, UK who have paid for it to be "electronised" and made available on the internet.

Our request to you:

1) Great care has been taken to ensure this electronic version of Gnaan Svabhaav Aur Gney Svabhaav (Hindi) is a faithful copy of the paper version. However if you find any errors please inform us on rajesh@AtmaDharma.com so that we can make this beautiful work even more accurate.

2) Keep checking the version number of the on-line shastra so that if corrections have been made you can replace your copy with the corrected one.

Version History

Version Number	Date	Changes
001	13 September 2008	First electronic version

प्रकाशकीय

(षष्टम संस्करण)

'ज्ञानस्वभाव और ज्ञेयस्वभाव' का यह षष्टम संस्करण प्रकाशित करते हुए हमें अतीव्र प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। इस कृति में आत्मा के अकर्त्तृत्व जैसे गूढ़ विषय पर समयसार की 308 से 311 गाथा के आधार पर आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य श्रीकानजी स्वामी के तात्विक प्रवचनों का सार है।

क्रमबद्धपर्याय अर्थात् अकर्त्तावाद जिनागम का महत्त्वपूर्ण एवं चर्चित विषय है। विगत अनेक वर्षों से समाज में यह बहुचर्चित विषय रहा है। जिसका श्रेय पूज्य श्रीकानजी स्वामी को है। इस पुस्तक का नाम 'ज्ञानस्वभाव और ज्ञेयस्वभाव' बहुत सोच समझकर रखा गया है चूंकि आत्मा का ज्ञान स्वभाव है, उसकी पूर्ण प्रगटता केवलज्ञान अर्थात् सर्वज्ञता है। सर्वज्ञता के निर्णय से ज्ञानस्वभाव का निर्णय भी हो जाता है। एक ओर ज्ञेयों का स्वभाव भी अपने-अपने अस्तित्व में रहते हुए किसी जानने वाले की अपेक्षा रखे बिना अपने-अपने स्वभाव में परिणमन करते रहना हैं। वे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सत् होने से निर्बाध रूप से क्रमबद्ध परिणमन करते ही रहते हैं। दूसरी ओर आत्मा का ज्ञान--स्वभाव होने से ज्ञेयों के परिणमन की अपेक्षा रखे बिना ही अपने जानने के स्वभाव के कारण क्रमबद्ध जानता ही रहता है। इसप्रकार आत्मा का तो ज्ञेयों के परिणमनों में किसी प्रकार भी किंचित् मात्र भी कर्त्तापना नहीं है वरन् स्व को जानते हुए उन ज्ञेयों का भी मात्र ज्ञाता ही है।

इसप्रकार 'ज्ञानस्वभाव और ज्ञेयस्वभाव' के यथार्थ निर्णय के माध्यम से सभी वस्तुओं के क्रमबद्ध परिणमन की यथार्थ प्रतीति के द्वारा सभी ज्ञेय पदार्थों के प्रति अत्यन्त उपेक्षाभाव जागृत कर पर से उदासीनता तथा स्व की ओर सन्मुखता रूप वीतरागता उत्पन्न करानेवाला यह महान ग्रन्थ है।

यह आत्मा 'ज्ञान्नस्वभाव और ज्ञेयस्वभाव' की प्रतीति के द्वारा सभी द्रव्यों के क्रमबद्ध परिणमन का निर्णय कर पर से अत्यन्त निरपेक्ष होकर आत्मसन्मुखता का महान पुरुषार्थ जागृत कर परम वीतरागता के मार्ग का उपासक बन सकता है। उपरोक्त कारण से इस ग्रन्थ का नाम 'ज्ञानस्वभाव और ज्ञेयस्वभाव' सार्थक बन पड़ा है।

जो जीव आत्मा का हित साधन करना चाहता है उसे उपरोक्त विषय का यथार्थ निर्णय अवश्य करना चाहिए। इसका निर्णय किए बिना सर्वज्ञ के मार्ग में एक कदम भी

नहीं चला जा सकता और उसका निर्णय होते ही इस आत्मा में सर्वज्ञदेव के मार्ग का अर्थात् मुक्ति के मार्ग का मंगलाचरण हो जाता है।

इस पुस्तक में समाहित महत्वपूर्ण प्रवचनों को संकलित कर प्रकाशन योग्य बनाने में स्व. ब्र. हरिभाई का महत्वपूर्ण योगदान रहा है, साथ ही गुजराती से हिन्दी अनुवाद करने में भी श्री मगनलाल जैन ने अथक श्रम किया है अतः दोनों महानुभाव बधाई के पात्र हैं।

हम श्री भगवानजी भाई कचराभाई शाह, लन्दन का विशेषरूप से आभार मानते हैं; जिन्होंने प्रस्तुत कृति को कम से कम मूल्य में जन-जन तक पहुँचाने हेतु 11,885 रुपये (लागत का 25% प्रतिशत) का आर्थिक सहयोग प्रदान किया है। हमें खेद है कि उनकी धर्मपत्नी श्रीमती डाहीबैन भगवानजी शाह अब हमारे बीच नहीं है।

अन्य जिन महानुभावों ने आर्थिक सहयोग प्रदान किया है उनकी सूची अन्यत्र प्रकाशित की गई है, सभी सहयोगियों का हम हृदय से आभार मानते हैं।

पुस्तक की मुद्रण व्यवस्था सदा की भाँति विभाग के प्रभारी श्री अखिल बंसल ने सम्हाली है अतः वे बधाई के पात्र हैं।

यह महत्त्वपूर्ण कृति आपके जीवन को सफल बनाने में कार्यकारी हो, ऐसी मंगल भावना के साथ –

– नेमीचन्द पाटनी
महामंत्री

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कुन्दकुन्द भगवानके मूल सूत्र

दवियं जं उप्पज्जइ गुणेहिं तं तेहिं जाणसु अणण्णं ।
जह कड़यादीहिं दु पज्जएहिं कणयं अणण्णमिह ॥ ३०८ ॥
जीवस्साजीवस्स दु जे परिणामा दु देसिया सुत्ते ।
तं जीवमजीवं वा तेहिमणण्णं वियाणांहि ॥ ३०९ ॥
ण कुदोचि वि उप्पण्णो जह्मा कज्जं ण तेण सो आदा ।
उप्पादेदि ण किंचि वि कारणमवि तेण ण स होइ ॥ ३१० ॥
कम्मं पडुच्च कत्ता कत्तारं तह पडुच्च कम्माणि ।
उप्पज्जंति य णियमा सिद्धी दु ण दीसए अण्णा ॥ ३११ ॥

अमृतचन्द्राचार्यदेवकी टीका

जोवो हि तावत्क्रमनियमितात्मपरिणामैरुत्पद्यमानो जीव एव नाजीवः एवमजीवोऽपि क्रमनियमितात्मपरिणामैरुत्पद्यमानोऽजीव एव न जीवः, सर्वद्रव्याणां स्वपरिणामैः सह तादात्म्यात् कंकणादिपरिणामैः कांचनवत् । एवं हि जीवस्य स्वपरिणामैरुत्पद्यमानस्याप्यजीवेन सह कार्यकारणभावो न सिद्धयति, सर्व द्रव्याणां द्रव्यांतरेण सहोत्पाद्योत्पादकभावाभावात् तद्सिद्धौ चाजीवस्य जीवकर्मत्वं न सिद्धयति, तद्सिद्धौ च कर्तृकर्मणोरनन्यापेक्षसिद्धत्वात् जीवस्याजीवकर्तृत्वं न सिद्धयति । अतो जीवोऽकर्त्ता अवतिष्ठते ।

मूल गाथाओं का हिन्दी अनुवाद

जो द्रव्य उपजे जिन गुणोंसे, उनसे जान अनन्य वो ।
है जगत्में कटकादि पर्यायोंसे कनक अनन्य ज्यों ॥ ३०८ ॥
जिव-अजिवके परिणाम जो, शास्त्रों विषैं जिनवर कहे ।
वे जीव और अजोव जान, अनन्य उन परिणामसे ॥ ३०९ ॥
उपजै न आत्मा कोई से, इससे न आत्मा कार्य है ।
उपजावता नहिं कोई को, इससे न कारण भी बने ॥ ३१० ॥
रे कर्मआश्रित होय कर्त्ता, कर्म भी करतारके ।
आश्रित हुवे उपजे नियमसे, अन्य नहिं सिद्धी दिखै ॥ ३११ ॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

टीकाका हिन्दी अनुवाद

प्रथम तो जीव क्रमबद्ध ऐसे अपने परिणामोंसे उत्पन्न होता हुआ जीव ही है. अजीव नहीं है; इसप्रकार अजीव भी क्रमबद्ध अपने परिणामोंसे उत्पन्न होता हुआ अजीव ही है, जीव नहीं है; क्योंकि जिसप्रकार (कंकन आदि परिणामोंसे उत्पन्न ऐसे) सुवर्णका कंकनादि परिणामोंके साथ तादात्म्य है उसीप्रकार सर्व द्रव्योंका अपने परिणामोंके साथ तादात्म्य है । इसप्रकार जीव अपने परिणामोंसे उत्पन्न होता है, तथापि उसे अजीवके साथ कार्यकारणभाव सिद्ध नहीं होता, क्योंकि सर्व द्रव्योंको अन्य द्रव्यके साथ उत्पाद्य-उत्पादकभावका अभाव है; वह (कार्यकारणभाव) सिद्ध न होनेसे, अजीवको जीवका कर्मपना सिद्ध नहीं होता; और वह (अजीवको जीवका कर्मपना) सिद्ध न होनेसे, कर्ता-कर्मकी अन्यनिरपेक्षरूपसे (-अन्य द्रव्यसे निरपेक्ष रूपसे स्वद्रव्यमें ही) सिद्धि होनेसे जीवको अजीवका कर्तापना सिद्ध नहीं होता; इसलिये जीव अकर्ता सिद्ध होता है ।

[समयसार गुजराती दूसरी आवृत्ति]

(यह प्रवचन समयसार गाथा ३०८ से ३११ तथा उसकी टीकाके हैं; मूल गाथा तथा टीकामें भरे हुए गम्भीर रहस्यको पूज्य गुरुदेवने इन प्रवचनोंमें अत्यन्त स्पष्टरूपसे समझाया है ।)

-: पहला प्रवचन :-

[आश्विन कृष्णा १२, वीर सं० २४८०]

(१) अलौकिक गाथा और अलौकिक टीका

यह गाथायें अलौकिक हैं और श्री अमृतचन्द्राचार्यदेवने टीका भी ऐसी ही अलौकिक की है । टीकामें क्रमबद्धपर्यायकी बात करके तो आचार्यदेवने जैन-शासनका नियम और जैन-दर्शनका रहस्य

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भर दिया है। भगवान आत्माका ज्ञायकस्वभाव है, वह तो ज्ञाता-दृष्टापनेका ही कार्य करता है। कहीं फेरफार करे ऐसा उसका स्वभाव नहीं है और रागको भी बदलनेका उसका स्वभाव नहीं है, रागका भी वह ज्ञायक है। जीव और अजीव सर्व पदार्थोंकी त्रिकालकी अवस्थायें क्रमबद्ध होती हैं, आत्मा उनका ज्ञायक है–ऐसा ज्ञायक आत्मा सम्यग्दर्शनका विषय है।

(२) जीव–अजीवके क्रमबद्ध परिणाम और आत्माका ज्ञायक-स्वभाव।

[टीका] "जीवो हि तावत् क्रमनियमितात्मपरिणामैरुत्पद्य-मानो जीव एक नाजीवः; एवमजीवोऽपि क्रमनियमितात्मपरिणामैरुत्पद्य-मानोऽजीव एक न जीवः....."

आचार्यदेव कहते हैं कि—"प्रथम तो" अर्थात् सर्वप्रथम यह निर्णय करना चाहिये कि जीव क्रमबद्ध—क्रमनियमित ऐसे अपने परिणामोंसे उत्पन्न होता हुआ जीव ही है, अजीव नहीं है; इसप्रकार अजीव भी क्रमबद्ध अपने परिणामोंसे उत्पन्न होता हुआ अजीव ही है, जीव नहीं है। देखो यह महान सिद्धान्त। जीव या अजीव प्रत्येक वस्तुमें क्रमबद्धपर्याय होती है, उसमें उल्टा–सीधा होता ही नहीं। आजकल अनेक पण्डित और त्यागी आदि लोगोंमें इसके सामने बड़ा विरोध उठा है, क्योंकि इस बातका निर्णय करने जायें तो अपना अभी तकका माना हुआ कुछ भी नहीं रहता। संवत् २००३ मे (प्रवचन–मण्डपके उद्घाटन प्रसंग पर) सर सेठ हुकमचन्दजी इन्दौर वालोंके साथ पं० देवकीनन्दनजी आये थे, उन्हें जब यह बात बतलाई तब वे बड़े आश्चर्यचकित हुए थे कि अहो! ऐसी बात!! यह बात अभी तक हमारे लक्षमें नहीं आई थी। छहों द्रव्योंमें उनकी त्रिकालकी प्रत्येक पर्यायका स्वकाल नियमित है। जगतमें अनन्त जीव हैं और जीवकी अपेक्षा अनन्तगुने अजीव हैं; वे सब द्रव्य अपने अपने

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

क्रम-नियमित परिणामसे उत्पन्न होते हैं। जिस समय जिस पर्यायका क्रम है वह एक समय भी आगे-पीछे नहीं हो सकती। जो पर्याय १०० नम्बरकी हो वह ९९ नम्बरकी नहीं हो सकती और १०० नम्बरकी पर्याय १०१ नम्बरकी भी नहीं हो सकती है। इसप्रकार प्रत्येक पर्यायका स्वकाल नियमित है और समस्त द्रव्य क्रमबद्धपर्यायसे परिणमित होते हैं। अपने स्वभावका निर्णय हुआ वहाँ धर्मी जानता है कि मैं तो ज्ञायक हूँ, मैं किसे बदल सकता हूँ? इसलिये धर्मीके परको बदलनेकी बुद्धि नहीं है; रागको भी बदलनेकी बुद्धि नहीं है, वह रागका भी ज्ञायकरूपसे ही रहता है।

(३) सर्वज्ञभगवान 'ज्ञायक' हैं, 'कारक' नहीं हैं

पहले तो ऐसा निर्णय करना चाहिये कि इस जगतमें ऐसे सर्वज्ञ भगवान हैं कि जिनके आत्माका ज्ञानस्वभाव पूर्ण विकसित हो गया है, और मेरा आत्मा भी ऐसा ही ज्ञानस्वभावी है। जगतके समस्त पदार्थ क्रमबद्धपर्यायरूपसे परिणमित होते हैं; पदार्थकी तीनों-कालकी पर्यायोंका क्रम निश्चित् है; सर्वज्ञदेवने तीनकाल तीनलोककी पर्यायें जानी हैं। जो सर्वज्ञने जाना वह बदल नहीं सकता। तथापि सर्वज्ञदेवने जाना इसलिये वैसी अवस्था होती है—ऐसा भी नहीं है। सर्वज्ञभगवान तो ज्ञायकप्रमाण हैं, वे कहीं पदार्थोंके कारक नहीं हैं; कारकरूप तो पदार्थ स्वयं ही है, प्रत्येक पदार्थ स्वयं ही अपने छह कारकोंरूप होकर परिणमित होता है।

(४) क्रमबद्धपर्यायकी झन्कार

आचार्यदेव पहलेसे ही क्रमबद्धपर्यायकी झन्कार करते आ रहे हैं:—

"जीव पदार्थ कैसा है" उसका वर्णन करते हुए दूसरी गाथामें कहा था कि "क्रमरूप और अक्रमरूप वर्तते हुए अनेक भाव जिसका स्वभाव होनेसे जिसने गुण-पर्यायें अंगीकार की हैं।" पर्याय क्रमवर्ती होती है और गुण सहवर्ती होता है।—ऐसा कहकर वहां जीवकी क्रमबद्धपयायकी बात बतला दी है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तत्पश्चात् ६२ वीं गाथामें कहा है कि—"वर्णादिक भाव, अनुक्रमसे आविर्भाव और तिरोभावको प्राप्त होती हुई ऐसी उन उन व्यक्तियों (पर्यायों) द्वारा पुद्गलद्रव्यके साथ रहते हुए, पुद्गलका वर्णादिके साथ तादात्म्य प्रगट करते हैं।" यहां "अनुक्रमसे आविर्भाव और तिरोभाव" प्राप्त करना कहकर अजीवकी क्रमबद्धपर्याय बतला दी है।

कर्ता-कर्म अधिकारमें भी गाथा ७६-७७-७८ में प्राप्य, विकार्य और निर्वर्त्य—ऐसे तीनप्रकारके कर्मकी बात करके क्रमबद्धपर्यायकी बात जमा दी है। 'प्राप्य' अर्थात्, द्रव्यमें जिस समय जो पर्याय नियमित है उस क्रमबद्धपर्यायको उस समय वह द्रव्य प्राप्त करता है–पहुँच जाता है, इसलिये उसे 'प्राप्यकर्म' कहा जाता है।

(५) ज्ञायकस्वभाव समझे तभी क्रमबद्धपर्याय समझमें आती है

देखो, इसमें ज्ञायकस्वभावकी ओरसे लेना है। ज्ञायककी ओरसे ले तभी यह क्रमबद्धपर्यायकी बात यथार्थ समझमें आ सकती है। जो जीव पात्र होकर अपने आत्माके लिये समझना चाहता हो उसे यह बात यथार्थ रूपसे समझमें आ सकती है। दूसरे हठी जीव तो इसे समझे बिना विपरीत ग्रहण करते हैं और ज्ञायकस्वभावके निर्णयका पुरुषार्थ छोड़कर क्रमबद्धपर्यायके नामसे अपने स्वच्छन्दकी पुष्टि करते हैं। जिसे ज्ञानकी श्रद्धा नहीं है, केवलीकी प्रतीति नहीं है, अन्तरमें वैराग्य नहीं है, कषायकी मंदता भी नहीं है, स्वच्छन्दता बनी है और क्रमबद्धपर्यायका नाम लेता है—ऐसे हठी-स्वच्छन्दी जीवकी यहां बात नहीं है। जो इस क्रमबद्धपर्यायको समझ ले उसे स्वच्छन्द रह ही नहीं सकता, वह तो ज्ञायक हो जाता है। भगवान! क्रमबद्धपर्याय समझाकर हम तो तुझे अपने ज्ञायकआत्माका निर्णय कराना चाहते हैं और यह बतलाना चाहते हैं कि आत्मा परका अकर्ता है। यदि अपने ज्ञायकस्वभावका निर्णय नहीं करेगा तो तू क्रमबद्धपर्यायको समझा ही नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जीव और अजीव समस्त पदार्थोंकी तीनों कालकी पर्यायें क्रमबद्ध हैं—उन सबको जाना किसने ? सर्वज्ञदेवने ॥

"सर्वज्ञदेवने ऐसा जाना"—इसप्रकार सर्वज्ञताका निर्णय किसने किया ?—अपनी ज्ञानपर्यायने ।

वर्तमान ज्ञानपर्याय अल्पज्ञ होनेपर भी उसने सर्वज्ञताका निर्णय किसके समक्ष देखकर किया ?—ज्ञानस्वभावकी ओर देखकर वह निर्णय किया है ।

इसप्रकार जो जीव अपने ज्ञायकस्वभावके निर्णयका पुरुषार्थ करता है उसीको क्रमबद्धपर्यायका निर्णय होता है, और वह जीव परका तथा रागका अकर्ता होकर ज्ञायकभावका ही कर्ता होता है । ऐसे जीवको ज्ञानस्वभावके निर्णयमें पुरुषार्थ, स्वकाल आदि पाँचों समवाय एकसाथ आ जाते हैं ।

(६) इसमें ज्ञायकस्वभावका पुरुषार्थ है इसलिये यह नियतवाद नहीं है

प्रश्नः—गोम्मटसारमें तो नियतवादीको मिथ्यादृष्टि कहा है न ?

उत्तरः—गोम्मटसारमें जो नियतवाद कहा है वह तो स्वच्छन्दीका है; जो जीव सर्वज्ञको नहीं मानता, ज्ञानस्वभावका निर्णय नहीं करता, अन्तरोन्मुख होकर समाधान नहीं किया है, विपरीत भावोंके उछाले कम भी नहीं किये हैं, और 'जैसा होना होगा'—ऐसा कहकर मात्र स्वच्छन्दी होता है और मिथ्यात्वका पोषण करता है, ऐसे जीवको गोम्मटसारमें गृहीतमिथ्यादृष्टि कहा है; किन्तु ज्ञानस्वभावके निर्णयपूर्वक यदि इस क्रमबद्धपर्यायको समझे तो ज्ञायकस्वभावकी ओरके पुरुषार्थ द्वारा मिथ्यात्व और स्वच्छन्द छूट जाये ।

(७) भयका स्थान नहीं किन्तु भयके नाशका कारण

प्रश्नः—क्रमबद्धपर्यायका निर्णय करते हुए शायद स्वच्छन्दी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हो जायेंगे–ऐसा भय है, इसलिये ऐसे भयस्थानमें किसलिये जाना चाहिये ?

उत्तरः—अरे भाई ! क्रमबद्धपर्यायका निर्णय करना अर्थात् अपने ज्ञानस्वभावका निर्णय करना, वह कहीं भयका कारण नहीं है; वह तो स्वच्छन्दके नाशका और निर्भयता होनेका कारण है। ज्ञानस्वभावकी प्रतीतिके बिना, मैं परको बदल दूँ—ऐसी कर्ताबुद्धिसे स्वच्छन्दी हो रहा है, उसके बदले पदार्थोंकी पर्याय उनके अपनेसे ही क्रमबद्ध होती है, मैं उसका कर्ता या बदलनेवाला नहीं हूँ, मैं तो ज्ञायक हूँ—ऐसी प्रतीति होनेसे स्वच्छन्द छूटकर स्वतंत्रताका अपूर्व भान होता है। यह क्रमबद्धपर्यायकी समझ भयका स्थान नहीं है, भय तो मूर्खता और अज्ञानमें होता है, यह तो भयके और स्वच्छन्दके नाशका कारण है।

(८) "ज्ञायकपना" ही आत्माका परम स्वभाव है

आत्मा ज्ञायक वस्तु है, ज्ञान ही उसका परम स्वभाव–भाव है। 'ज्ञायकपना' आत्माका परम भाव है, वह स्व–परके ज्ञातृत्वके सिवा दूसरा क्या कर सकता है ? जैसा 'है' और जैसा 'होता है' उसका वह ज्ञाता है। द्रव्य और गुण वह त्रिकाल सत् और पर्याय वह एक एक समयका सत्, उस सत्का आत्मा ज्ञाता है, किन्तु किसी परका उत्पादक, नाशक या उसमें फेरफार करनेवाला नहीं है। यदि उत्पन्न करना, नाश करना या फेरफार करना माने तो वहाँ ज्ञायक-भावपनेकी प्रतीति नहीं रहती। इसलिये जो ज्ञानस्वभावको नहीं मानता और परमें फेरफार करना मानता है उसे ज्ञायकत्व नहीं रहता किन्तु मिथ्यात्व हो जाता है।

(९) "छूतका रोग" नहीं किन्तु वीतरागताका कारण

कुछ लोग कहते हैं कि आजकल क्रमबद्धपर्याय नामक 'छूतका रोग' फैल रहा है। अरे भाई ! यह क्रमबद्धपर्यायकी प्रतीति तो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वीतरागताका कारण है। जो वीतरागताका कारण है उसे तू रोग कहता है? क्रमबद्धपर्याय न माने तो वस्तु ही नहीं रहती। क्रमबद्ध-पर्यायपना तो वस्तुका स्वरूप है; उसे रोग कहना महान विपरीतता है। द्रव्य प्रतिसमय अपनी क्रमबद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न होता है—ऐसा उसका धर्म है; क्रमबद्धपर्यायमें जिस समय जिस पर्यायका स्वकाल है, उस समय द्रव्य उसी पर्यायको द्रवित होता है–प्रवाहित होता है, ऐसा ही वस्तुस्वभाव है और अपना स्वभाव ज्ञायक है। ऐसे स्वभावको मानना वह रोग नहीं है, किन्तु ऐसे वस्तुस्वभावको न मानकर फेरफार करना मानना वह मिथ्यात्व है और वही महान रोग है।

(१०) अमुक पर्यायें क्रमसे और अमुक अक्रमरूप होती हैं—ऐसा नहीं है

प्रत्येक द्रव्यकी तीनों कालकी पर्यायोंमें क्रमबद्धपना है, उसे जो न माने वह सर्वज्ञताको नहीं मानता, वह आत्माके ज्ञान-स्वभावको नहीं मानता; क्योंकि यदि आत्माके ज्ञानस्वभावकी यथार्थ प्रतीति करे तो उसमें क्रमबद्धपर्यायकी प्रतीति भी अवश्य आ जाती है।

यहाँ क्रमबद्धपर्यायका कथन होरहा है उसमें अनादि अनंतकाल-की समस्त पर्यायें समझ लेना चाहिये। द्रव्यकी अमुक पर्यायें क्रमबद्ध हों और अमुक अक्रमसे हों–ऐसे दो भाग नहीं हैं। कोई ऐसा कहे कि—"अबुद्धिपूर्वक पर्यायें तो ज्ञानकी पकड़में नहीं आती, इसलिये वे तो क्रमबद्ध होती हैं, किन्तु बुद्धिपूर्वककी पर्यायोंमें क्रमबद्धपना लागू नहीं होता, वे तो अक्रमरूपभी हो सकती हैं।"—यह बात सच्ची नहीं है। अबुद्धिपूर्वककी या बुद्धिपूर्वककी कोई भी पर्याय क्रमबद्ध ही होती है। जड़ और चेतन समस्त द्रव्योंकी सभी पर्यायें क्रमबद्ध ही होती हैं। कोई ऐसा कहे कि—"भूतकालकी पर्यायें तो हो चुकी हैं, इसलिये उनमें कोई फेरफार नहीं हो सकता, किन्तु भविष्यकी पर्यायें बाकी हैं, इसलिये उनके क्रममें फेरफार किया जा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सकता है।" ऐसा कहनेवालेको भी पर्यायका क्रम बदलनेकी बुद्धि है वह पर्यायबुद्धि है। आत्मा ज्ञायक है उसकी प्रतीति करनेकी यह बात है। ज्ञायकस्वभावका निर्णय करे तो "मैंने इसका ऐसा किया और उसका वैसा न होने दिया"—ऐसी कर्ताबुद्धिकी सब विपरीत मान्यताओंका भुक्का उड़ जाता है अर्थात् विपरीत मान्यता चूरचूर हो जाती है और अकेली ज्ञायकता रहती है।

(११) ऐसी सत्य बातके श्रवणकी भी दुर्लभता

अभी कई जीवोंने तो यह बात सत्समागमसे यथार्थतया सुनी भी नहीं है। 'मैं ज्ञान हूँ, जगतकी प्रत्येक वस्तु अपनी-अपनी क्रम-बद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न होती है, उसका मैं ज्ञाता हूँ, किन्तु किसीका कहीं बदलनेवाला नहीं हूँ'—ऐसा यथार्थ सत्य सत्समागमसे सुनकर जिसने जाना भी नहीं है; उसे अन्तरमें उसकी सच्ची धारणा कहाँ-से होगी ? और धारणा बिना उसकी यथार्थ रुचि और परिणमन तो कहांसे हो ? आजकल यह बात अन्यत्र कहीं सुननेको भी नहीं मिलती। यह बात समझकर उसका यथार्थ निर्णय करने योग्य है।

(१२) क्रम और वह भी निश्चित्

'जीवो हि तावत्क्रमनियमितात्मपरिणामैरुत्पद्यमानो जीव एव, नाजीवः....' यह मूल टीका है, इसके हिन्दी अर्थमें पंडित जयचंद्रजी-ने ऐसा लिखा है कि—'जीव प्रथम ही क्रमकर निश्चित् अपने परि-णामोंकर उत्पन्न हुआ जीव ही है, अजीव नहीं है।' क्रम तो है ही, और वह भी नियमित, अर्थात् इस द्रव्यमें इस समय ऐसी ही पर्याय होगी—यह भी निश्चित् है।

कोई ऐसा कहे कि—'पर्याय क्रमबद्ध है अर्थात् वह एकके बाद एक क्रमशः होती है—यह ठीक है, किन्तु किस समय कैसी पर्याय होगी वह निश्चित् नहीं है'—तो यह बात सत्य नहीं है। क्रम और वह भी निश्चित् है; किस समयकी पर्याय कैसी होना है वह भी निश्चित् है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यदि ऐसा न हो तो सर्वज्ञने जाना क्या ? अहो ! यह क्रमबद्धपर्यायकी बात जिसको प्रतीतिमें आये उसके ज्ञानस्वभावकी दृष्टि होकर मिथ्यात्व का और अनन्तानुबन्धी कषायका नाश होजाता है; उसके स्वच्छन्दता नहीं किन्तु स्वतंत्रता होती है । निर्मानता, निर्मोहता, पवित्रता जीवनमें प्रगट करना हो तो ऐसे ज्ञायकभावका निश्चय प्रथमसे ही होना चाहिये ।

(१३) ज्ञानस्वभावका पुरुषार्थ और उसमें एक साथ पांच समवाय

अज्ञानी कहते हैं कि—"इस क्रमबद्धपर्यायको मानें तो पुरुषार्थ उड़ जाता है"—किन्तु ऐसा नहीं है । इस क्रमबद्धपर्यायका निर्णय करनेसे कर्ताबुद्धिका मिथ्याभिमान उड़ जाता है और निरन्तर ज्ञायकपनेका सच्चा पुरुषार्थ होता है । ज्ञानस्वभावका पुरुषार्थ न करे उसके क्रमबद्ध पर्यायका निर्णय भी सच्चा नहीं है । ज्ञानस्वभावके पुरुषार्थ द्वारा क्रमबद्धपर्यायका निर्णय करके जहां पर्याय स्वसन्मुख हुई वहां एक समयमें उस पर्यायमें पांचों समवाय आजाते हैं । नाटक समयसारमें पं० बनारसीदासजी भी कहते हैं कि—

टेक डारि एकमैं अनेक खोजै सो सुबुद्धि,
खोजी जीवे वादी मरै सांची कहवति है ।। ४५ ।।

दुराग्रहको छोड़कर एकमें अनेक धर्मोंको ढूँढना सम्यग्ज्ञान है । इसलिये संसारमें जो कहावत है कि "खोजी पावे वादी मरे" सो सत्य है ।

पुरुषार्थ, स्वभाव, काल, नियत और कर्मका अभाव-यह पांचों समवाय एकसमयकी पर्यायमें आ जाते हैं ।

(१४) स्वामी कार्तिकेय अनुप्रेक्षा और गोम्मटसारके कथनकी संधि

स्वामी कार्तिकेय अनुप्रेक्षामें गाथा ३२१-२२-२३ में स्पष्ट कहा है कि जिस समय जैसा होना सर्वज्ञदेवने देखा है, उस समय वैसा ही

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होगा, उसे बदलनेमें कोई समर्थ नहीं है।—जो ऐसा श्रद्धान करता है वह शुद्ध सम्यग्दृष्टि है और जो उसमें शंका करता है वह प्रगटरूपसे मिथ्यादृष्टि है, उसे सर्वज्ञकी श्रद्धा नहीं है।

जो जीव ज्ञानस्वभावकी श्रद्धा नहीं करता और मात्र क्रम-बद्धपर्यायका नाम लेकर स्वच्छन्दसे विषय-कषायका पोषण करता है उसे गोम्मटसारमें गृहीतमिथ्यादृष्टि गिना है; किन्तु निर्मल-ज्ञान-स्वभावकी प्रतीति करके जो जीव क्रमबद्धपर्यायको मानता है उस जीवको कहीं भी मिथ्यादृष्टि नहीं कहा है।

(१५) एक बार यह बात तो सुन !

अहो, आत्माका ज्ञानस्वभाव, जिसमें भव नहीं है, उसका जिसने निर्णय किया वह क्रमबद्धपर्यायका ज्ञाता हुआ, उसे भेदज्ञान हुआ, उसने केवलीको यथार्थरूपसे माना ! प्रभु ! ऐसा ही वस्तुस्वरूप है और ऐसा ही तेरा ज्ञानस्वभाव है, एकबार आग्रह छोड़कर अपनी पात्रता और सज्जनता लाकर यह बात तो सुन।

(१६) रागकी रुचिवाला क्रमबद्धपर्यायको समझा ही नहीं

प्रश्न:—आप कहते हैं कि क्रमबद्धपर्याय होती है, तो फिर क्रमबद्धपर्यायमें जो राग होना होगा वह होता है ?

उत्तर:—भाई ! तेरी रुचि कहां अटकी है ? तुझे ज्ञानकी रुचि है या रागकी ? जिसे ज्ञानस्वभावकी रुचि और दृष्टि हुई है, वह तो फिर अस्थिरताके अल्परागका भी ज्ञाता ही है। और "जो राग होना था वह हुआ"—ऐसा कहकर जो रागकी रुचि नहीं छोड़ता वह तो स्वच्छन्दी-मिथ्यादृष्टि है। जो यह क्रमबद्धपर्यायका स्वरूप समझे उसकी तो दृष्टि पलट जाती है।

(१७) उल्टा प्रश्न—"निमित्त न आये तो.....?"

"ऐसा निमित्त आये तो ऐसा होता है, और निमित्त न आये

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तो नहीं होता''—इस प्रकार जिनके निमित्ताधीन दृष्टि है उन्हें क्रमबद्ध-पर्यायकी यथार्थ प्रतीति नहीं है। 'क्रमबद्धपर्याय होना हो किन्तु निमित्त न आये तो ?' यह प्रश्न ही उल्टा है। क्रमबद्धपर्यायमें जिस समय जो निमित्त है वह भी निश्चित् ही है; निमित्त न हो ऐसा होता ही नहीं।

(१८) दो नई बातें !—समझे उसका कल्याण

एक तो नियमसारकी ''कारणशुद्ध पर्याय'' की बात, और दूसरी यह 'क्रमबद्धपर्याय' की बात।—यह दो बातें सोनगढ़से नई निकली हैं—ऐसा कई लोग कहते हैं; लोगोंमें आजकल यह बात प्रचलित नहीं है इसलिये नई मालूम होती है। शुद्धकारणपर्यायकी बात सूक्ष्म है, और दूसरी यह क्रमबद्धपर्यायकी बात सूक्ष्म है,—यह बात जिसे जम जाये उसका कल्याण हो जाता है ! यह एक क्रमबद्ध-पर्यायकी बात बराबर समझे तो उसमें निश्चय-व्यवहार और उपादान-निमित्त आदि सब स्पष्टीकरण आ जाते हैं। वस्तुकी पर्याय क्रमबद्ध और मैं उसका ज्ञायक—यह समझनेसे सब समाधान हो जाते हैं। भगवान ! अपने ज्ञायकस्वभावको भूलकर तू परके करने-की मान्यतामें रुक गया ? परमें तेरी प्रभुता या पुरुषार्थ नहीं है; इस ज्ञायकभावमें ही तेरी प्रभुता है, तेरा प्रभु तेरे ज्ञायकमन्दिरमें विराजमान है उसके सन्मुख हो और उसकी प्रतीति कर।

(१९) आत्मा अनादिसे ज्ञायकभावरूप ही रहा है

जगतमें एकेन्द्रियसे लेकर पंचेन्द्रिय तकका प्रत्येक जीव और अनंत सिद्धभगवान, और अनन्तानन्त परमाणुओंमें प्रत्येक परमाणु,—वे सब क्रमबद्धरूपसे परिणमित हो ही रहे हैं, मैं उनमें क्या बदल सकता हूँ ? मैं तो ज्ञायक हूँ—ऐसा जो निर्णय करे उसे सम्यग्दर्शन हो जाता है। आत्माका ज्ञानस्वभाव है वह अनादि अनंत जाननेका ही कार्य करता है। आत्मा तो अनादिकालसे ज्ञायकभावरूप

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ही रहा है, किन्तु अज्ञानीको मोह द्वारा वह अन्यथा अध्यवसित हुआ है—यह बात प्रवचनसारकी २०० वीं गाथामें कही है। आत्मा तो ज्ञायक होनेपर भी अज्ञानी उसकी प्रतीति नहीं करता, और "मैं पर का कर्ता हूँ"—ऐसा मोह द्वारा अन्यथा मानता है।

(२०) कथंचित् क्रम-अक्रमपना किसप्रकार है ?

कोई ऐसा कहता है कि—"जीवकी पर्यायमें कुछ क्रमबद्ध हैं और कुछ अक्रमरूप हैं; तथा शरीरादि अजीवकी पर्यायमें भी कुछ क्रमबद्ध हैं और कुछ अक्रमरूप हैं।"—वह सारी बात वस्तुके द्रव्य-गुण-पर्यायसे विपरीत है, ज्ञानस्वभावसे विपरीत है और केवलीसे भी विपरीत है अर्थात् सूत्रसे भी विपरीत है। वस्तुमें ऐसा क्रम-अक्रमपना नहीं है किन्तु पर्याय अपेक्षासे क्रमबद्धपना; और गुण सहवर्ती हैं उस अपेक्षासे अक्रमपना—इसप्रकार वस्तु क्रम-अक्रमरूप है।

(२१) केवलीको मानता है वह कुदेवको नहीं मानता

कोई ऐसा कहता था कि—"जैसा केवलीने देखा वैसा हुआ है, इसलिये जो फिरका (संप्रदाय) मिला और जैसे गुरु मिले (-वे भले ही मिथ्या हों तथापि) उनमें फेरफार करनेकी उतावल नहीं करना चाहिये; क्योंकि कुदरतके नियममें वैसा आया है इसलिये उसे बदलना नहीं चाहिये।"

—किन्तु भाई ! तुझे केवलज्ञानका विश्वास हो गया है ? और कुदरतका नियम अर्थात् वस्तुस्वरूप जम गया है ? जिसे केवल-ज्ञानका विश्वास हो गया है और वस्तुस्वरूप समझमें आ गया उसके अन्तरमें गृहीत-मिथ्यात्व रहता ही नहीं; कुधर्मको या कुगुरुको माने ऐसा क्रम उसके होता ही नहीं। इसलिये सम्यक्त्वी जीव कुधर्म-कुगुरुका त्याग करे तो उससे कहीं उसके पर्यायकी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

क्रमबद्धता टूट जाती है—ऐसा नहीं है। सच्चे पुरुषार्थमें निर्मल क्रमबद्ध पर्याय होती है।

(२२) ज्ञायकस्वभाव

जो द्रव्य जिन गुणोंसे उत्पन्न हो–अर्थात् जिस पर्यायरूपसे परिणमित हो उसीके साथ वह तन्मय है। अहो! द्रव्य स्वयं उस-उस पर्यायके साथ तन्मय होकर परिणमित हुआ है, वहां दूसरा कोई उसे क्या करेगा? आत्मा तो परम पारिणामिक स्वभावरूप ज्ञायक है; ज्ञायकभावरूप रहना ही उसका स्वभाव है। ऐसे स्वभावका निर्णय किया वहां स्वभावकी ओरके पुरुषार्थसे शुद्ध पर्याय होती जाती है।

(२३) "क्रमबद्धको नहीं मानता वह केवलीको नहीं मानता"

"बस! जैसा निमित्त आये वैसी पर्याय होती है; हम क्रमबद्धको नहीं मानते।" ऐसा कहनेवाला केवलीभगवान को भी नहीं मानता, और वास्तवमें वह आत्माको भी नहीं मानता। क्रमबद्धपर्यायका अस्वीकार करना वह ज्ञानस्वभावका ही अस्वीकार करने जैसा है। भाई! यह क्रमबद्धपर्याय कहीं किसीके घरकी कल्पना नहीं है, किन्तु वस्तुके घरकी बात है; वस्तुका ही स्वरूप ऐसा है। (कोई न माने तो उससे कहीं वस्तुका स्वरूप नहीं बदल सकता।

(२४) ज्ञानस्वभावकी ओर पुरुषार्थको मोड़े बिना क्रमबद्धपर्याय समझमें नहीं आती

"शुभ–अशुभ भाव भी जैसे क्रमबद्ध थे वैसे आये;" ऐसा कहकर जो जीव रागके पुरुषार्थमें ही अटक रहा है और ज्ञानस्वभावकी ओर पुरुषार्थको नहीं मोड़ता, वह वास्तवमें क्रमबद्धपर्यायको समझा ही नहीं है, किन्तु मात्र बातें करता है। ज्ञानस्वभावका निर्णय करनेसे रागकी रुचि छूट जाती है और तभी क्रमबद्धपर्यायका सच्चा निर्णय होता है। भाई! तू किसके समक्ष देखकर क्रमबद्धपर्याय

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मानता है ? जिसने ज्ञायकस्वभावकी ओर देखकर क्रमबद्धपर्यायका निर्णय किया, वह रागका भी ज्ञाता ही हो गया है; यह राग बदलकर इस समय ऐसा राग करूँ, इसप्रकार रागको बदलनेकी बुद्धिमेंसे उसका वीर्य हट गया और ज्ञानस्वभावकी ओर ढल गया; उसके राग दूर होनेका क्रम चालू हो गया है; वर्तमान साधकदशा हुई है और उसी पुरुषार्थसे क्रमबद्धपर्यायके क्रममें अल्पकालमें केवलज्ञान भी आयेगा, उसका पुरुषार्थ चल रहा है। ज्ञानीको क्रमबद्धपर्यायके निर्णयमें स्वभावकी दृष्टिसे प्रयत्न चालू ही है, वह ज्ञानकी अधिकता-रूप ही अर्थात् भूतार्थके आश्रित ही परिणमित होता है; उसमें न उतावल है और न प्रमाद है। प्रवचनसारकी २०२ वीं गाथामें पं० हेमराजजी कहते हैं कि—विभावपरिणतिको छूटता न देखकर सम्यग्दृष्टि जीव आकुल-व्याकुल भी नहीं होता और समस्त विभाव-परिणतिको टालनेका पुरुषार्थ किये बिना भी नहीं रहता; भूतार्थ-स्वभावका आश्रय करके वर्तता है उसमें उसे पुरुषार्थ बना ही रहता है। एक साथ पाँचों समवाय उसमें आ जाते हैं।

(२५) अपने-अपने अवसरोंमें प्रकाशमान रहते हैं...

प्रवचनसार गाथा ९९ "सदवट्ठिदं सहावे दव्वं....." इत्यादिमें आचार्यदेवने क्रमबद्धपर्यायका सिद्धांत अलौकिक रीतिसे रख दिया है। हारके मोतीके दृष्टांतसे, द्रव्यके परिणाम अपने-अपने अवसरों-में प्रकाशमान रहते हैं—यह बात समझाकर क्रमबद्धपर्यायका स्वरूप एकदम स्पष्ट कर दिया है। और एक ही समयमें उत्पाद-व्यय-ध्रुव होने पर भी उन तीनोंका भिन्न-भिन्न लक्षण है—नाश अर्थात् व्यय, नष्ट होनेवाले भावके आश्रित है; उत्पाद, उत्पन्न होनेवाले भावके आश्रित है और ध्रौव्य स्थित रहनेवाले भावके आश्रित है।—इस-प्रकार प्रतिसमय उत्पाद-व्यय-ध्रुव कहकर उसमें भी क्रमबद्धपर्याय-की साँकल बना दी है। (देखो गाथा १०१)

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(२६) 'सत्' और उसे जाननेवाला ज्ञानस्वभाव

अहो ! भगवन्तोंने जंगलमें निवास करके; अपने ज्ञानमें वस्तुस्वरूपको ग्रहण करके तादृश वर्णन किया है। एक ओर सम्पूर्ण सत्का ज्ञेय पिण्ड जगतमें पड़ा है और दूसरी ओर उसे जाननेवाला ज्ञानस्वभाव है। महासत्ता सत्, अवांतरसत्ता सत्, जड़-चेतन प्रत्येक द्रव्य त्रिकाल सत् और उसकी प्रत्येक समयकी पर्याय भी क्रमबद्धप्रवाहमें उसके अपने स्वकालसे सत्, और इन सबको जाननेवाली ज्ञानपर्याय भी सत्।-इसप्रकार सब क्रमबद्ध और व्यवस्थित सत् है। जहाँ उसका निर्णय किया वहाँ अपनेको ज्ञातृत्व हो रहा और कर्तृत्वकी मिथ्या-बुद्धि दूर हो गई। सत्का ज्ञाता न रहकर उस सत्को बदलना चाहे वह मिथ्याबुद्धि है।

(२७) ज्ञानस्वभावके निर्णयमें पाँचों समवाय आ जाते हैं

समस्त पर्यायें तो क्रमबद्ध ही हैं, किन्तु उसका निर्णय कौन करता है ? ज्ञाताका ज्ञान ही उसका निर्णय करता है। जिस ज्ञानने ऐसा निर्णय किया उसने अपना (ज्ञानस्वभावका) निर्णय भी साथ ही कर लिया है। जहाँ स्वभावसन्मुख होकर ऐसा निर्णय किया वहां—

(१) स्वभावकी ओरका सम्यक् "पुरुषार्थ" आया,

(२) जो शुद्धता प्रगट हुई है वह स्वभावमेंसे हुई है इसलिये "स्वभाव" भी आया,

(३) उस समय जो निर्मल पर्याय प्रगट होनी थी वही प्रगटी है, इसलिये "नियत" भी आया,

(४) जो निर्मलदशा प्रगट हुई है वही उस समयका स्वकाल है, इसप्रकार स्वकाल भी आ गया,

(५) उस समय निमित्तरूप कर्मके उपशमादि स्वयं वर्तते हैं, इसप्रकार 'कर्म' भी अभावरूप निमित्तरूपसे आ गया,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

—उपरोक्तानुसार स्वभावसन्मुख पुरुषार्थमें पाँचों समवाय एक-साथ आ जाते हैं।

(२८) उदीरणा—संक्रमणादिमें भी क्रमबद्धपर्यायका नियम

कर्मकी उपशम, उदीरणा, संक्रमणादि अवस्थाओंका शास्त्रमें वर्णन आता है, वह सब अवस्थायें भी क्रमबद्ध ही हैं; शुभभावसे जीवने असाता प्रकृतिका साता रूपसे संक्रमण किया—ऐसा कथन आता है, परन्तु वहां, कर्मकी वह अवस्था होना नहीं थी और जीवने की—ऐसा नहीं है; किन्तु वैसी अवस्था होनेके समय जीवके वैसे परिणाम निमित्त होते हैं—ऐसा बतलाया है। सर्वत्र एक ही अबाधित नियम है कि पदार्थोंकी अवस्था क्रमबद्ध है और आत्मा ज्ञायक है—फेरफार करनेवाला नहीं है। जीवने शुभभाव किये और कर्ममें असाता पलटकर साता हुई, वहाँ उस कर्मकी अवस्थामें फेरफार तो हुआ है, किन्तु उससे कहीं उसको अवस्थाका क्रम नहीं टूटा है; और जीवने शुभभाव करके उस अजीवमें फेरफार किया—ऐसा भी नहीं है; असाता बदलकर साता हुई वहाँ ऐसा ही उस अजीवको अवस्थाका क्रम था।

(२९) द्रव्य सत्, पर्याय भी सत्

लोग कहते हैं कि—जीव सब छोड़कर चला गया; किन्तु वहाँ उसने कहीं जीवत्व छोड़ा है? जीव तो जीवरूप रहकर ही अन्यत्र गया है न! जिसप्रकार जीव जीवरूपसे सत् रहा है, उसीप्रकार उसकी प्रत्येक समयकी पर्याय भी उस-उस समयका सत् है, वह बदलकर दूसरे समयकी पर्यायरूप नहीं हो जाती।

(३०) ज्ञायकके निर्णय बिना सब पढ़ाई उलटी है

मैं ज्ञान हूँ-ज्ञायक हूँ, ऐसा न मानकर परमें फेरफार करना मानता है वह बुद्धि ही मिथ्या है। भाई! आत्मा ज्ञान है-इस बातके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निर्णय बिना तेरी सब पढ़ाई उलटी है; तेरे तर्क और न्याय भी विपरीत हैं। ज्ञानस्वभावकी गम पड़े बिना आगम भी अनर्थकारी हो जाते हैं। शास्त्रमें निमित्तसे कथन आये वहां अज्ञानी अपनी विपरीत दृष्टिके अनुसार उसका आशय लेकर उलटा मिथ्यात्वका पोषण करता है।

(३१) "मैं तो ज्ञायक हूँ"

सब जीवोंकी पर्याय क्रमबद्ध है तो मैं किसे बदल सकता हूँ? सर्व अजीवोंकी पर्याय भी क्रमबद्ध है तो मैं किसे पलट सकता हूँ?—मैं तो ज्ञायक हूँ; ज्ञायकत्व ही मेरा परम स्वभाव है। मैं ज्ञाता ही हूँ, किसीको बदलनेवाला नहीं हूँ। किसीका दुःख मिटा दूँ या सुखी कर दूँ यह बात मुझमें नहीं है—इसप्रकार अपने ज्ञायक आत्माका निर्णय करना वह सम्यग्दर्शन है।

(३२) अपनी मानी हुई सब बातको बदलकर यह बात समझना पड़ेगी

सोलापुरमें अधिवेशन के समय विद्वत् परिषदने इस क्रमबद्ध-पर्यायके सम्बन्धमें चर्चा उठाई थी, किन्तु उसका कोई निर्णय नहीं आया; ज्योंका त्यों गीला ही समेट लिया; क्योंकि जो इस बातका निर्णय करने लगें तो, निमित्तके कारण कहीं फेरफार होता है—यह बात नहीं रहती और अभी तकका रटा हुआ सब बदलना पड़ता है। किन्तु वह सब बदलकर, क्रमबद्धपर्याय जिसप्रकार कही जाती है उसका निर्णय किये बिना किसीप्रकार श्रद्धा-ज्ञान सच्चे नहीं हो सकते।

(३३) क्रमबद्ध परिणमित होनेवाले ज्ञायकका अकर्तृत्व

आत्मा ज्ञानस्वभावी वस्तु है; ज्ञान उसका परम स्वभाव है; और ज्ञानके साथ श्रद्धा, चारित्र, आनन्द, वीर्य इत्यादि अनन्त गुण रहते हैं। द्रव्य परिणमित होनेसे उन समस्त गुणोंका क्रमानुसार परिणमन होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मा ज्ञायक है इसलिये उसका स्वभाव स्व-परको जानने का है; परको करे या राग द्वारा परका कारण हो ऐसा उसका स्वभाव नहीं है, और पर उसका कुछ करे या स्वयं परको कारण बनाये—ऐसा भी स्वभाव नहीं है; इसप्रकार अकारणकार्यस्वभाव है।

यहां सर्वविशुद्धज्ञान-अधिकारमें यह क्रमबद्धपर्यायकी बात लेकर आचार्यदेवने जीवका अकर्तृत्व सिद्ध किया है, अर्थात् जीव ज्ञायक ही है-ऐसा समझाया है। जीव ज्ञानस्वभावी है, उसके अनंत गुणोंकी समय-समयकी पर्यायें क्रमबद्ध ही उत्पन्न होती हैं और वे जीवके साथ एकमेक हैं। तीनकालकी प्रत्येक पर्याय अपने स्वकाल-में ही उत्पन्न होती है, कोई भी पर्याय उलटी-सीधी उत्पन्न नहीं होती।

(३४) पुरुषार्थका महान प्रश्न

इसमें महान प्रश्न यह है कि-"तब फिर पुरुषार्थ कहां रहा ?"

समाधान—यह निर्णय किया वहां मात्र ज्ञातापना हो रहा, इसलिये परमें फेरफार करनेकी बुद्धिसे हटकर पुरुषार्थका बल स्वभावकी ओर ढल गया। इसप्रकार ज्ञानके साथ वीर्यगुण (पुरु-षार्थ) भी साथ ही है। ज्ञानको क्रमबद्धपर्यायके साथ स्वभावकी ओरका पुरुषार्थ भी साथ ही वर्तता है; क्रमबद्धपर्यायमें पुरुषार्थ कहीं पृथक् नहीं रह जाता। क्रमबद्धपर्यायका निर्णय करके ज्ञान स्वोन्मुख हुआ वहां उसके साथ वीर्य, सुख, श्रद्धा, चारित्र, अस्तित्व इत्यादि अनन्तगुण एकसाथ ही परिणमित होते हैं, इसलिये इसमें पुरुषार्थ भी साथ ही है।

(३५) "ज्ञापक" और "कारक"

अनादि-अनंतकालमें किस समय किस द्रव्यकी कैसी पर्याय है वह सर्वज्ञदेवने वर्तमानमें प्रत्यक्ष जान लिया है; किन्तु सर्वज्ञदेव-ने जाना इसलिये वे द्रव्य वैसी क्रमबद्धपर्यायरूपसे परिणमित होते

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हैं—ऐसा नहीं है; किन्तु उस-उस समयकी निश्चित् क्रमबद्धपर्यायरूपसे परिणमित होनेका द्रव्योंका ही स्वभाव है। सर्वज्ञका केवलज्ञान तो 'ज्ञापक' अर्थात् बतलानेवाला है, वह कहीं पदार्थोंका कारक नहीं है। छहों द्रव्य ही स्वयं अपने-अपने छह कारकरूपसे परिणमित होते हैं।

-: दूसरा प्रवचन :-

[आश्विन कृष्णा १३, वीर सं० २४८०]

पर्याय क्रमबद्ध होने पर भी शुद्धस्वभावके पुरुषार्थ बिना शुद्धपर्याय कभी नहीं होती। ज्ञानस्वभावकी प्रतीतिका अपूर्व पुरुषार्थ करे उसीको सम्यग्दर्शनादि निर्मल पर्यायें क्रमबद्ध होती हैं।

(३६) जिसका पुरुषार्थ ज्ञायककी ओर ढला उसीको क्रमबद्धकी श्रद्धा हुई

"अहो ! मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञान ही मेरा परम स्वभाव है"—ऐसे निर्णयका अन्तरमें प्रयत्न करे उसके ऐसा निर्णय हो जाता है कि वस्तुका ऐसा ही स्वभाव है और सर्वज्ञदेवने केवलज्ञानसे ऐसा ही जाना है। जिस जीवने अपने ज्ञानमें ऐसा निर्णय किया उसे सर्वज्ञसे विरुद्ध कथन करनेवाले (अर्थात् निमित्तके कारण कुछ फेरफार होता है या रागसे धर्म होता है-ऐसा माननेवाले) कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्रकी मान्यता छूट गई है; उसका पुरुषार्थ ज्ञानस्वभावकी ओर ढला है और उसीको सर्वज्ञदेवकी तथा क्रमबद्धपर्यायकी यथार्थ श्रद्धा हुई है।

(३७) सर्वज्ञदेवको न माननेवाले

कोई ऐसा कहे कि "सर्वज्ञदेव भविष्यकी पर्यायको वर्तमानमें नहीं जानते, किन्तु जब वह पर्याय होगी तब वे उसे जानेंगे !"—

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तो ऐसा कहनेवालेको सर्वज्ञकी श्रद्धा भी नहीं रही। भाई रे! भविष्यके परिणाम होंगे तब सर्वज्ञदेव जानेंगे—ऐसा नहीं है, सर्वज्ञ-देवको तो पहलेसे ही तीनकाल-तीनलोकका ज्ञान वर्त रहा है। तुझे ज्ञायकरूपसे नहीं रहना है किन्तु निमित्त द्वारा क्रम बदलना होसकता है ऐसा मानना है, यह तेरी दृष्टि ही विपरीत है। ज्ञान-स्वभावकी दृष्टि करनेसे पर्यायका निर्मल क्रम प्रारम्भ हो जाता है, यह नियम है।

जीव-अजीवके सर्व परिणाम क्रमबद्ध जैसे हैं वैसे सर्वज्ञदेवने जाने हैं और सूत्रमें भी वैसे ही बतलाये हैं; इसलिये आचार्यदेवने गाथामें कहा कि—"जोवस्साजीवस्स दु जे परिणामा दु देसिया सुत्ते ...." जीव-अजीवके क्रमबद्ध परिणाम जैसे हैं वैसे ही—उन्हीं सब प्रकारोंके सर्वज्ञदेव ज्ञाता हैं, किन्तु उनके कारक नहीं हैं।

(३८) जो आत्माका ज्ञायकपना नहीं मानता वह केवली आदिको नहीं मानता

जीव प्रतिसमय अपने क्रमबद्धपरिणामरूपसे उत्पन्न होता है; जीवमें अनन्त गुण होनेसे एक समयमें उन अनन्त गुणोंके अनंत परिणाम होते हैं; उनमें प्रत्येक गुणके परिणाम प्रतिसमय नियमित क्रमबद्ध ही होते हैं।—ऐसे वस्तुस्वभावका निर्णय करनेसे ज्ञान स्वसन्मुख होकर अकर्तारूपसे—साक्षीभावसे परिणमित हुआ, वहाँ साधकदशा होनेसे अभी अस्थिरताका राग भी होता है किन्तु ज्ञान तो उसका भी साक्षी है। स्व-परप्रकाशक ज्ञान विकसित हुआ उसकी क्रमबद्ध-पर्याय ऐसी ही है कि उस समय ज्ञायकको जानते हुए वैसे रागको भी जाने। ऐसे ज्ञायकपनेको न माने और पर्यायके क्रममें फेरफार करना माने तो वह जीव आत्माके ज्ञानस्वभावको नहीं मानता; केवलीभगवानको भी वह नहीं मानता और केवलज्ञानके साधक गुरु कैसे होते हैं उन्हें भी वह नहीं जानता। क्रमबद्धपर्यायकी प्रतीति करके जिसने अपने ज्ञानस्वभावको प्रतीतिमें लिया उसे सम्यग्दर्शनादि हुए

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हैं और उसीने वास्तवमें केवलीभगवानको, उनके शास्त्रोंको और गुरु-को माना है।

(३९) पर्याय क्रमबद्ध होनेपर भी, पुरुषार्थोंको ही सम्यग्दर्शनादि निर्मल पर्यायें होती हैं

देखो, इसमें आत्माके ज्ञायकस्वभावके पुरुषार्थकी बात है। "क्रमबद्धपर्याय" का ऐसा अर्थ नहीं है कि जीव चाहे जैसे कुधर्मको मानता हो तथापि उसे सम्यग्दर्शन हो सकता है। अथवा चाहे जैसे तीव्र विषय-कषायोंमें वर्तता हो या एकेन्द्रियादि पर्यायमें वर्तता हो तथापि उसे भी क्रमबद्धरूपसे उस पर्यायमें सम्यग्दर्शनादि हो जायें ऐसा कभी कहीं होता ! जो कुधर्मको मानते हैं, तीव्र विषय-कषायमें वर्तते हैं, या एकेन्द्रियमें पड़े हैं, उन्हें कहाँ अपने ज्ञानस्वभावकी या क्रमबद्धपर्यायकी खबर है ? पर्याय क्रमबद्ध होने पर भी शुद्ध-स्वभावके पुरुषार्थ बिना कदापि शुद्धपर्याय नहीं होती। ज्ञानस्वभावकी प्रतीतिका अपूर्व पुरुषार्थ करे उसीको सम्यग्दर्शनादि निर्मल पर्यायें क्रमबद्ध होती हैं और जो वैसा पुरुषार्थ नहीं करता उसे क्रमबद्ध मलिन पर्याय होती है। पुरुषार्थके बिना ही हमें सम्यग्दर्शनादि निर्मलदशा हो जायेगी—ऐसा कोई माने तो वह क्रमबद्धपर्यायका रहस्य समझा ही नहीं है। जो जीव कुदेवको, कुगुरुको, कुधर्मको मानता है और स्वच्छन्दतासे तीव्र कषायोंमें वर्तता है—ऐसे जीवको क्रमबद्धपर्यायकी श्रद्धा ही नहीं है। भाई ! अपने ज्ञानस्वभावके पुरुषार्थ बिना तूने क्रमबद्धपर्यायको कहांसे जाना ? जबतक कुदेव-कुधर्म आदिको माने तबतक उसकी क्रमबद्धपर्यायमें सम्यग्दर्शनकी योग्यता हो ही नहीं सकती। सम्यग्दर्शनकी योग्यतावाले जीवको उसके साथ ज्ञान-का विकास, स्वभावका पुरुषार्थ आदि भी योग्य ही होते हैं; एकेन्द्रियपना आदि पर्यायमें उसप्रकारके ज्ञान, पुरुषार्थ आदि नहीं होते, ऐसा ही उस जीवकी पर्यायका क्रम है। यहां तो यह बात है कि पुरुषार्थ द्वारा जिसने ज्ञानस्वभावकी प्रतीति की उसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सम्यग्दर्शन हुआ, इसलिये परका और रागादिका अकर्ता हुआ और उसीने क्रमबद्धपर्यायको यथार्थ रूपसे जाना है। अभी तो कुदेव और सुदेवका निर्णय करनेकी भी जिसके ज्ञानमें शक्ति नहीं है, उस जीवमें ज्ञायकस्वभावका और अनन्त गुणोंकी क्रमबद्धपर्यायका निर्णय करनेकी शक्ति तो कहांसे होगी ? और यथार्थ निर्णयके बिना क्रमबद्ध-पर्यायमें शुद्धता हो जाये—ऐसा नहीं होता।

(४०) "अनियतनय" या "अकालनय" के साथ क्रमबद्धपर्यायका विरोध नहीं है

प्रवचनसारके परिशिष्टके ४७ नयोंमें २७वें अनियतनयसे आत्माको "अनियत" कहा है, परन्तु अनियत अर्थात् अक्रमबद्ध—ऐसा उसका अर्थ नहीं है। वहां पानीकी उष्णताका उदाहरण देकर समझाया है कि जिसप्रकार उष्णता पानीका नित्यस्थायी स्वभाव नहीं है किन्तु उपाधिभाव है, उसीप्रकार उस विकारकी अपेक्षासे आत्माको अनियत कहा है। इसीप्रकार ३१वें बोलमें वहां "अकालनय" कहा है, उसमें भी कहीं इस क्रमबद्धपर्यायके नियमसे विरुद्ध बात नहीं है; कहीं क्रमबद्धपर्यायको तोड़कर वह बात नहीं है। (इन अनियतनय तथा अकालनय सम्बन्धी विशेष समझके लिये आत्मधर्ममें प्रकाशित होनेवाले पूज्य गुरुदेवके प्रवचन पढ़ें।)

(४१) जैनदर्शनकी मूलवस्तुका निर्णय

मूल वस्तुस्वभाव क्या है उसका पहले बराबर निर्णय करना चाहिये। आत्माका ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव क्या है ? और ज्ञेय पदार्थोंका क्रमबद्धस्वभाव क्या है ?—उसके निर्णयमें विश्वदर्शनरूप जैन-दर्शनका निर्णय आ जाता है; किन्तु अज्ञानियोंको उसका निर्णय नहीं है।

देखो, यह मूलवस्तु है; इसका पहले निर्णय करना चाहिये। इस मूलवस्तुके निर्णय बिना धर्म नहीं हो सकता। जिस प्रकार कोई

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आदमी किसी दूसरे आदमीके पास पाँच हजारकी उगाहीके लिये जाये; वहाँ कर्जदार आदमी उसे अच्छी-अच्छी मिठाइयोंका भोजन कराये; किन्तु लेनदार कहे कि भाई ! भोजनकी बात पीछे, पहले मुख्य (मूल) बात करो; यानी मैं पाँच हजार रुपये लेने आया हूँ; उनको पहले व्यवस्था कर दो;-इस प्रकार वहाँ भी मुख्य बात पहले करते हैं; उसी प्रकार यहाँ मुख्य (मूल) रकम यह है कि आत्मा ज्ञान-स्वभावी है उसका निर्णय करना चाहिये। आत्मा ज्ञायकस्वभाव है और पदार्थोंकी पर्यायका क्रमबद्धस्वभाव है—उसका जो निर्णय नहीं करता, और "ऐसा निमित्त चाहिये तथा ऐसा व्यवहार चाहिये" -इसप्रकार व्यवहारकी रुचिमें रुक जाता है उसका किंचित् भी हित नहीं होता। अहो ! मैं ज्ञायक हूँ—यह मूल बात जिसकी प्रतीतिमें आ गई उसे क्रमबद्धपर्याय जमे बिना नहीं रहेगी; और जहाँ यह बात जमी वहाँ सब स्पष्टीकरण हो जाते हैं।

(४२) हारके मोतियोंके दृष्टान्त द्वारा क्रमबद्धपर्यायकी समझ; और ज्ञानको सम्यक् करनेकी रीति

प्रवचनसारकी ९९ वीं गाथामें लटकते हुए हारका दृष्टांत देकर उत्पाद-व्यय-ध्रुव सिद्ध किये हैं; उसमें भी क्रमबद्धपर्यायकी बात आ जाती है। जिस प्रकार लटकते हुए हारके मोतियोंमें पीछे पीछेके स्थानोंमें पीछे पीछेके मोतियोंके प्रगट (प्रकाशित) होनेसे और आगे आगेके मोतियोंके प्रगट नहीं होने से प्रत्येक मोती अपने-अपने स्थानमें प्रकाशित है; उसमें आगे-आगेके स्थानमें आगे-आगेका मोती प्रकाशित होता है और पीछे-पीछेके मोती प्रकाशित नहीं होते; उसी प्रकार लटकते हुए हारकी भांति परिणमित द्रव्यमें समस्त परिणाम अपने अपने अवसरोंमें प्रकाशित रहते हैं, उसमें पीछे-पीछेके अवसरोंमें पीछे-पीछेके परिणाम प्रगट होते हैं और आगे-आगेके परिणाम प्रगट नहीं होते। (देखो, गाथा ९९ की टीका।) लटकते हुए हारके डोरेमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसका प्रत्येक मोती यथास्थान क्रमबद्ध जमा हुआ है; यदि उसमें उल्टा-सीधा करने जाये-पाँचवें नम्बरका मोती हटाकर पच्चीसवें नम्बर पर लगाने जाये तो हारका डोरा टूट जायेगा, इसलिये हारकी अखण्डता नहीं रहेगी। उसी प्रकार जगतका प्रत्येक द्रव्य झूलता अर्थात् परिणमनशील है। अनादि-अनन्त पर्यायरूप मोती क्रमबद्ध जमे हुए हैं; उसे न मानकर एक भी पर्यायका क्रम तोड़ने जाये तो गुणका और द्रव्यका क्रम टूट जायेगा, अर्थात् श्रद्धा ही मिथ्या हो जायेगी। मैं तो ज्ञायक हूँ; मैं निमित्त बनकर किसीकी पर्यायमें फेरफार कर दूँ—ऐसा मेरा स्वरूप नहीं है;—इस प्रकार ज्ञायकस्वभावकी प्रतीति द्वारा अकर्तापना हो जाता है अर्थात् सम्यग्ज्ञान होता है, और वही जीव स्व-परप्रकाशक ज्ञान द्वारा इस क्रमबद्धपर्यायको यथार्थतया जानता है।—इसप्रकार अभी तो ज्ञानको सम्यक् करनेकी यह रीति है; इसे समझे बिना सम्यग्ज्ञान नहीं हो सकता।

(४३) ज्ञायकभावका परिणमन करे वही सच्चा श्रोता

इस क्रमबद्धपर्यायके विषयमें आजकल बड़ी गड़बड़ी शुरू हुई है, इसलिये यहाँ उसका विशेष स्पष्टीकरण करते हैं। अभी तो जिसे इस बातके श्रवणका भी प्रेम न आये वह अन्तरमें पात्र होकर परिणमित कहांसे करेगा? और अकेले श्रवणका प्रेम करे किन्तु स्वच्छन्द टालकर अंतरमें ज्ञायकभावका परिणमन न करे तो उसने भी वास्तवमें यह बात नहीं सुनी है। यही बात समयसारकी चौथी गाथामें आचार्यदेवने रखी है; वहाँ कहा है कि एकत्वविभक्त शुद्धात्माका श्रवण जीवने पहले कभी नहीं किया है; अनन्तबार साक्षात् तीर्थंकर भगवानके समवसरणमें जाकर दिव्यध्वनि सुन आया, तथापि आचार्य भगवान कहते हैं कि उसने भावभासनरूप शुद्धात्माकी बातका श्रवण किया ही नहीं; क्यों? क्योंकि अन्तरमें उपादान जागृत करके उस शुद्धात्माकी रुचि नहीं की इसलिये उसके श्रवणमें निमित्तपना भी नहीं आया।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(१४) जहाँ स्वच्छन्द है वहाँ क्रमबद्धपर्यायकी श्रद्धा नहीं है; साधकको ही क्रमबद्धपर्यायकी सच्ची श्रद्धा है।

प्रश्नः—क्रमबद्धपर्यायकी श्रद्धा हो जाये, किन्तु पर्यायके क्रममेंसे स्वच्छन्द दूर न हो तो ?

उत्तरः—ऐसा हो ही नहीं सकता। भाई ! जो क्रमबद्धपर्यायकी श्रद्धा करे उसके पर्यायमें स्वच्छन्दका क्रम रह ही नहीं सकता; क्योंकि ज्ञानस्वभावके सन्मुख होकर उसने वह प्रतीति की है। ज्ञान-स्वभावकी पहिचानके पुरुषार्थ बिना अकेली क्रमबद्धपर्यायका नाम ले, उसकी यहाँ बात नहीं है; क्योंकि ज्ञानस्वभावकी पहिचान बिना वह क्रमबद्धपर्यायको भी नहीं समझा है। ज्ञानस्वभावकी ओर उन्मुख होकर क्रमबद्धपर्यायकी प्रतीति की वहाँ तो अनन्तगुणोंका अंश निर्मलरूपसे परिणमित होने लगा है; श्रद्धामें सम्यग्दर्शन हुआ, ज्ञानमें सम्यग्ज्ञान हुआ, आनन्दके अंशका वेदन हुआ, वीर्यका अंश स्वोन्मुख हुआ,—इसप्रकार समस्त गुणोंकी अवस्थाके क्रममें निर्मलताका प्रारम्भ हो गया। अभी जिसके श्रद्धा-ज्ञान सम्यक् नहीं हुए हैं, आनन्दका भान नहीं है, वीर्यबल अन्तरस्वभावोन्मुख नहीं हुआ है, उसे क्रमबद्धपर्यायकी सच्ची प्रतीति नहीं है। क्रमबद्धपर्यायकी प्रतीतिके साथ तो स्वभावकी ओरका पुरुषार्थ है; श्रद्धा-ज्ञान सम्यक् हुए हैं, अतीन्द्रिय आनन्द और वीतरागताका अंश प्रगट हुआ है, इसलिये वहाँ स्वच्छन्द तो होता ही नहीं। साधकदशामें अस्थिरताका राग आता है, किन्तु वहाँ स्वच्छन्द नहीं होता। और जो राग है उसका भी परमार्थतः तो वह ज्ञानी ज्ञाता ही है। इस प्रकार इसमें भेदज्ञानकी बात है। सम्यग्दर्शन कहो, भेदज्ञान कहो या ज्ञायकभावका पुरुषार्थ कहो, अथवा क्रमबद्धपर्यायकी प्रतीति कहो, वस्तुस्वभावका निर्णय कहो-यह सब साथी ही हैं। क्रमबद्धपर्यायकी श्रद्धावालेको हठ भी नहीं रहती और स्वच्छन्द भी नहीं रहता। सम्यक्श्रद्धा होनेके साथ ही उसे उसी क्षण चारित्र प्रगट करके मुनित्व धारण

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कर लेना चाहिये—ऐसी हठ नहीं होती, और चाहे जैसा राग हो उसमें कोई हर्ज नहीं है—ऐसा स्वच्छन्द भी नहीं होता; ज्ञायकभावरूप मोक्षमार्गका उद्यम उसके चलता ही रहता है। चारित्रकी कमजोरीमें अपना ही अपराध मानता है, किसी अन्यका दोष नहीं मानता।

(४५) यह समझे तो सब गुत्थियाँ सुलझ जायें

आजकल उपादान-निमित्त और निश्चय-व्यवहारकी बड़ी उलझनें चल रही हैं; यदि यह क्रमबद्धपर्यायका स्वरूप बराबर समझे तो वे सारी गुत्थियाँ सुलझ सकती हैं। "द्रव्य अपने क्रमबद्धपरिणाम-रूपसे उत्पन्न होता है"—ऐसा कहा उसमें उस-उस पर्यायका क्षणिक उपादान आ जाता है। प्रत्येक समयकी पर्याय अपने-अपने क्षणिक उपादानसे ही क्रमबद्धरूपसे नियमितरूपसे उत्पन्न होती है; अपने परिणामोंसे ही अर्थात् उस समयकी क्षणिक योग्यतासे ही उत्पन्न होती है, निमित्तसे उत्पन्न नहीं होती। प्रत्येक गुणमें अपने-अपने क्षणिक उपादानसे क्रमबद्ध परिणाम उत्पन्न होते हैं;—इस प्रकार अनन्त गुणोंके अनन्त परिणाम एक समयमें उत्पन्न होते हैं। यह जो क्रमबद्धपना कहा जाता है वह "उर्ध्वता सामान्य" की अपेक्षासे अर्थात् कालप्रवाहकी अपेक्षासे कहा जाता है।

(४६) वज्रभींत जैसा निर्णय

भाई! अपने ज्ञानको अंतरोन्मुख करके एकबार वज्रभींत जैसा यथार्थ निर्णय तो कर। वज्रभींत जैसा निर्णय किये बिना मोक्षमार्गकी ओर तेरा वीर्य नहीं चलेगा। यह निर्णय करनेसे तेरी प्रतीतिमें निरन्तर ज्ञानकी अधिकता हो जायेगी और राग उस ज्ञानका ज्ञेय हो जायेगा। इसके अनुभवज्ञान बिना अनादिसे स्व-परके स्वरूपको भूल कर परका मैं करूँ और परको बदल दूँ ऐसा मान रहा है—ऐसी बुद्धि तो संसारभ्रमणके कारणरूप है।

(४७) केवलीकी भाँति सर्व जीव ज्ञानस्वरूप हैं

आत्मा ज्ञानस्वभावी है; ज्ञान किसे बदलेगा? जिस प्रकार

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

केवलीभगवान जगतके ज्ञाता-दृष्टा ही हैं, उसी प्रकार यह आत्मा भी ज्ञाता-दृष्टापनेका ही कार्य कर रहा है। भगवान एक समयमें परिपूर्ण जानते हैं और यह जीव अल्प जानता है—इतना ही अन्तर है। किन्तु अपने ज्ञाता-दृष्टापनेकी प्रतीति न करके, अन्यथा मानकर जीव संसारमें भटक रहा है। अल्प और अधिक ऐसे भेदको गौण कर डाले तो सर्व जीवोंमें ज्ञानका एक ही प्रकार है, समस्त जीव ज्ञानस्वरूप हैं और जाननेका ही कार्य करते हैं; किन्तु ज्ञानरूपसे अपना अस्तित्व है उसे प्रतीतिमें न लेकर, ज्ञानके अस्तित्वमें परका अस्तित्व मिलाकर परके साथ एकत्व मानता है, परसे लाभ-हानि मानता है वही दुःख और संसार है।

(४८) निमित्त वास्तवमें कारक नहीं किन्तु अकर्ता है

"सर्वज्ञभगवानको तो परिपूर्ण ज्ञान विकसित हो गया है, वे तो 'ज्ञायक' हैं इसलिये वे परमें कुछ भी फेरफार नहीं करते, यह बात ठीक है, किन्तु यह जीव तो निमित्तरूपसे कारक होकर अपनी इच्छानुसार पदार्थोंमें फेरफार उल्टासीधा कर सकता है ?"—ऐसा कोई कहे तो वह भी सत्य नहीं है। ज्ञायक हो या कारक हो, किन्तु पदार्थको क्रमबद्धपर्यायको बदलकर कोई उल्टी-सीधी नहीं करता। प्रत्येक द्रव्य निरन्तर स्वयं ही अपना कारक होकर क्रमबद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न होता है, निमित्तरूप दूसरा द्रव्य वास्तवमें कारक नहीं किन्तु अकारक है; अकारकको कारक कहना वह उपचारमात्र है; इसी प्रकार निमित्त अकर्ता है, उस अकर्ताको कर्ता कहना वह उपचार है—व्यवहार है—अभूतार्थ है।

(४९) ज्ञायकके निर्णयमें ही सर्वज्ञका निर्णय

भगवान सर्वके ज्ञायक हैं—ऐसा निर्णय किसने किया ? ज्ञान-स्वभावके सन्मुख होकर स्वयं ज्ञायक हुआ तभी भगवानके ज्ञायकपनेका यथार्थ निर्णय हुआ।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(५०) पर्यायमें अनन्यपना होनेसे, पर्यायके बदलने पर द्रव्य भी बदलता है; चक्कीके निचले पाटकी भाँति वह सर्वथा कूटस्थ नहीं है।

यहाँ ऐसा कहा है कि क्रमबद्धपरिणामरूपसे द्रव्य उत्पन्न होता है—"दवियं जं उप्पज्जइ गुणेहिं तं तेहिं जाणसु अणण्णं" द्रव्य अपने जिन गुणोंसे जिन क्रमबद्धपरिणामोंरूप उत्पन्न होता है उनमें उसे अनन्य जान। इसलिये, अकेली पर्याय ही पलटती है और द्रव्य-गुण तो "चक्कीके निचले पाटकी भांति" सर्वथा कूटस्थ ही रहते हैं—ऐसा नहीं है। पर्यायके बदलनेसे उस-उस पर्यायरूपसे द्रव्यगुण उत्पन्न होते हैं। पहले समयकी पर्यायमें जो द्रव्य-गुण अनन्य थे वे दूसरे समय पलटकर दूसरे समयकी पर्यायमें अनन्य हैं। पहले समयमें पहली पर्यायका जो कर्ता था वह बदलकर दूसरे समयमें दूसरी पर्यायका कर्ता हुआ है। इसी प्रकार कर्ताकी भाँति कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण—इन सब कारकोंमें प्रतिसमय परिवर्तन होता है। पहले समय जैसा कर्तापना था वैसा ही कर्तापना दूसरे समय नहीं रहा; पर्यायके बदलनेसे कर्तापना आदि भी बदले हैं। कर्ता-कर्म आदि छह कारक पहले जिस स्वरूपमें थे उसी स्वरूपमें दूसरे समय नहीं रहे। पहले समयमें पहली पर्यायके साथ तद्रूप होकर उसका कर्तृत्व था, और दूसरे समयमें दूसरी पर्यायके साथ तद्रूप होकर उस दूसरी पर्यायका कर्तृत्व हुआ। इसप्रकार पर्याय अपेक्षासे, नई-नई पर्यायोंके साथ तद्रूप होता-होता सारा द्रव्य प्रतिसमय पलट रहा है; द्रव्य-अपेक्षासे ध्रुवता है। यह कुछ सूक्ष्म बात है।

प्रवचनसारकी ९३ वीं गाथामें भी कहा है कि—"तेहिं पुणो पज्जाया....." द्रव्य तथा गुणोंसे पर्यायें होती हैं। द्रव्यके परिणमित होनेसे उसके अनन्त गुण भी क्रमबद्धपर्यायरूपसे साथ ही परिणमित हो जाते हैं। पर्यायमें अनन्यरूपसे द्रव्य उत्पन्न होता है—

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ऐसा कहनेसे, पर्यायके परिणमित होनेसे द्रव्य भी परिणमित हुआ है—यह बात सिद्ध होती है; क्योंकि यदि द्रव्य सर्वथा ही परिणमित न हो तो पहली पर्यायसे छूटकर दूसरी पर्यायके साथ वह कैसे तद्रूप होगा ? पर्यायके बदलने पर यदि द्रव्य न बदले तो वह अलग पड़ा रहेगा !—इसलिये दूसरी पर्यायके साथ उसको तद्रूपता हो ही नहीं सकती। किन्तु ऐसा नहीं होता; पर्याय परिणमित होती रहे और द्रव्य अलग रह जाये ऐसा नहीं होता।

कोई ऐसा कहे कि-"पहले समयको जो पर्याय है वह स्वयं ही दूसरे समयकी पर्यायरूप परिणमित हो जाती है, द्रव्य परिणमित नहीं होता"—तो यह बात असत्य है। पहली पर्यायमेंसे दूसरी पर्याय नहीं आती; पर्यायमेंसे पर्याय प्रगट होती है—ऐसा माननेवालेको तो "पर्यायमूढ़" कहा है। पर्यायके पलटने पर उसके साथ द्रव्य, क्षेत्र और भाव भी (पर्याय अपेक्षासे) पलट गये हैं। यदि ऐसा न हो तो समय-समयकी नई पर्यायके साथ द्रव्यका तद्रूपपना सिद्ध नहीं हो सकता। "सर्व द्रव्योंका अपने परिणामोंके साथ तादात्म्य है"—ऐसा कहकर आचार्यदेवने अलौकिक नियम दिखा दिया है। श्री दीपचन्दजी कृत चिद्विलासमें भी यह बात की है।

(५१) जीवका सच्चा जीवन

जीव अपने क्रमबद्धपरिणामरूपसे उत्पन्न होता हुआ, उसमें तन्मयरूपसे जीव ही है, अजीव नहीं है। अजीवके या रागके आश्रयसे उत्पन्न हो ऐसा जीवका सच्चा स्वरूप नहीं है। और क्रमबद्ध-परिणाम न माने तो उसे भी वस्तुस्वरूपकी खबर नहीं है। "जीवित जीव" तो अपनी क्रमबद्धपर्यायरूपसे ही उत्पन्न होता है, उसके बदले अजीवादि निमित्तके कारण जीव उत्पन्न होता है—ऐसा माने, अथवा तो जीव निमित्त होकर अजीवको उत्पन्न करता है—ऐसा माने तो उसने जीवके जीवनको नहीं जाना है। जीवका जीवन तो ऐसा है कि परके कारण-कार्य बिना ही स्वयं अपनी क्रमबद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(५२) दृष्टि अनुसार क्रमबद्धपर्याय होती है

आत्मा ज्ञायकस्वरूप....समभावो सूर्य है,—ऐसे स्वभावको जो नहीं जानता और स्वच्छन्दी होकर मिथ्यात्वकी विषमबुद्धिसे कर्तृत्व मानता है-परमें उलटा सीधा करना चाहता है—उसने जीव को वास्तवमें माना ही नहीं है; ज्ञायकस्वरूप जीवतत्त्वको उसने जाना ही नहीं है। कर्तृत्व मानकर कहीं भी फेरफार करने गया वहां स्वयं ज्ञातारूपसे नहीं रहा, और क्रमबद्धपर्याय ज्ञेयरूप है उसे नहीं माना; इसलिये अकर्ता साक्षीस्वरूप ज्ञायक जीवतत्त्व उसकी दृष्टिमें नहीं रहा। ज्ञायकस्वभाव पर जिसको दृष्टि है वह ज्ञाता है—अकर्ता है और निर्मल क्रमबद्धपर्यायरूपसे वह उत्पन्न होता है। ज्ञातास्वभाव पर जिसकी दृष्टि नहीं है और परके साथ निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध पर ही जिसकी दृष्टि है उसे विपरीतदृष्टिमें क्रमबद्धपर्याय अशुद्ध होती है। इस प्रकार यह दृष्टि बदलनेकी बात है; परकी दृष्टि छोड़कर ज्ञायकस्वभावकी दृष्टि करनेकी यह बात है; ऐसी दृष्टि प्रगट किये बिना यह बात यथार्थरूपसे समझमें नहीं आ सकती।

(५३) ज्ञायकके लक्ष बिना एक भी न्याय सच्चा नहीं होता

पानीका जो प्रवाह है वह उलटा-सीधा नहीं होता; पहलेका पीछे और पीछेका आगे—ऐसा नहीं होता; उसी प्रकार द्रव्य अपने अनादि-अनन्त पर्यायोंके प्रवाहक्रमको द्रवित होता है—प्रवाहित होता है; उस प्रवाहक्रममें जिस-जिस पर्यायको वह द्रवित होता है उस-उस पर्यायके साथ वह अनन्य है। जिस प्रकार मकानके खिड़की-दरवाजे नियत हैं; छोटे-बड़े अनेक खिड़की-दरवाजोंमें जिस स्थान पर जो खिड़की या दरवाजा लगाना हो वही बराबर बैठता है; बड़ा दरवाजा काटकर छोटे दरवाजेकी जगह लगा दें तो उस बड़े दरवाजेकी जगह क्या लगायेंगे ? बड़े दरवाजेकी जगह कहीं छोटा दरवाजा फिट नहीं हो सकता, वहां तो बढ़ई प्रत्येक खिड़की-दरवाजे पर नम्बर लिख रखता है। यदि उस नम्बरमें गड़बड़ी हो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जाये तो खिड़की-दरवाजोंका मेल टूट जाता है। उसीप्रकार आत्मा ज्ञायकस्वरूप है और पदार्थ उसके ज्ञेय हैं; उन पदार्थोंकी क्रमबद्ध-पर्यायमें जिस पर्यायका जो स्थान (—स्वकाल) है वह आगे-पीछे नहीं होता। यदि एक भी पर्यायके स्थानको (प्रवाहक्रमको) बदल-कर इधर-उधर करने जायें तो कोई व्यवस्था ही न रहे; क्योंकि एक पर्यायको बदलकर दूसरे स्थान पर रखा, तो दूसरे स्थानकी पर्यायको बदलकर तीसरे स्थान पर रखना पड़ेगी-इसप्रकार सारा द्रव्य ही छिन्न-भिन्न हो जायेगा,-अर्थात् उस जीवकी दृष्टिमें द्रव्य खण्ड-खण्ड होकर मिथ्यात्व हो जायेगा; सर्वज्ञता या ज्ञायकता तो सिद्ध ही नहीं होगी। "मैं ज्ञायक हूँ,"-इस बातका जबतक लक्ष न हो तबतक एक भी सच्चा न्याय समझमें नहीं आ सकता। आत्मा ज्ञायक और सर्व पदार्थ ज्ञेय,-इस प्रकार ज्ञान और ज्ञेय दोनों व्यवस्थित हैं। जैसे पदार्थ हैं वैसा ही ज्ञान जानता है, और जैसा ज्ञान जानता है वैसे ही पदार्थ हैं, तथापि किसीके कारण कोई नहीं है—ऐसा वस्तु-स्वरूप है। ऐसा वस्तुस्वरूप जानकर जो ज्ञाता हुआ वह रागका भी ज्ञाता ही है और वह राग भी उसके ज्ञानका ज्ञेय होकर रहता है। पदार्थोंकी व्यवस्थाका ज्ञायक न रहकर फेरफार करना मानता है उसे अपने ज्ञानका ही विश्वास नहीं है।

(५४) "पदार्थोंका परिणमन व्यवस्थित या अव्यवस्थित ?"

भाई, तू ज्ञान है; ज्ञान क्या करता है ? वस्तु जैसी हो वैसी जानता है। तेरा स्वरूप जाननेका है। तू विचार तो कर कि पदार्थों-का परिणमन व्यवस्थित होता है या अव्यवस्थित ? यदि व्यवस्थित कहा जाये तो उसमें कहीं भी फेरफार करना नहीं रहता, ज्ञातृत्व ही रहता है; और यदि अव्यवस्थित कहा जाये तो ज्ञानने जाना क्या ? पदार्थोंका परिणमन अव्यवस्थित कहने से ज्ञान ही अव्यवस्थित सिद्ध होगा; क्योंकि अव्यवस्थित हो तो केवलीभगवानने जाना क्या ? इसलिये न तो केवलज्ञान ही सिद्ध होगा और न आत्माका ज्ञान-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वभाव ! ज्ञानस्वभावकी पहिचानके बिना न तो मिथ्यात्व दूर होता है और न धर्मका अंश भी प्रगट होता है।

(५५) जीव या अजीव सबकी पर्याय क्रमबद्ध है, उसे जाननेवाला ज्ञानी तो ज्ञाताभावरूपसे ही क्रमबद्ध उत्पन्न होता है

कोई कहे कि "कभी जीव क्रमबद्धपरिणामरूपसे परिणमित होता है और कभी अक्रमरूपसे भी; उसी प्रकार अजीव भी कभी क्रमबद्ध परिणमित होता है और कभी जीव उसे अक्रमरूपसे भी परिणमित कर देता है।"—ऐसा नहीं है। भाई ! जीव या अजीव किसीका ऐसा स्वरूप नहीं है कि अक्रमबद्धसे परिणमित हों। केवलज्ञान चौथे गुणस्थानमें हो जाये और सम्यग्दर्शन तेरहवें गुणस्थानमें हो—ऐसा कभी नहीं होता; पहले केवलज्ञान हो जाये और फिर मुनिदशा ग्रहण करे—ऐसा भी कभी नहीं होता; ऐसा ही वस्तुके परिणमनका स्वभाव है। धर्मीके स्वभावदृष्टिमें ज्ञानकभावका पुरुषार्थ चालू ही है; ज्ञानमें धैर्य है, चारित्रमें अल्प राग होता है उसे भी जानते हैं; किन्तु उन्हें आकुलता नहीं है, उतावल नहीं है, हट नहीं है; वह तो क्रमबद्ध अपने ज्ञाताभावरूप उत्पन्न होता हुआ उसमें तद्रूप है।

(५६) अजीव भी अपनी क्रमबद्धपर्यायरूपसे स्वयं उत्पन्न होता है

जिसप्रकार जीव अपनी क्रमबद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न होता है, उसीप्रकार अजीव भी अपनी क्रमबद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न होता है, जीव उसका कर्ता नहीं है। यह शरीर हिले-डुले, भाषा बोली जाये, वह सब अजीवकी क्रमबद्धपर्यायें हैं। उसमें जिस समय जो पर्याय होती है वह उसके अपनेसे ही होती है, उस पर्यायरूपसे वह अजीव स्वयं ही उत्पन्न होता है, जीव उसका कारण नहीं है, और न वह जीवका कार्य है। इस प्रकार अकार्यकारणपना जीवमें भी है, और अजीवमें भी है, इसलिये उन्हें परस्पर कोई भी कारणकार्यपना नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है;--ऐसा वस्तुस्वरूप बतलाकर यहाँ आत्माका ज्ञायकस्वभाव बतलाना है।

(५७) सर्व द्रव्योंमें "अकार्यकारणशक्ति।"

सर्व द्रव्योंको अन्य द्रव्यके साथ उत्पादक—उत्पाद्यभावका अभाव है, अर्थात् सर्व द्रव्योंको परके साथ अकार्यकारणपना है। इसप्रकार "अकार्यकारणशक्ति" सभी द्रव्योंमें है। अज्ञानी कहते हैं कि "अकार्यकारणशक्ति तो सिद्धमें ही है और संसारी जीवोंको तो परके साथ कार्य-कारणपना है"—यह बात झूठ है।

(५८) पुद्गलमें क्रमबद्धपर्याय होने पर भी.....

पुद्गलमें कर्म आदिकी अवस्था भी क्रमबद्ध है; पुद्गलमें वह अवस्था होना नहीं थी और जीवने विकार करके वह अवस्था उत्पन्न की ऐसा नहीं है। पुद्गलकर्ममें उपशम—उदीरणा—संक्रमण-क्षय इत्यादि जो अवस्थायें होती हैं उन अवस्थाओंरूपसे पुद्गल स्वयं क्रमबद्धपर्यायसे उत्पन्न होता है। ऐसा होने पर भी ऐसा नियम है कि ज्ञायकस्वभावकी दृष्टिसे ज्ञाता होकर जीव जहाँ अकर्तारूपसे परिणमित हुआ, वहाँ जगतमें ऐसी क्रमबद्धपर्यायकी योग्यतावाले कोई परमाणु ही नहीं हैं कि जो उसे मिथ्यात्वप्रकृतिरूपसे बँधे। मिथ्यात्वप्रकृतिके साथका निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध ही उसे ज्ञायक-दृष्टिमेंसे छूट गया है।—यह बात आचार्यदेव अगली गाथाओंमें बड़ी अच्छी तरह समझायेंगे।

(५९) क्रमबद्धपर्यायको न समझनेवालेकी कुछ भ्रमणायें

अजीवमें ज्ञान नहीं है, इसलिये उसकी अवस्था तो जैसी होना होती है वैसी क्रमबद्ध होती रहती है; किन्तु जीवकी अवस्था क्रमबद्ध नहीं होती, वह तो अक्रमरूप भी होती है—ऐसा कोई माने तो वह बात असत्य है।

अजीवमें ज्ञान नहीं है, इसलिये जीव उसकी अवस्था जैसी करना चाहे वैसी कर सकता है, इसलिये उसकी अवस्था क्रमबद्ध नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है किन्तु अक्रम है; पानी भरा हो उसमें जैसा रंग डालोगे वैसे रंगका हो जायेगा—ऐसा कोई माने तो उसकी बात भी झूठ है।

क्रमबद्धपर्याय है इसलिये हमें कुछ भी पुरुषार्थ नहीं करना चाहिये—ऐसा कोई माने तो वह भी अज्ञानी है; क्योंकि क्रमबद्धपर्याय-के निर्णयमें ज्ञातामात्रपनेका पुरुषार्थ आ जाता है उसे वह नहीं समझा है।

मैं ज्ञायक हूँ—ऐसे स्वभावका पुरुषार्थ करनेसे सर्व द्रव्योंकी क्रमबद्धपर्यायका भी निर्णय होता है, वह यथार्थ है। इस ओर आत्मा-का ज्ञायकस्वभाव न माने तथा दूसरी ओर पदार्थोंमें क्रमबद्धपरिणाम न माने और फेरफार करना माने तो वह जीव न तो वस्तुस्वरूपको जानता है, और न पंचपरमेष्ठी भगवन्तोंको ही वास्तवमें मानता है।

(६०) जीवके कारण बिना ही अजीवकी क्रमबद्धपर्याय

शरीरकी अवस्था भी अजीवसे होती है। मैं उसकी अवस्था-को बदलूँ अथवा तो अनुकूल आहार-विहारका बराबर ध्यान रखकर शरीरको अच्छा कर दूँ—ऐसा जो मानता है वह मिथ्यादृष्टि है। आहारके एक रजकणको भी बदलना वह जीवकी क्रिया नहीं है। "दाने-दाने पर खानेवालेका नाम"—ऐसी एक पुरानी कहावत है, वह क्या बतलाती है?—कि जिसके पेटमें जो दाना आना है वही आयेगा; जीव उसका ध्यान रखकर शरीरकी रक्षा कर दे—ऐसा नहीं है। जीवके कारण बिना ही अजीव अपनी क्रमबद्धपर्यायरूप से उत्पन्न होता है। आत्माका स्वभाव अपने ज्ञायकभावरूपसे उत्पन्न होनेका है।

"अरे! इस शरीरका कोई अंग जिस तरह ऊँचा-नीचा करना हो वैसा हम कर सकते हैं; तो क्या हममें इतनी शक्ति नहीं है कि परमाणुको बदल सकें?"—ऐसी दलील अज्ञानी करते हैं।

ज्ञानी कहते हैं कि अरे भाई! क्या परमाणुओंमें ऐसी शक्ति नहीं है कि वे अपने क्रमबद्धपरिणामोंसे ऊँचे-नीचे हों? क्या

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अजीव द्रव्योंमें शक्ति ही नहीं है ? भाई ! अजीवमें भी ऐसी शक्ति है कि तेरे कारणपनेके बिना ही वह स्वयं अपनी हलन-चलनादि अवस्थारूप उत्पन्न होता है, अपनी अवस्थामें वह तद्रूप है; उसमें कुछ भी फेरफार करनेकी शक्ति जीवमें नहीं है ।—जीवमें उसे जाननेकी शक्ति है । इसलिये तू अपने ज्ञायकस्वभावका निर्णय कर और अजीवके कर्तृत्वकी बुद्धि छोड़ ।

–: तीसरा प्रवचन :–

[आश्विन कृष्णा १४, बीर सं० २४८०]

जिसे समझने से आत्माका हित हो ऐसा उपदेश वह इष्टोपदेश है । यहाँ "योग्यता" कहकर समय-समयकी पर्यायकी स्वतंत्रता बतलाई जाती है वही उपदेश इष्ट है, इसके सिवा परके कारण कुछ होना बतलाये अर्थात् पराधीनता बतलाये वह उपदेश इष्ट नहीं है—हितकारी नहीं है—प्रिय नहीं है । समय-समयकी क्रमबद्धपर्याय बतलाकर आत्माको अपने ज्ञायकस्वभावकी ओर ले जाये वह उपदेश इष्ट है ।

(६१) अधिकारकी स्पष्टता

यह सर्वविशुद्धज्ञान-अधिकार है; "सर्वविशुद्धज्ञान" यानी अकेला ज्ञायकभाव । ज्ञायकस्वरूप जीव कर्मका कर्त्ता नहीं है—यह बात यहां सिद्ध करना है । क्रमबद्धपर्यायके वर्णनमें आत्माका ज्ञायक-स्वभाव सिद्ध करके उसे अकर्ता बतलाया है । आत्मा निमित्तरूपसे भी जड़कर्मका कर्ता नहीं है—ऐसा उसका स्वभाव है ।

(६२) क्रमबद्धपर्यायमें शुद्धताका क्रम कब चालू होता है ?

प्रथम तो जीवकी बात की है कि—जीव अपने अनन्त गुणोंके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परिणामोंसे क्रमबद्ध नियमितरूपसे उत्पन्न होता है, और उन परिणामोंमें अनन्यरूपसे वह जीव ही है, अजीव नहीं है। इसमें द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों आ गये। अपने अनादि-अनन्त परिणामों-में क्रमबद्धरूपसे उत्पन्न होता हुआ ज्ञायकस्वभावी जीव किसी परके कार्यमें कारण नहीं है और कोई पर उसके कार्यमें कारण नहीं है; किसीके कारण किसीकी अवस्थाके क्रममें फेरफार हो—ऐसा कभी नही होता। "मैं ज्ञायक हूँ"—ऐसी स्वभावसन्मुख दृष्टि होनेसे धर्मी-को क्रमबद्धपर्याय निर्मलरूपसे परिणमित होने लगती है, किन्तु पर्याय-को आगे-पीछे करने पर उसकी दृष्टि नहीं है। इस प्रकार ज्ञायक-स्वभावकी दृष्टिका पुरुषार्थ होनेसे क्रमबद्धपर्यायमें शुद्धताका क्रम चालू हो जाता है।

(६३) अकर्तृत्व सिद्ध करनेके लिये क्रमबद्धपर्यायकी बात क्यों ली ?

किसीको ऐसा प्रश्न उठे कि यहाँ तो आत्माको अकर्ता सिद्ध करना है, उसमें यह क्रमबद्धपर्यायकी बात क्यों की ?—तो उसका कारण यह है कि जीव और अजीव समस्त द्रव्य स्वयं अपनी-अपनी क्रमबद्धपर्यायसे उत्पन्न होते हैं—यह बात जमे बिना, "मैं परको बदल दूँ"—ऐसी कर्ताबुद्धि नहीं छूटती और अकर्तृत्व नहीं होता। मैं ज्ञायकस्वभाव हूँ और प्रत्येक वस्तुकी अवस्था क्रमबद्ध होती रहती है उसका मैं ज्ञाता हूँ किन्तु कर्ता नहीं हूँ—ऐसा निश्चय होनेसे कर्ताबुद्धि छूट जाती है और अकर्तृत्व अर्थात् साक्षीपना—ज्ञायकपना हो जाता है। स्वभावसे तो सब आत्मा अकर्ता ही हैं, किन्तु यह तो पर्यायमें अकर्तापना हो जानेकी बात है।

(६४) क्रमबद्ध है, तो फिर उपदेश क्यों ?

पर्याय तो क्रमबद्ध ही होती है, तो फिर शास्त्रमें इतना अधिक उपदेश क्यों दिया है ?—ऐसा कोई पूछे, तो कहते हैं कि भाई ! उस सब उपदेशका तात्पर्य तो ज्ञायकस्वभावका निर्णय करना है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उपदेशकी वाणी तो वाणीके कारण क्रमबद्ध निकलती है। इस समय ऐसी ही भाषा निकालकर मैं दूसरों को समझा दूँ—ऐसी कर्ताबुद्धि ज्ञानीके नहीं है।

(६५) वस्तुस्वरूपका एक ही नियम

सर्व द्रव्य अपने-अपने परिणामके कर्ता हैं, किसी अन्यका हस्तक्षेप उसमें नहीं है। "ऐसा निमित्त आये तो ऐसा हो सकता है और दूसरा निमित्त आये तो वैसा हो जायेगा"—ऐसा वस्तुस्वरूपमें नहीं है। वस्तुस्वरूपका एक ही नियम है कि प्रत्येक द्रव्य क्रमबद्ध-पर्यायरूपसे उत्पन्न होता हुआ स्वयं ही अपनी पर्यायका कर्ता है, और दूसरेसे वह निरपेक्ष है। वस्तु स्वयं अपनी क्रमबद्धपर्यायरूप-से उत्पन्न होती है।—ऐसा न मानकर, दूसरा उसमें फेरफार कर सकता है—ऐसा जो मानता है उसे परमें फेरफार करनेकी बुद्धि रहती है, इसलिये परकी ओरसे हटकर वह अपने ज्ञायकस्वभाव-की ओर उन्मुख नहीं होता, इसलिये उसे ज्ञातापना नहीं होता—अकर्तापना नहीं होता और कर्तृत्वबुद्धि नहीं छूटती। यहां "प्रत्येक द्रव्य अपनी क्रमबद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न होता है, दूसरा कोई उसका कर्ता नहीं है"—इस नियमके द्वारा आत्माका अकर्तृत्व समझाकर कर्ताबुद्धि छुड़ाते हैं।

(६६) ज्ञायकस्वभावकी दृष्टि प्रगट किये बिना, क्रमबद्धपर्यायकी ओट लेकर बचाव करना चाहे वह महान स्वच्छन्दी है

इस क्रमबद्धपर्यायकी ओट लेकर कोई स्वच्छन्दसे ऐसा बचाव करे कि "हमें क्रोध होना था वह क्रमबद्ध हो गया, उसमें हम क्या करें ?" तो उससे कहते हैं कि अरे मूढ़ जीव ! अभी तुझे आत्मा-के ज्ञायकपनेकी प्रतीति नहीं हुई तो तू क्रमबद्धपर्यायकी बात कहां से लाया ! ज्ञायकस्वभावके निर्णयसे ही क्रमबद्धपर्यायका यथार्थ निर्णय होता है। तेरी दृष्टि ज्ञायक पर है या क्रोध पर ? यदि ज्ञायक-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पर दृष्टि हो तो फिर ज्ञायकमें क्रोध होना कहाँसे आया ? अपने ज्ञायकभावका निर्णय करके पहले तू ज्ञाता हो, फिर तुझे क्रमबद्ध-पर्यायकी खबर पड़ेगी। ज्ञायकस्वभावकी ओर उन्मुख होकर ज्ञायक-को ज्ञानका ज्ञेय बनाना—उसीकी इसमें मुख्यता है, रागको ज्ञेय करनेकी मुख्यता नहीं है। ज्ञायकस्वभावका निर्णय किया वहां ज्ञानकी ही अधिकता रहती है—क्रोधादिकी अधिकता कभी भी नहीं होती, इसलिये ज्ञाताको अनन्तानुबन्धी क्रोधादि होते ही नहीं; और उसीको क्रमबद्धपर्यायकी प्रतीति हुई है।

क्रोधके समय जिसे ज्ञानस्वरूपका तो भास नहीं होता उसे क्रोध-की ही रुचि है, और क्रमबद्धपर्यायकी ओट लेकर बचाव करना चाहता है वह तो महान स्वच्छंदी है। क्रमबद्धपर्यायमें ज्ञायकभाव-का परिणमन भासित न होकर, क्रोधादि कषायका परिणमन भासित होता है यही उसकी विपरीतता है। भाई रे! यह मार्ग तो छुट-कारेका है या बंधनका ? इसमें तो ज्ञानस्वभावका निर्णय करके छुटकारेकी बात है; इस बातका यथार्थ निर्णय होनेसे ज्ञान पृथक्का पृथक् रहता है। जो छुटकारेका मार्ग है उसके बहाने स्वच्छंदका पोषण करता है उस जीवको छुटकारेका अवसर कब आयेगा!!

(६७) अजर प्याला !

यह तो अजर-अमर प्याला है; इस प्यालेको पचाना दुर्लभ है। पात्र होकर जिसने यह प्याला पिया और पचाया वह अजर-अमर हो जाता है अर्थात् जन्म-मरण रहित ऐसे सिद्धपदको प्राप्त होता है।

(६८) क्रमबद्धपर्यायमें भूमिकानुसार प्रायश्चितादिका भाव होता है

"लगे हुए दोषोंका प्रायश्चित करनेका वर्णन तो शास्त्रमें बहुत आता है; दोष हुआ वह पर्याय भी क्रमबद्ध है, तब फिर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसका प्रायश्चित्तादि किसलिये ?"—ऐसी किसीको शंका हो तो उसका समाधान यह है कि—साधकको उस-उस भूमिकामें प्रायश्चित्तादिका वैसा विकल्प होता है उसका वहाँ ज्ञान कराया है। साधकदशाके समय क्रमबद्धपर्यायमें उस प्रकारके भाव आते हैं वह बतलाया है। "हमें क्रमबद्धपर्यायमें दोष होना था वह हो गया, उसका प्रायश्चित्त क्या करें ?"—ऐसा कोई कहे तो वह मिथ्यादृष्टि स्वच्छंदी है; साधकको ऐसा स्वच्छंद नहीं होता। साधकदशा तो परम विवेकवाली है; उसे अभी वीतरागता नहीं हुई है और स्वच्छंद भी नहीं रहा है, इसलिये दोषोंके प्रायश्चित्तादिका शुभविकल्प आये—ऐसी ही वह भूमिका है।

क्रमबद्धपर्यायकी श्रद्धा होनेपर भी सम्यक्त्वीको चौथे गुणस्थानमें ऐसा भाव आता है कि मैं चारित्रदशा लूँ; मुनिको ऐसा भाव आता है कि लगे हुए दोषोंकी गुरुके निकट जाकर सरलतापूर्वक आलोचना करूँ और प्रायश्चित लूँ—"कर्म तो जब खिरना होंगे तब खिरेंगे, इसलिये अपनेको तप करनेकी क्या आवश्यकता है ?"—ऐसा विकल्प मुनिको नहीं आता; किन्तु ऐसा भाव आता है कि मैं तप द्वारा निर्जरा करूँ—शुद्धता बढ़ाऊँ।—ऐसा ही उस-उस भूमिकाके क्रमका स्वरूप है। "चारित्रदशा तो क्रमबद्धपर्यायमें जब आना होगी तब आ जायेगी" ऐसा कहकर सम्यक्त्वी कभी स्वच्छंदी या प्रमादी नहीं होता; द्रव्यदृष्टिके बलमें उसका पुरुषार्थ चलता ही रहता है। वास्तवमें द्रव्यदृष्टिवालेको ही क्रमबद्धपर्याय यथार्थरूपसे समझमें आती है। क्रम बदलता नहीं है, तथापि पुरुषार्थकी धारा नहीं टूटती—यह बात ज्ञायकस्वभावकी दृष्टि बिना नहीं हो सकती। शास्त्रोंमें प्रायश्चित आदिका वर्णन करके मध्यम भूमिकामें कैसे-कैसे भाव होते हैं—उसका ज्ञान कराया है। वास्तवमें तो ज्ञाताको ज्ञानकी अधिकतामें उन प्रायश्चित्तादिका विकल्प भी ज्ञेयरूप ही है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(६९) क्रम-अक्रम सम्बन्धमें अनेकान्त और सप्तभंगी

कोई ऐसा कहता है कि—"सभी पर्यायें क्रमबद्ध ही हैं—ऐसा कहनेमें तो एकान्त हो जाता है; इसलिये कुछ पर्यायें क्रमबद्ध हैं और कुछ अक्रमबद्ध हैं—ऐसा अनेकान्त कहना चाहिये;"—तो ऐसा कहनेवालेको एकान्त-अनेकान्तकी खबर नहीं है। सभी पर्यायें क्रमबद्ध ही "हैं" और अक्रमरूप "नहीं हैं"—ऐसा अनेकान्त है। अथवा क्रम-अक्रमका अनेकान्त लेना हो तो इसप्रकार है कि सर्व गुण द्रव्यमें एक साथ सहभावीरूप से वर्तते हैं, इसलिये उस अपेक्षासे द्रव्य अक्रम-रूप ही है और पर्याय-अपेक्षासे क्रमरूप ही है,-इसप्रकार ही कथंचित् क्रमरूप और कथंचित् अक्रमरूप-ऐसा अनेकान्त है, किन्तु कुछ पर्यायें क्रमरूप और कुछ पर्यायें अक्रमरूप-ऐसा मानना तो अनेकान्त नहीं किन्तु वस्तुस्वरूपसे विपरीत होनेसे मिथ्यात्व है।

पर्याय-अपेक्षासे तो क्रमबद्धपना ही है—यह नियम है; तथापि इसमें अनेकान्त और सप्तभंगी आ जाती है। गुणोंकी अपेक्षासे अक्रम-पना और पर्यायोंकी अपेक्षासे क्रमपना-ऐसा अनेकान्तस्वरूप है, वह ऊपर कहा जा चुका है। तथा वस्तुमें (१) स्यात् क्रमपना, (२) स्यात् अक्रमपना, (३) स्यात् क्रम-अक्रमपना, (४) स्यात् अवक्तव्य-पना, (५) स्यात् क्रम-अवक्तव्यपना, (६) स्यात् अक्रम-अवक्तव्य-पना, और (७) स्यात् क्रम-अक्रम-अवक्तव्यपना;—इसप्रकार क्रम-अक्रम सम्बन्धमें सप्तभंगी भी उतरती है; किस प्रकार? वह कहा जाता है :—

(१) पर्यायें एकके बाद एक क्रमबद्ध होती हैं, इसलिये पर्यायोंकी अपेक्षासे कहनेपर वस्तु क्रमरूप है।

(२) सर्व गुण एकसाथ सहभावी हैं; इसलिये गुणोंकी अपेक्षासे कहनेपर वस्तु अक्रमरूप है।

(३) पर्यायें तथा गुण-इन दोनोंकी अपेक्षासे (एकसाथ) लेकर कहनेपर वस्तु क्रम-अक्रमरूप है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(४) एकसाथ दोनों नहीं कहे जा सकते उस अपेक्षासे वस्तु अवक्तव्य है।

(५) वस्तुमें क्रमपना और अक्रमपना दोनों एकसाथ होनेपर भी क्रमरूप कहते समय अक्रमपनेका कथन बाकी रह जाता है, उस अपेक्षासे वस्तु क्रम-अवक्तव्यरूप है।

(६) इसी प्रकार अक्रमरूप कहनेसे क्रमपनेका कथन बाकी रह जाता है, उस अपेक्षासे वस्तु अक्रम-अवक्तव्यरूप है।

(७) क्रमपना और अक्रमपना दोनों अनुक्रमसे कहें जा सकते हैं किन्तु एकसाथ नहीं कहे जा सकते, उस अपेक्षासे वस्तु क्रम–अक्रम-अवक्तव्यरूप है।

—इसप्रकार क्रम-अक्रम सम्बन्धमें सप्तभंगी समझना चाहिये।

(७०) अनेकान्त कहाँ और किसप्रकार लागू होता है ? (सिद्धका दृष्टान्त)

यथार्थ वस्तुस्थिति क्या है वह समझे बिना कई लोग अनेकांतके या स्याद्वादके नामसे गप्पें हाँकते हैं। जिस प्रकार अस्ति-नास्तिमें वस्तु स्व-रूपसे अस्तिरूप है और पर-रूपसे नास्तिरूप है;—ऐसा अनेकान्त है; किन्तु वस्तु स्व-रूपसे भी अस्तिरूप है और पर-रूपसे भी अस्तिरूप है—ऐसा अनेकान्त नहीं है, वह तो एकान्तरूप मिथ्यात्व है। उसी प्रकार यहाँ क्रम–अक्रममें भी समझना चाहिये। पर्यायें क्रमबद्ध हैं और गुण अक्रम हैं—ऐसा अनेकान्त है; किन्तु पर्यायें क्रमबद्ध हैं और पर्यायें अक्रम भी हैं—ऐसा मानना वह कहीं अनेकान्त नहीं है; वह तो मिथ्यादृष्टिका एकान्त है। पर्यायें तो क्रमबद्ध ही हैं—अक्रम नहीं हैं ऐसा अनेकान्त है। पर्यायमें अक्रमपना तो है ही नहीं, इसलिये उसमें "कथंचित् क्रम और कथंचित् अक्रम" —ऐसा अनेकान्त लागू नहीं होता। वस्तुमें जो धर्म हों उनमें सप्तभंगी लागू होती है, किन्तु वस्तुमें जो धर्म ही न हो, उनमें सप्तभंगी लागू नहीं होती।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

"सिद्धभगवन्त एकान्त सुखी ही हैं"—ऐसा कहनेपर कोई अज्ञानी पूछे कि—सिद्ध भगवानको एकान्त सुख ही क्यों कहते हो ? कथंचित् सुख और कथंचित् दुःख–ऐसा अनेकान्त कहो न ? उसका समाधानः—भाई ! सिद्धभगवानको जो सुख प्रगट हुआ है वह एकान्त सुख ही है, उसमें दुःख किंचित्मात्र है ही नहीं, इसलिये उसमें तेरा कहा हुआ सुख–दुःखका अनेकान्त लागू नहीं होता। सिद्धभगवानको शक्तिमें या व्यक्तिमें किसी प्रकार दुःख नहीं है इसलिये वहाँ सुख–दुःखका ऐसा अनेकान्त या सप्तभंगी लागू नहीं होती; किन्तु सिद्धभगवानको एकान्त सुख ही है और दुःख किंचित् नहीं है—ऐसा अनेकान्त लागू होता है। (देखो, पंचाध्यायी, गाथा ३३३–३४–३५) उसीप्रकार यहाँ पर्यायमें क्रमबद्धता है और अक्रमता नहीं है—ऐसा अनेकान्त लागू होता है, किन्तु पर्यायमें क्रमता भी है और अक्रमता भी है। पर्यायसे ही क्रमरूप और पर्यायसे ही अक्रम-रूप—ऐसा क्रम–अक्रमरूप जीवका स्वरूप नहीं है, किन्तु पर्यायसे क्रमवर्तीपना और गुणसे अक्रमवर्तीपना—ऐसा क्रम–अक्रमरूप जीवका स्वरूप है।

(७१) ट्रेनके दृष्टान्तसे शंका और उसका समाधान

शंकाः—एक आदमी ट्रेनके डिब्बेमें बैठा है और ट्रेन पूर्व-दिशाकी ओर जा रही है; वहां ट्रेनके चलनेसे उस आदमीका भी पूर्वकी ओर जो गमन हो रहा है वह तो क्रमबद्ध है, किन्तु वह आदमी डिब्बेमें खड़ा होकर पश्चिमकी ओर चलने लगे तो उस गमनकी अवस्था अक्रमरूप हुई न ?

समाधानः—अरे भाई ! तुझे अभी क्रमबद्धपर्यायकी खबर नहीं है। पर्यायका क्रमबद्धपना कहा जाता है वह तो ऊर्ध्वप्रवाहकी अपेक्षासे (—कालप्रवाहकी अपेक्षासे) है क्षेत्रकी अपेक्षासे नहीं है। वह आदमी पहले पूर्वमें चले और फिर पश्चिममें चलने लगे तो उससे कहीं उसकी पर्यायके कालका क्रम टूट नहीं गया है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ट्रेन पूर्वमें जा रही हो और डिब्बेमें बैठा हुआ आदमी पश्चिमकी ओर चलने लगे, तो उससे कहीं उसकी वह पर्याय अक्रमरूप नहीं हुई है। अरे! ट्रेन पूर्वमें जा रही हो और सारी ट्रेन पीछे पश्चिम की ओर चलने लगे तो वह भी क्रमबद्ध ही है। पर्यायोंका क्रमबद्ध-पना द्रव्यके ऊर्ध्वप्रवाहक्रमकी अपेक्षासे है। यह क्रमबद्धपर्यायकी बात अनेक जीवोंने तो अभी तक सुनी ही नहीं है। क्रमबद्धपना क्या है और किस प्रकार है, तथा उसका निर्णय करनेवालेका ध्येय कहाँ जाता है—वह बात लक्षमें लेकर समझे ही नहीं तो उसकी प्रतीति कहाँसे हो? वस्तुमें अनंत गुण हैं, वे सब एकसाथ—बिछे हुए—तिर्यक्प्रचयरूप हैं इसलिये वे अक्रमरूप हैं, और पर्यायें एकके बाद एक—व्यतिरेकरूप—ऊर्ध्वप्रचयरूप हैं इसलिये वे क्रमरूप हैं।

(७२) क्रमबद्धपर्यायका ज्ञाता कौन है?

देखो, क्रमबद्धपर्याय तो जीव और अजीव सभी द्रव्योंमें है; किन्तु यह बात कहीं अजीवको नहीं समझाते; यह तो जीवको समझाते हैं, क्योंकि जीव ही ज्ञाता है। ज्ञाताको अपने ज्ञायकस्वभावका भान होने पर वह क्रमबद्धपर्यायका भी ज्ञाता हो जाता है।

(७३) भाषाका उत्पादक जीव नहीं है

पाँचों अजीव द्रव्य भी अपने-अपने गुणोंसे अपने क्रमबद्ध नियमित परिणामरूपसे उत्पन्न होते हुए अजीव ही हैं—जीव नहीं हैं। अजीव द्रव्य—उनमें प्रत्येक परमाणु भी— अन्य कारकोंकी अपेक्षा न रखकर स्वयं अपने छह कारकरूप होकर अपनी क्रमबद्धपर्यायरूपसे स्वयं उत्पन्न होते हैं; वे भी किसी अन्यके कर्ता नहीं हैं, और दूसरे का कार्य बनकर उसे अपना कर्ता बनायें ऐसा भी नहीं है। भाषा बोली जाती है वह अजीवकी क्रमबद्धपर्याय है और उस पर्यायरूपसे अजीवद्रव्य उत्पन्न होता है, जीव उसे उत्पन्न नहीं करता।

प्रश्न:—केवलीभगवानकी वाणी तो इच्छाके बिना ही सहज-रूपसे निकलती है इसलिये वह क्रमबद्धपर्याय है और उसे जीव

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उत्पन्न नहीं करता—ऐसा भले ही कहो, किन्तु छद्मस्थकी वाणी तो इच्छापूर्वक है इसलिये छद्मस्थ तो अपनी इच्छानुसार भाषाको परिणमित करता है न ?

उत्तरः—भाई ! ऐसा नहीं है । केवलीभगवानके या छद्मस्थके जो वाणी निकलती है वह तो अजीवके अपने वैसे क्रमबद्धपरिणामोंसे ही निकलती है, जीवके कारण नहीं। छद्मस्थको उस काल इच्छा होती है, किन्तु उस इच्छाने वाणीको उत्पन्न नहीं किया है। और इच्छा है वह भी ज्ञाताका ज्ञेय है, ज्ञानकी अधिकतामें धर्मी जीव उस इच्छाका भी ज्ञायक ही है ।

(७४) ज्ञायकको ही जाननेकी मुख्यता

वास्तवमें तो, इच्छाको जानना भी व्यवहार है। ज्ञानको अन्तरोन्मुख करके ज्ञायकको जानना वह परमार्थ है। क्रमबद्धपर्यायके निर्णयमें रागको जाननेकी मुख्यता नहीं है किन्तु ज्ञायकको जाननेकी मुख्यता है। ज्ञानमें ज्ञायककी मुख्यता हुई तब रागको उसका व्यवहार-ज्ञेय कहा; ज्ञाता जागृत हुआ तब रागको रागरूपसे जाना और तभी रागको व्यवहार कहा गया। इस प्रकार निश्चयपूर्वक ही व्यवहार होता है, क्योंकि ज्ञान और राग दोनों एकसाथ उत्पन्न होते हैं; धर्म शुरू होनेमें पहले रागरूप व्यवहार और फिर निश्चय—ऐसा नहीं है। यदि रागको अर्थात् व्यवहारको पहले कहो तो ज्ञानके बिना (निश्चयके बिना) उस व्यवहारको जाना किसने ? व्यवहार स्वयं तो अन्धा है, उसे कहीं स्व-परकी खबर नहीं है राग और भेदरूप व्यवहारका पक्ष छोड़कर निश्चयका अवलम्बन करके स्व-परप्रकाशक ज्ञाता जागृत हुआ वही, ज्ञायकको जानते हुए रागको भी व्यवहार-ज्ञेयरूपसे जानता है। क्रमबद्धपर्यायके निर्णयमें निश्चय—व्यवहार दोनों एकसाथ हैं; पहले व्यवहार और फिर निश्चय-ऐसा माने, अर्थात् रागके अवलम्बनसे ज्ञान होना माने, तो वह वास्तवमें क्रमबद्धपर्यायको समझा ही नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(७५) "इष्टोपदेश" की बातः—कौन—सा उपदेश इष्ट है ?

द्रव्य अपनी क्रमबद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न होता है—ऐसा कहनेसे उसमें समय—समयकी क्षणिक योग्यताकी बात भी आ गई।

कोई कहे कि—"योग्यताकी बात तो 'इष्टोपदेश' में आई है इसमें कहाँ आई ?" उसका उत्तर—यह भी इष्ट—उपदेशकी ही बात है। इष्ट उपदेश अर्थात् हितकारी उपदेश। जिसे समझनेसे आत्माका हित हो—ऐसा उपदेश वह इष्टोपदेश है। यह "योग्यता" कहकर समय—समयकी पर्यायको स्वतन्त्रता बतलाई जा रही है वही उपदेश इष्ट है; इसके सिवा परके कारण कुछ—होना बतलाये अर्थात् पराधीनता बतलाये वह उपदेश इष्ट नहीं है—हितकारी नहीं है—प्रिय नहीं है। समय—समयकी क्रमबद्धपर्याय बतलाकर आत्माको अपने ज्ञायकस्वभावकी ओर ले जाये वह उपदेश इष्ट है; किन्तु पर्यायमें फेरफार आगा—पीछा होना बतलाकर जो कर्ताबुद्धिका पोषण करे वह उपदेश इष्ट नहीं है अर्थात् सच्चा नहीं है, हितकारी नहीं है। "जो आत्माको हितमार्गमें प्रवर्तन कराये वह गुरु है; वास्तवमें आत्मा स्वयं ही अपनी योग्यतासे अपने आत्माको हितमार्गमें प्रवर्तित करता है इसलिये वह स्वयं ही अपना गुरु है। निमित्तरूपसे अन्य ज्ञानी गुरु होते हैं, किन्तु उस निमित्तके कारण इस आत्मामें कुछ हो जाय—ऐसा नहीं हो सकता।" देखो, यह इष्ट उपदेश ! इस प्रकार उपदेश हो तभी वह इष्ट है—हितकारी है—सत्य है, इससे विरुद्ध उपदेश हो तो वह इष्ट नहीं है—हितकारी नहीं है—सत्य नहीं है।

(७६) आत्माका ज्ञायकत्व और पदार्थोंके परिणमनमें क्रमबद्धता

आत्मा ज्ञायक है, ज्ञातापना उसका स्वरूप है। जिसप्रकार केवली भगवान जगतके सर्व द्रव्य-गुण-पर्यायके ज्ञाता हैं, उसी प्रकार इस आत्माका स्वभाव भी ज्ञाता है। जानने जाना इसलिये पदार्थोंमें वैसी क्रमबद्धपर्याय होती है—ऐसा नहीं है; और पदार्थ वैसे हैं इस-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

लिये उनका ज्ञान हुआ—ऐसा भी नहीं है। आत्माका ज्ञायकस्वभाव और पदार्थोंका क्रमबद्धपरिणमनस्वभाव है। "ऐसा क्यों ?"—ऐसा विकल्प ज्ञानमें नहीं है और पदार्थोंके स्वभावमें भी ऐसा नहीं है। "ऐसा क्यों ?"—ऐसा विकल्प करके जो पदार्थको बदलना चाहता है उसने ज्ञानके स्वभावको नहीं जाना है। ज्ञानस्वभावका निर्णय करनेसे साधक जीव ज्ञाता हो जाता है; "ऐसा क्यों ?"—ऐसा मिथ्याबुद्धिका विकल्प उसे नहीं होता।

(७७) ऐसी है साधकदशा !—एक साथ दस बोल

ज्ञानको अन्तरोन्मुख करके जिसने ज्ञानस्वभावका निर्णय किया वह—

—क्रमबद्धपर्यायका ज्ञाता हुआ; (१)
—उसके ज्ञानमें सर्वज्ञकी सिद्धि आई, (२)
—उसे भेदज्ञान और सम्यग्दर्शन हुआ, (३)
—उसे मोक्षमार्गका पुरुषार्थ प्रारम्भ हुआ, (४)
—उसे अकर्तृत्व हुआ, (५)
—उसने सर्व जैनशासनको जान लिया, (६)
—उसने देव-गुरु-शास्त्रको यथार्थरूपसे पहिचान लिया, (७)
—उसके निश्चय-व्यवहार दोनों एकसाथ आये, (८)
—उसकी पर्यायमें पाँचों समवाय आ गये, (९)
—"योग्यता ही वास्तविक कारण है" उसका उसे निर्णय हुआ इसलिये इष्ट-उपदेश भी उसमें आ गया। (१०)

(७८) यह लोकोत्तर दृष्टिकी बात है, जो इससे विपरीत माने वह लौकिक-जन है।

अहो, यह अलौकिक लोकोत्तर बात है। एक ओर ज्ञायक-स्वभाव और सामने क्रमबद्धपर्याय—उसका निर्णय करना वह लोकोत्तर है। मैं ज्ञायक हूँ और पदार्थोंकी पर्याय क्रमबद्ध है—ऐसा न मानकर जो कुछ भी फेरफार करना मानता है वह लौकिकजन है;

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

लोकोत्तर जैनदृष्टि उसे नहीं रहती। अपने ज्ञायकस्वभाव सन्मुख दृष्टि रखकर आत्मा क्रमबद्ध ज्ञायकभावरूप ही उत्पन्न होता है और पदार्थों की क्रमबद्ध होनेवाली पर्यायोंको जानता है—ऐसा जो लोकोत्तर स्वभाव है, उसे जो नहीं मानता वह भले ही जैन संप्रदायमें रहता हो, तथापि भगवान उसे अन्यमती—लौकिकमती—अर्थात् मिथ्यादृष्टि कहते हैं। "लौकिकमती" कहनेसे कई लोगोंको यह बात कठिन मालूम होती है। किन्तु भाई! समयसारमें आचार्यभगवान स्वयं कहते हैं कि—"ये त्वात्मानं कर्त्तारमेव पश्यंति ते लोकोत्तरिका अपि न लौकिकतामतिवर्तते: लौकिकानां परमात्मा विष्णुः सुरनारकादि-कार्याणि करोति, तेषां तु स्वात्मा तानि-करोतीत्यपसिद्धांतस्य सम-त्वात्। ततस्तेषामात्मनो नित्यकर्तृत्वाभ्युपगमात् लौकिकानामिव लोकोत्तरिकाणामपि नास्ति मोक्षः।" (गाथा ३२२-२३ टीका)

—जो आत्माको कर्ता ही देखते हैं—मानते हैं, वे लोकोत्तर हों तो भी लौकिकताका अतिक्रमण नहीं करते; क्योंकि लौकिकजनोंके मतमें परमात्मा विष्णु देव-नारकादि कार्य करते हैं, और उनके (–लोकसे बाह्य हो जानेवाले मुनियोंके) मतमें अपना आत्मा वे कार्य करता है—ऐसे अपसिद्धांतको (मिथ्यासिद्धान्तको) दोनोंके समानता है। इसलिये आत्माके नित्यकर्तृत्वकी उनकी मान्यताके कारण लौकिकजनोंकी भांति, लोकोत्तर पुरुषोंका (मुनियोंका) भी मोक्ष नहीं होता।

उसके भावार्थमें पं० जयचन्दजी भी लिखते हैं कि—

"जो आत्माको कर्ता मानते हैं वे मुनि भी हों तो भी लौकिकजन सरीखे ही हैं; क्योंकि लोग ईश्वरको कर्ता मानते हैं और मुनियोंने भी आत्माको कर्ता मान लिया, इस तरह इन दोनोंका मानना समान हुआ। इस कारण जैसे लौकिकजनोंके मोक्ष नहीं है उसी तरह उन मुनियोंके भी मोक्ष नहीं है।"

देखो, यह मूल सिद्धान्त है। दिगम्बर जैन सम्प्रदायका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

द्रव्यलिंगी साधु होकर भी, यदि "आत्मा परका कर्ता है"—ऐसा माने, तो वह भी लौकिकजनोंकी भाँति मिथ्यादृष्टि ही है। अब, आत्मा परका कर्ता है--ऐसा कदाचित् स्पष्ट न कहें, किन्तु—

—निमित्त हो तदनुसार कार्य होता है ऐसा मानें, अथवा हम निमित्त होकर परका कार्य कर दें–ऐसा मानें,

—अथवा रागके—व्यवहारके—अवलम्बनसे निश्चय-श्रद्धा-ज्ञान होना मानें,—शुभरागरूप व्यवहार करते करते निश्चयश्रद्धादि होना मानें,

—मोक्षमार्गमें पहले व्यवहार और फिर निश्चय ऐसा मानें,

—अथवा रागके कारण ज्ञान हुआ, अर्थात् राग कर्ता और ज्ञान उसका कार्य–ऐसा मानें,

तो वे सब भी वास्तवमें लौकिकजन ही हैं, क्योंकि उनके लौकिकदृष्टि दूर नहीं हुई है। लौकिकदृष्टि अर्थात् मिथ्यादृष्टि।

"ज्ञायक" के सन्मुख दृष्टि करके क्रमबद्धपर्यायको जाननेवाले सम्यक्त्वी लोकोत्तर दृष्टिवान हैं, और उनसे विरुद्ध माननेवाले लौकिक दृष्टिवान हैं।

(७९) समझनेके लिये एकाग्रता

यदि यह बात सुनकर समझे तो आनन्द आये ऐसी है; किन्तु इसे समझनेके लिये ज्ञानको अन्यत्रसे हटाकर कुछ एकाग्र करना चाहिये। अभी तो जिसके श्रवणमें भी एकाग्रता न हो और श्रवणके समय भी चित्त अन्यत्र भटकता हो, वह अन्तरमें एकाग्र होकर यह बात समझेगा कब ?

(८०) भीतर दृष्टि करनेसे सारा निर्णय होता है

प्रश्नः—आप तो बहुतसे पक्ष (–पहलू) समझाते हैं, किन्तु हमारी बुद्धि अल्प है, उससे क्या–क्या समझें ?

उत्तरः—अरे भाई ! जो समझना चाहे उसे यह सब समझमें आ सकता है। दृष्टि बाह्यमें डाली है, उसे बदलकर अन्तरमें दृष्टि

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

करते ही यह सभी पक्ष समझमें आ सकते हैं। समझनेवाला स्वयं भीतर बैठा है या कहीं अन्यत्र गया है? अन्तरमें शक्तिरूपसे परिपूर्ण ज्ञायकस्वभाव विद्यमान है, उसमें दृष्टि करे इतनी देर है। "मेरे नैनोंके आलस से ...मैंने हरिको न देखा कभी...." इस प्रकार दृष्टि डालते ही निहाल कर दे ऐसा भगवान आत्मा भीतर बैठा है, किन्तु नयनोंके आलस्यसे अज्ञानी उसे नहीं देखता। अंतर्मुख दृष्टि करते ही इन सब पक्षोंका निर्णय होजाता है।

(८१) ज्ञाता स्व-परको जानता हुआ उत्पन्न होता है

ज्ञाताभावकी क्रमबद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न होता हुआ धर्मी जीव अपने ज्ञानस्वभावको भी जानता है; स्व-पर दोनोंको जानता हुआ उत्पन्न होता है, किन्तु स्व-पर दोनोंको करता हुआ उत्पन्न नहीं होता। कर्ता तो एक स्वका ही है, और स्वमें भी वास्तवमें ज्ञायक-भावकी क्रमबद्धपर्यायको ही करता है; रागका कर्तृत्व धर्मीकी दृष्टिमें नहीं है।

ज्ञान उत्पन्न होता हुआ स्वको और रागको भी जानता हुआ उत्पन्न होता है, किन्तु "रागको करता हुआ" उत्पन्न होता है—ऐसा नहीं है। ज्ञान उत्पन्न होता है और स्वयं अपनेको जानता हुआ उत्पन्न होता है। उत्पन्न होना और जानना दोनों क्रियायें एकसाथ हैं; ज्ञानमें वे दोनों क्रियायें एकसाथ होनेमें कोई विरोध नहीं है। "आत्मा स्वयं अपनेको किस प्रकार जानता है-इस सम्बन्धमें प्रवचनसारकी ३६वीं गाथामें आचार्यदेवने शंका-समाधान किया है। एक पर्यायमेंसे दूसरी पर्यायकी उत्पत्ति होनेमें विरोध है, किन्तु ज्ञानपर्याय स्वयं उत्पन्न हो और उसी समय वह स्वको जाने—ऐसी दोनों क्रियायें एकसाथ होनेमें कोई विरोध नहीं है, क्योंकि ज्ञानका स्वभाव ही स्व-परको प्रकाशित करनेका है। ज्ञान स्वयं अपनेको नहीं जानता—ऐसा जाननेवालेने वास्तवमें ज्ञानको ही नहीं माना है। यहाँ तो कहते हैं कि ज्ञानी स्वयं अपनेको जानता हुआ क्रमबद्धज्ञायक-भावरूप ही उत्पन्न होता है। यह बात बराबर समझने योग्य है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(८२) लोकोत्तरदृष्टिकी बात समझनेके लिये ज्ञानको एकाग्रता

कालेजके बड़े-बड़े प्रोफेसरोंके भाषणकी अपेक्षा भी यह तो अलग प्रकारकी बात है; वहाँ तो समझनेके लिये ध्यान रखता है, तथापि जितना पूर्वका विकास हो तदनुसार ही समझमें आता है; और समझने पर भी उसमें आत्माका कल्याण तो होता नहीं है। और यह तो लोकोत्तर दृष्टिकी बात है, इसमें ध्यान रखकर समझने के लिये ज्ञानको एकाग्र करे तो वर्तमानमें भी नया-नया विकास होता जाये और अन्तरमें एकाग्र होकर समझे उसका तो अपूर्व कल्याण हो जाये।

(८३) सम्यक्त्वी जीव निर्मल क्रमबद्धपर्यायरूपसे ही उत्पन्न होता है

जीव अपनी क्रमबद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न होनेसे, उसके अनन्त गुण एकसाथ परिणमित होते है; ज्ञायकस्वभावकी ओर झुकाव हुआ वहाँ श्रद्धा-ज्ञान-चारित्रादि सर्व गुणोंके परिणमनमें निर्मलताके अंशका प्रारम्भ हो जाता है, फिर भले ही उसमें अल्प-अधिक अंश व्यक्त हो। चौथे गुणस्थानमें क्षायिक श्रद्धा हो जाये तथापि ज्ञान-चारित्र पूरे नहीं हो जाते, किन्तु उनका अंश तो प्रगट हो जाता है। इसप्रकार सम्यक्त्वीको निर्मल पर्यायरूपसे उत्पन्न होनेकी ही मुख्यता है; अस्थिरताके जो रागादिभाव होते हैं वे उसकी दृष्टिमें गौण हैं, अभूतार्थ हैं। ज्ञायकभाव पर दृष्टि रखकर सम्यक्त्वी निर्मल क्रमबद्धपर्यायरूप ही उत्पन्न होता है—रागादिरूपसे वह वास्तवमें उत्पन्न ही नहीं होता।

(८४) क्रमबद्धपरिणाममें छह-छह कारक

आचार्यदेव कहते हैं कि "जीव अपने क्रमबद्धपरिणामरूपसे उत्पन्न होता हुआ जीव ही है, अजीव नहीं है;" उसमें छहों कारक लागू होते हैं वह इसप्रकार हैं:—

१—जीव स्वयं अपनी पर्यायके कर्तारूपसे उत्पन्न होता हुआ जीव ही है, अजीवका कर्ता नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

२—जीव स्वयं अपने कर्मरूपसे उत्पन्न होता हुआ जीव ही है अजीवका कर्म नहीं है।

३—जीव स्वयं अपने करणरूपसे उत्पन्न होता हुआ जीव ही है, अजीवका करण नहीं है।

४—जीव स्वयं अपने सम्प्रदानरूपसे उत्पन्न होता हुआ जीव ही है, अजीवका सम्प्रदान नहीं है।

५—जीव स्वयं अपने अपादानरूपसे उत्पन्न होता हुआ जीव ही है, अजीवका अपादान नहीं है।

६—जीव स्वयं अपने अधिकरणरूपसे उत्पन्न होता हुआ जीव ही है, अजीवका अधिकरण नहीं है।

और इसीप्रकार अन्य छह कारक भी निम्नानुसार समझना चाहिये:—

१—जीव अपनी पर्यायरूपसे उत्पन्न होता हुआ अजीवको अपना कर्ता नहीं बनाता।

२—जीव अपनी पर्यायसे उत्पन्न होता हुआ अजीवको अपना कर्म नहीं बनाता।

३—जीव अपनी पर्यायरूपसे उत्पन्न होता हुआ अजीवको अपना करण नहीं बनाता।

४—जीव अपनी पर्यायरूपसे उत्पन्न होता हुआ अजीवको अपना सम्प्रदान नहीं बनाता।

५—जीव अपनी पर्यायरूपसे उत्पन्न होता हुआ अजीवको अपना अपादान नहीं बनाता।

६—जीव अपनी पर्यायरूपसे उत्पन्न होता हुआ अजीवको अपना अधिकरण नहीं बनाता।

उसी प्रकार, अजीव भी अपनी क्रमबद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होता हुआ अजीव ही है, जीव नहीं है।—उसमें भी उपरोक्तानुसार छह-छह कारक समझ लेना चाहिये।

—इसप्रकार, जीव-अजीवको परस्पर अकार्यकारणपना है।

(८५) यह बात किसे जमती है ?

देखो यह भेदज्ञान ! ऐसी स्पष्ट बात होने पर भी, इस बातको "छूतकी बीमारी, एकान्त" इत्यादि कहकर कितने ही विरोध करते हैं; क्योंकि अपनी मानी हुई विपरीत बातका आग्रह उनके नहीं छूटता। अरे ! विपरीत मान्यताको सत्य मान बैठे हैं तो उसे कैसे छोड़ें ? पं० टोडरमलजी भी मोक्षमार्गप्रकाशकमें कहते हैं कि—अन्यथा श्रद्धाको सत्य श्रद्धा माननेवाला जीव उसके नाशका उपाय भी किसलिये करेगा ? यह बात तो उसे जम सकती है जिसे मान और आग्रह छोड़कर आत्माका हित करना हो।

(८६) "करे तथापि अकर्ता"—ऐसा नहीं है

यहाँ जो बात कही जा रही है उसपरसे कुछ लोग समझे बिना ऐसा कहते हैं कि—"ज्ञानी परके कार्य करता अवश्य है, किन्तु वह अकर्ता है"। किन्तु यह बात मिथ्या है। "अकर्ता" और फिर "करता है"—यह बात लाया कहाँसे ? यहाँ तो ऐसा कहा जाता है कि—ज्ञानी या अज्ञानी कोई परका कर्ता नहीं है, परका कार्य कोई कर ही नहीं सकता। प्रत्येक द्रव्य स्वयं ही अपनी क्रमबद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न होता है; उसमें किसी अन्यका कर्तापना है ही नहीं। कर्तृत्व देखनेवाला अपने ज्ञानस्वभावसे भ्रष्ट होकर देखता है इसलिये उल्टा देखता है; यदि ज्ञायक रहकर देखे तो कर्तापना न माने। वस्तुस्वरूप तो जैसा है वैसा ही रहता है, अज्ञानी विपरीत माने उससे कहीं वस्तुस्वरूप अन्यथा नहीं हो जाता।

(८७) यदि कुम्हार घड़ा बनाये तो...

जीव और अजीव समस्त द्रव्य अपनी-अपनी पर्यायरूपसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वयं उत्पन्न होते हैं। अजीवमेंसे प्रत्येक परमाणु भी अपनी क्रमबद्ध-अवस्थारूपसे स्वयं उत्पन्न होता है; उसकी वर्ण–गन्धादिरूप अर्थ-पर्याय भी क्रमबद्ध उसीसे है; और घड़ा आदिके आकाररूप व्यंजन-पर्याय भी क्रमबद्ध उसीसे है। मिट्टी घड़ेरूप उत्पन्न हुई वहाँ उसकी व्यंजनपर्याय (आकृति) कुम्हारने की—ऐसा नहीं है। घड़ेरूपसे मिट्टी स्वयं उत्पन्न हुई है और मिट्टी ही उसमें व्याप्त है, कुम्हार व्याप्त नहीं है, इसलिये कुम्हार उसका कर्ता नहीं है। "निमित्त बिना नहीं होता"—इस बातका यहाँ काम नहीं है। यहाँ तो कहते हैं कि प्रत्येक द्रव्य अपने परिणामोंके साथ तद्रूप—तन्मय है। जीव यदि अजीवकी अवस्थाको करे (जैसे कि—कुम्हार घड़ा बनाये) तो अजीवकी अवस्थाके साथ तद्रूपता होनेसे वह स्वयं भी अजीव हो जायेगा। यदि निमित्तके अनुसार कार्य होता हो तो अजीवके निमित्तसे आत्मा भी अजीव हो जायेगा—इत्यादि अनेक दोष आ पड़ेंगे।

(८८) "योग्यता" कब मानी कहलाती है ?

प्रश्नः—एक प्यालेमें पानी भरा है, पासमें अनेक प्रकारके लाल, हरे आदि रंग रखे हैं, उनमेंसे जैसा रंग लेकर पानीमें डालेंगे वैसा ही पानीका रंग हो जायेगा। उस पानीमें योग्यता तो सर्वप्रकारकी है, किन्तु जिस रंगका निमित्त देंगे उसी रंगका वह हो जायेगा। इसलिये निमित्तानुसार ही कार्य होता है ! भले ही उसकी योग्यतासे होता है किन्तु जैसा निमित्त आता है वैसा होता है ?

उत्तरः—अरे भाई ! तेरी सब बात उल्टी है। योग्यता कहना, और फिर निमित्त आये वैसा होता है—ऐसा कहना, यह बात विरुद्ध है। निमित्त आये वैसा होता है—ऐसा माननेवालेने "योग्यता" को माना ही नहीं अर्थात् वस्तुके स्वभावको ही नहीं माना। पानीके परमाणुओंमें जिस समय जैसी हरे या लाल रंगरूप होनेकी योग्यता है, उसी रंगरूपके परमाणु स्वयं उत्पन्न होते हैं, दूसरा कोई निमित्त उसमें रंग ला सके या फेरफार कर सके—ऐसा नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

क्योंकि रंगके परमाणु पृथक् और पानीके परमाणु भी पृथक्; इसलिये रंगका निमित्त आनेसे पानीके परमाणुओंका रंग बदला ऐसा भी नहीं है; परन्तु पानीके परमाणु ही स्वयं अपनी वैसी रंग-अवस्थारूपसे परिणमित हुए हैं।

आटेके परमाणुओंमेंसे रोटीकी अवस्था होशियार स्त्रीने की है—ऐसा नहीं है, किन्तु स्वयं वे परमाणु ही उस अवस्थारूपसे उत्पन्न हुए हैं।—यह बात भी ऊपरके दृष्टांत अनुसार समझ लेना चाहिये।

स्कंधमें रहेनेवाला प्रत्येक परमाणु स्वतंत्ररूपसे अपनी क्रमबद्धयोग्यतासे परिणमित होता है; स्कंधके अन्य परमाणुओंके कारण वह स्थूलरूप परिणमित हुआ—ऐसा नहीं है, किन्तु उसीमें स्थूलरूपसे परिणमित होनेकी स्वतन्त्र योग्यता हुई है। देखो, एक परमाणु पृथक् हो तब उसमें स्थूल परिणमन नहीं होता, किन्तु उसके स्कंधमें मिलता है तब उसमें स्थूल परिणमन होता है, तो उसके परिणाममें इतना फेरफार हुआ या नहीं?—हाँ फेरफार तो हुआ है, किन्तु वह किसके कारण?—तो कहते हैं कि अपनी ही क्रमबद्ध-पर्यायके कारण, परके कारण नहीं। एक पृथक् परमाणु स्थूल स्कंधमें मिला वहाँ वह जैसा पृथक् था वैसा ही स्कंधमें नहीं रहा किन्तु सूक्ष्ममेंसे स्थूलस्वभावरूपसे उसका परिणमन हुआ है। उसमें सर्वथा फेरफार नहीं हुआ—ऐसा भी नहीं है, और परके कारण फेरफार हुआ—ऐसा भी नहीं है। उसकी अपनी योग्यतासे ही उसमें फेरफार अर्थात् सूक्ष्मतामेंसे स्थूलतारूप परिणमन हुआ है। जिस प्रकार एक पृथक् परमाणुमें स्थूलतारूप परिणमन नहीं होता, उसी प्रकार स्थूल स्कंधमें भी यदि उसका स्थूल परिणमन न होता हो तो यह शरीरादि नोकर्म इत्यादि कुछ सिद्ध ही नहीं होंगे। पृथक् परमाणु स्थूल स्कन्धमें मिलनेसे उसमें स्थूलतारूप परिणमन तो होता है, किन्तु वह परके कारण नहीं होता, उसकी अपनी योग्यता से होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(८९) क्रमबद्धका निर्णय करनेवालेको "अभाग्य" होता ही नहीं

"अभाग्यसे कुदेव, कुगुरु और कुशास्त्रका निमित्त बन जाये तो उल्टा अतत्त्वश्रद्धान पुष्ट हो जाता है"—ऐसा मोक्षमार्ग प्रकाशकमें कहा है, किन्तु वहाँ भी वैसे निमित्तोंके सेवनका विपरीत भाव कौन करता है ? वास्तवमें तो अपना जो विपरीत भाव है वही अभाग्य है। आत्माके ज्ञायकस्वभावकी ओर झुककर जिसने क्रमबद्धपर्यायका निर्णय किया उसके ऐसा अभाग्य होता ही नहीं—अर्थात् कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्रका सेवन उसके होता ही नहीं।

आत्मा ज्ञायक है और वस्तुकी पर्याय क्रमबद्धरूपसे स्वयं होती है—ऐसे वस्तुस्वरूपको जो नहीं जानता उसका ज्ञान सच्चा नहीं होता, और सच्चे ज्ञान बिना निर्मलपर्याय अर्थात् शांति या धर्म नहीं होता।

(९०) स्वाधीनदृष्टिसे देखनेवाला-ज्ञाता

आइस (बर्फ) डालनेसे पानीकी ठण्डी अवस्था हुई—ऐसा नहीं है; पानीमें शक्कर डाली इसलिये उस शक्करके कारण पानीके परमाणुओंमें मीठी अवस्था हुई—ऐसा नहीं है; वे परमाणु स्वाधीन-रूपसे वैसी अवस्थारूप परिणमित हुए हैं। अपने आत्माको स्वाधीन-दृष्टिसे ज्ञायकभावसे परिणमित देखनेवाला जगतके समस्त पदार्थोंको भी स्वाधीन परिणमित देखता है; इसलिये वह ज्ञाता ही है, अकर्ता ही है। आत्मा तो अजीवके कार्यको नहीं करता, किन्तु एक स्कन्धमें रहनेवाले अनेक परमाणुओंमें भी एक परमाणु दूसरे परमाणुका कार्य नहीं करता।—ऐसी स्वतन्त्रता है।

(९१) संस्कारकी सार्थकता, तथापि पर्यायकी क्रमबद्धता

प्रश्नः—प्रवचनसारके ४७ नयोंमें तो कहा है कि अस्वभाव-नयसे आत्मा संस्कारको सार्थक करनेवाला है; जिसप्रकार लोहेके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तोरमें संस्कार डालकर लुहार नई नोक निकालता है, उसीप्रकार आत्माकी पर्यायमें नये संस्कार पड़ते हैं;—ऐसा है तो फिर पर्यायकी क्रमबद्धताका नियम कहां रहा ?

उत्तर:—पर्याय निरन्तर नई नई होती है, आत्मा अपनी पर्यायमें जैसे संस्कार डालते हैं वैसी पर्याय होती है। अनादिसे पर्यायमें मिथ्याश्रद्धा-ज्ञान थे, उनके बदले अब ज्ञायकस्वभावकी ओर ढलनेसे वे मिथ्याश्रद्धा-ज्ञान दूर होकर, सम्यक्श्रद्धा-ज्ञानके अपूर्व संस्कार पड़े, इसलिये पर्यायमें नये संस्कार कहे। तथापि वहां क्रमबद्धपर्यायका नियम नहीं टूटा है। क्या सर्वज्ञभगवानने वैसा नहीं देखा था और हो गया ? अथवा क्या क्रमबद्धपर्यायमें वैसा नहीं था और हो गया ?—ऐसा नहीं है। स्वयं अपने ज्ञायकस्वभाव-सन्मुखके पुरुषार्थ द्वारा निर्मलपर्यायरूप उत्पन्न हुआ वहां, केवलीभगवानने क्रमबद्धपर्यायमें जो निर्मलपर्याय होना देखा था वही पर्याय आकर उपस्थित हो गई। इस प्रकार, ज्ञायकस्वभावका पुरुषार्थ करनेवालेको पर्यायमें मिथ्यात्व दूर होकर सम्यग्दर्शनके अपूर्व नये संस्कार पड़े बिना नहीं रहते, और क्रमबद्धपर्यायका क्रम भी नहीं टूटता।—ऐसा मेल ज्ञायकस्वभावकी दृष्टिके बिना समझमें नहीं आयेगा।

(९२) क्रमबद्धपर्यायका ज्ञाता कौन ?

जिसे ज्ञायकस्वभावकी दृष्टि नहीं है और क्रमबद्धपर्यायमें आगा-पीछा करना मानता है उसे जीव-अजीव द्रव्योंकी खबर नहीं है इसलिये मिथ्या ज्ञान है। जो परका कर्तृत्व मानता है उसे तो अभी परसे भिन्नत्वका भी भान नहीं है; परसे भिन्नत्वको जाने बिना अन्तरमें ज्ञान और रागकी भिन्नता उसके ख्यालमें नहीं आ सकेगी। यहां तो ऐसी बात है कि जो अपने ज्ञानस्वभावकी ओर ढला वह क्रमबद्धपर्यायका ज्ञाता है, रागको भी वह ज्ञानसे भिन्न ज्ञेयरूप जानता है। ऐसा ज्ञाता रागादिका अकर्ता ही है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

–: चौथा प्रवचन :–

[आश्विन कृष्णा ३०, वीर सं० २४८०]

क्रमबद्धपर्यायका निर्णय भी ज्ञायकस्वभावकी दृष्टि द्वारा ही होता है, इसलिये उसमें जैनशासन आ जाता है। जो अबद्धस्पृष्ट आत्माको देखता है वह समस्त जिनशासनको देखता है—ऐसा पन्द्रहवीं गाथामें कहा है; और यहाँ—"जो ज्ञायकदृष्टिसे क्रमबद्धपर्यायका निर्णय करता है वह समस्त जिन-शासनको देखता है"—ऐसा कहा जाता है;—उन दोनोंका तात्पर्य एक ही है। दृष्टिको अन्तरोन्मुख करके जहाँ ज्ञा....य....क पर दृष्टि स्थिर की वहाँ सम्यक् श्रद्धा–ज्ञानके साथ चारित्र, आनन्द, वीर्यादिका भी शुद्धपरिणमन होने लगा, यही जैनशासन है।

(९३) क्रमबद्धपर्यायके निर्णयमें सात तत्त्वोंकी श्रद्धा

जीव और अजीव दोनोंकी अवस्था उस–उस काल क्रमबद्ध स्वतन्त्र होती है, उन्हें एक–दूसरेके साथ कार्यकारणपना नहीं है। जीवका ज्ञायकस्वभाव है, उस ज्ञायकको जाननेकी मुख्यतापूर्वक क्रमबद्धपर्यायका ज्ञाता है।—ऐसी प्रतीतिमें सातों तत्त्वोंकी श्रद्धा भी आ जाती है इसलिये तत्त्वार्थश्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन इसमें आ जाता है। सातों तत्त्वोंकी श्रद्धा किस प्रकार होती है वह कहते हैं :—

(१–२) अपने ज्ञानादि अनन्त गुणोंको ज्ञेय बनाकर क्रमबद्ध ज्ञाता–दृष्टा परिणामरूपसे मैं उत्पन्न होता हूँ और उसमें मैं तन्मय हूँ ऐसी स्वसन्मुख प्रतीतिमें जीवतत्त्वकी प्रतीति आ गई; ज्ञाता–दृष्टारूपसे उत्पन्न हुआ मैं जीव हूँ, अजीव नहीं हूँ,—इसप्रकार अजीवसे भिन्नत्वका—कर्मके अभाव आदिका—ज्ञान भी आ गया; इसलिये अजीवतत्त्वकी प्रतीति हो गई।

(३–४–५–६) ज्ञायकस्वभावकी दृष्टिसे श्रद्धा–ज्ञान निर्मल हुए हैं, चारित्रमें भी अंशतः शुद्धता प्रगट हुई है और अभी साधकदशा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होनेसे अमुक रागादि भी होते हैं। वहां श्रद्धा-ज्ञान-चारित्रका जितना निर्मल परिणमन है उतने ही संवर-निर्जरा हैं, और जितने रागादि होते हैं उतने ही अंशमें आस्रव-बन्ध है। साधकको उस शुद्धता और अशुद्धता दोनोंका ज्ञान रहता है इसलिये उसे आस्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा तत्त्वोंकी प्रतीति आ गई।

(७) परका अकर्ता होकर ज्ञायकस्वभावमें एकाग्र होनेसे क्रमबद्धपर्यायमें अंशतः शुद्धता प्रगट हुई है और अभी इसी क्रमसे ज्ञायकस्वभावमें पूर्ण एकाग्र होनेसे पूर्ण ज्ञाता-दृष्टापना (केवलज्ञान) प्रगट हो जायगा और मोक्षदशा हो जायगी;—ऐसी श्रद्धा होनेसे मोक्ष-तत्त्वकी प्रतीति भी उसमें आ गई।

इसप्रकार, ज्ञायकस्वभावके सन्मुख होकर क्रमबद्धपर्यायकी प्रतीति करनेसे उसमें "तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्" भी आ जाता है।

(९४) सदोष आहार छोड़नेका उपदेश और क्रमबद्धपर्याय-उसका मेल

प्रश्नः—यदि पर्याय क्रमबद्ध होती है, आहार भी जो आना हो वही आता है, तो फिर—"मुनियोंको सदोष आहार छोड़कर निर्दोष आहार लेना चाहिये"—ऐसा उपदेश किसलिये ?

उत्तरः—वहां ऐसी पहचान कराई है कि जहां मुनिदशा हुई हो वहां इसप्रकारका सदोष आहार लेनेका भाव होता ही नहीं; उस भूमिकाका क्रम ही ऐसा है कि वहां सदोष आहार लेनेकी वृत्ति ही नहीं होती। ऐसा आहार लेना चाहिए और ऐसा छोड़ना चाहिए—यह तो निमित्तका कथन है। किन्तु कोई ऐसा कहे कि—"भले ही सदोष आहार आना होगा तो सदोष आयगा, किन्तु हमें उसके ग्रहणकी वृत्ति नहीं है"—तो वह स्वच्छन्दी है, उसकी दृष्टि तो आहार पर है, ज्ञायक पर उसकी दृष्टि तो नहीं है। मुनियोंके तो ज्ञानमें इतनी अधिक सरलता हो गई कि—"यह आहार मेरे लिये बनाया होगा!" इतनी वृत्ति उठे तो भी (-फिर भले ही वह आहार उनके लिये किया हुआ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

न हो और निर्दोष हो तो भी-) वह आहार लेनेकी वृत्ति छोड़ देते हैं। और कदाचित् उद्देशिक (-मुनिके लिये बनाया हुआ) आहार हो, किन्तु यदि स्वयंको शंकाकी वृत्ति न उठे और वह आहार ले लें तो भी मुनिको वहां कुछ भी दोष नहीं लगता। इसप्रकार क्रमबद्धपर्यायका निर्णय करनेवालेका जोर अपने ज्ञानस्वभावकी ओर जाता है; पुरुषार्थका जोर ज्ञायकस्वभावकी ओर ढले बिना क्रमबद्धपर्यायका यथार्थ निर्णय हो ही नहीं सकता।

(९५) क्रमबद्धपर्यायके निर्णयमें जैनशासन

देखो अपने ज्ञाता-दृष्टा स्वभावकी प्रतीतिपूर्वक इस क्रमबद्ध-पर्यायका निर्णय किया वहां अपनी क्रमबद्धपर्यायमें ज्ञातापनेकी ही अधिकता हुई, और रागका भी ज्ञाता रहा। क्रमबद्धपर्यायका निर्णय भी ज्ञायकस्वभावकी दृष्टि द्वारा ही होता है, इसीलिये उसमें जैन-शासन आ जाता है। जो अबद्धस्पृष्ट आत्माको देखता है वह समस्त जिनशासनको देखता है—ऐसा पन्द्रहवीं गाथामें कहा, और यहां—"जो ज्ञायकदृष्टिसे क्रमबद्धपर्यायका निर्णय करता है वह समस्त जिनशासनको देखता है"—ऐसा कहा जाता है; उन दोनोंका तात्पर्य एक ही है। दृष्टिको अन्तरोन्मुख करके जहां ज्ञा....य....क पर दृष्टि स्थिर की वहां सम्यक्श्रद्धा-ज्ञानके साथ चारित्र, आनंद, वीर्यादिका भी शुद्ध परिणमन होने लगा, यही जैनशासन है; फिर वहां साधकदशामें चारित्रकी अस्थिरताका राग और कर्मका निमित्तादि कैसे होते हैं वह भी स्व-परप्रकाशक ज्ञानमें ज्ञेयरूपसे ज्ञात हो जाता है।

जिस जीवमें या अजीवमें, जिस समय जिस पर्यायकी योग्यताका काल है उस समय उस पर्यायरूपसे वह स्वयं परिणमित होता है, किसी अन्य निमित्तके कारण वह पर्याय नहीं होती। ऐसे वस्तु-स्वभावका निर्णय करनेवाला जीव अपने ज्ञायकभावका आश्रय करके ज्ञाता-दृष्टाभावरूपसे ही उत्पन्न होता है, किन्तु अजीवके आश्रयसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उत्पन्न नहीं होता। साधक होनेसे भले ही अधूरी दशा है, तथापि ज्ञायकस्वभावके आश्रयकी मुख्यतासे ज्ञायकरूप ही उत्पन्न होता है, रागादिकी मुख्यतारूप उत्पन्न नहीं होता। जिसने ज्ञायक-स्वभावकी दृष्टिसे क्रमबद्धपर्यायका निर्णय किया वही वास्तवमें सर्वज्ञको जानता है, वही जैनशासनको जानता है, वही उपादान-निमित्त और निश्चय-व्यवहारको यथार्थरूपसे पहिचानता है। जिसे ज्ञायकस्वभावकी दृष्टि नहीं है उसे वह कुछ भी यथार्थ—सच्चा नहीं होता।

(९६) आचार्यदेवके अलौकिक मंत्र

अहो! यह तो कुन्दकुन्दाचार्यदेवके और अमृतचन्द्राचार्यदेवके अलौकिक मंत्र हैं। जिसे आत्माकी परिपूर्ण ज्ञानशक्तिका विश्वास आ जाये उसीको यह क्रमबद्धपर्याय समझमें आ सकती है। समयसारमें आचार्यदेवने जगह-जगह यह बात रखी है।—

मंगलाचरणमें ही सबसे पहले कलशमें शुद्धात्माको नमस्कार करते हुए कहा था कि—"सर्वभावांतरच्छिदे" अर्थात् शुद्धात्मा अपनेसे अन्य सर्व जीवाजीव, चराचर पदार्थोंको सर्व क्षेत्र-काल सम्बन्धी सर्व विशेषणों सहित, एक ही समयमें जाननेवाला है। यहाँ सर्व क्षेत्र-काल सम्बन्धी जानना कहा उसमें क्रमबद्धपर्याय होना आ ही गया। ("स्वानुभूत्या चकासते" अर्थात् अपनी अनुभवनक्रियासे प्रकाशित होता है—ऐसा कहकर उसमें स्व-परप्रकाशकपना भी बतलाया है।)

फिर दूसरी गाथामें जीवके स्वरूपका वर्णन करते हुए कहा है कि—"क्रमरूप और अक्रमरूप प्रवर्तित अनेक भाव जिसका स्वभाव होनेसे जिसने गुण-पर्यायें अंगीकार की है।"—उसमें क्रमबद्धपर्यायकी बात आगई।

तत्पश्चात् "अनुक्रमसे आविर्भाव और तिरोभाव प्राप्त करती हुई वे-वे व्यक्तियाँ....." इसप्रकार ६२ वीं गाथामें कहा, उसमें भी क्रमबद्धपर्यायकी बात समा गई।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तत्पश्चात् कर्ताकर्म अधिकारकी गाथा ७६-७७-७८ में "प्राप्य, विकार्य और निर्वर्त्य" ऐसे कर्मकी बात की; वहां कर्ता, जो नवीन उत्पन्न नहीं करता तथा विकार करके अर्थात् फेरफार करके भी नहीं करता, मात्र जिसे प्राप्त करता है वह कर्ताका प्राप्य कर्म है,—ऐसा कहा उसमें भी पर्यायका क्रमबद्धपना आ गया। द्रव्य अपनी क्रमबद्ध-पर्यायको प्रतिसमय प्राप्त करता है—पहुँच जाता है।

तत्पश्चात् पुण्य-पाप अधिकारकी गाथा १६० "सो सव्वणाण-दरिसी...."में कहा है कि आत्मद्रव्य स्वयं ही "ज्ञान" होनेके कारण विश्वको (सर्व पदार्थोंको) सामान्य-विशेषरूपसे जाननेके स्वभाव-वाला है....किन्तु अपने पुरुषार्थके अपराधसे सर्व प्रकारसे सम्पूर्ण ऐसे अपनेको (अर्थात् सर्व प्रकारसे सर्व ज्ञेयोंको) जाननेवाले ऐसे अपनेको नहीं जानता इसलिये अज्ञानभावसे वर्तता है। यहाँ "विश्वको सामान्य-विशेषरूपसे जाननेका स्वभाव" कहनेसे उसमें क्रमबद्ध-पर्यायकी बात भी समा गई। जीव अपने सर्वज्ञस्वभावको नहीं जानता इसलिये अज्ञानी है। यदि अपने सर्वज्ञस्वभावको जाने तो उसमें क्रमबद्धपर्यायका भी निर्णय हो जाये और अज्ञान न रहे।

आस्रव अधिकारमें गाथा १६६ में "स्वयं ज्ञानस्वभाववाला होकर, केवल जानता ही है"—ऐसा कहा, वहां ज्ञेयोंका क्रमबद्धपना आ गया।

तत्पश्चात् संवर अधिकारमें "उपयोग उपयोगमें ही है, क्रोधमें या कर्म-नोकर्ममें उपयोग नहीं है"—ऐसा कहा, वहां उपयोगके स्व-परप्रकाशकस्वभावमें क्रमबद्धपर्यायकी बात भी सिद्ध हो जाती है।

फिर निर्जरा अधिकार गाथा २१६ में वेद्य और वेदक दोनों भावोंकी क्षणिकता बतलाई है; ये दोनों भाव कभी इकट्ठे नहीं होते—ऐसा होकर उनकी क्रमबद्धता बतलाई है। समय-समयकी उत्पन्नध्वंसी पर्याय पर ज्ञानीकी दृष्टि नहीं है किन्तु ध्रुव ज्ञायक-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वभाव पर उसकी दृष्टि है, ध्रुव ज्ञायक पर दृष्टि रखकर वह क्रमबद्धपर्यायका ज्ञाता है।

पश्चात् बन्ध अधिकारमें १६८वें कलश (सर्वं सदैव नियतं....) में कहा है कि—इस जगतमें जीवोंको मरण, जीवित, दुःख, सुख —सब सदैव नियमसे अपने कर्मके उदयसे होता है; "दूसरा पुरुष दूसरेके मरण, जीवन, दुःख, सुख करता है,—ऐसा जो मानना है वह तो अज्ञान है।" इसलिये आत्मा उस क्रमबद्धपर्यायका ज्ञाता है, किन्तु उसका बदलनेवाला नहीं है—यह बात उसमें आ गई।

मोक्ष अधिकारमें गाथा २९७-९८-९९ में छह कारकोंका वर्णन करके, आत्माको "सर्वविशुद्धचिन्मात्रभाव" कहा। 'सर्व-विशुद्धचिन्मात्र' कहनेसे सामनेवाले ज्ञेय पदार्थोंके परिणाम भी क्रमबद्ध हैं—ऐसा उसमें आ गया।

इस सर्वविशुद्धज्ञान अधिकारकी चलती हुई (३०८ से ३११ वीं) गाथाओंमें भी क्रमबद्धपर्यायकी स्पष्ट बात की है।

दूसरे शास्त्रोंमें भी अनेक स्थानों पर यह बात की है। पं० बनारसीदासजीने श्री जिनेन्द्र भगवानके १००८ नामोंमें "क्रमवर्ती" —ऐसा भी एक नाम दिया है।

(९७) स्पष्ट और मूलभूत बात—"ज्ञानशक्तिका विश्वास"

यह तो सीधी और स्पष्ट बात है कि आत्मा ज्ञान है, सर्वज्ञताका उसमें सामर्थ्य है; सर्वज्ञतामें क्या जानना शेष रह गया? सर्वज्ञताके सामर्थ्य पर जोर न आये तो क्रमबद्धपर्याय समझमें नहीं आ सकती। इधर सर्वज्ञताके सामर्थ्यको प्रतीतिमें लिया वहाँ ज्ञेयोंमें क्रमबद्धपर्यायें हैं उसका निर्णय भी हो गया। इस प्रकार यह आत्माके मूलभूत ज्ञायकस्वभावकी बात है। इसका निर्णय न करे तो सर्वज्ञकी भी सच्ची श्रद्धा नहीं होती। जिसे आत्माकी ज्ञान-शक्तिका ही विश्वास न आये उसे जैनशासनकी एक भी बात समझमें नहीं आ सकती।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सम्यक्त्वी अपने ज्ञायकस्वभावका आश्रय करके ज्ञातापनेके क्रमबद्धपरिणामरूप उत्पन्न होता हुआ जीव ही है, किन्तु कर्मका आश्रय करके उत्पन्न नहीं होता इसलिये अजीव नहीं है।

तत्पश्चात् स्वरूपमें विशेष एकाग्रता द्वारा छट्ठे—सातवें गुणस्थानरूप मुनिदशा प्रगट हुई, उस मुनिदशारूप भी जीव स्वयं ही अपने क्रमबद्धपरिणामसे उत्पन्न होता हुआ जीव ही है, किन्तु निर्दोष आहारादिके आश्रयसे उस पर्यायरूपसे उत्पन्न नहीं होता इसलिये अजीव नहीं है।

फिर केवलज्ञानदशा हुई, उसमें भी जीव स्वयं ही क्रमबद्ध-परिणमित होकर उस अवस्थारूपसे उत्पन्न हुआ है, इसलिये वह जीव ही है, किन्तु चौथा काल या शरीरका संहनन आदि अजीवके कारण वह अवस्था उत्पन्न नहीं हुई, तथा जीवने उस अजीवकी अवस्था नहीं की, इसलिये वह अजीव नहीं है।

(६८) अहो ! ज्ञाताकी क्रमबद्धधारा !

देखो, यह ज्ञाताकी क्रमबद्धपर्याय ! इसमें तो केवलज्ञानका समावेश होता है, मोक्षमार्ग आ जाता है, सम्यग्दर्शन आ जाता है। और इससे विरुद्ध माननेवाला अज्ञानी कैसा होता है उसका ज्ञान भी आ जाता है। जीव और अजीव सभी तत्त्वोंका निर्णय इसमें आ जाता है।

देखो, यह सत्यकी धारा !—ज्ञायकभावका क्रमबद्धप्रवाह ! ! ज्ञानीको अपने ज्ञायकस्वभावमें एकता द्वारा सम्यग्दर्शनसे प्रारम्भ करके ठेठ केवलज्ञान तक अकेले ज्ञायकभावकी क्रमबद्धधारा चली जाती है।

शास्त्रमें उपदेशकथन अनेक प्रकारके आते हैं। उस-उस काल संतोंको वैसे विकल्प उठनेसे उस प्रकारकी उपदेशवाणी निकली; वहाँ ज्ञाता तो अपने ज्ञायकभावकी धारारूपसे उत्पन्न होता हुआ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उस वाणी और विकल्पका ज्ञाता ही है, किन्तु उसमें तन्मय होकर उसरूप उत्पन्न नहीं होता ।

जगतका कोई पदार्थ बीचमें आकर जीवकी क्रमबद्धपर्यायको बदल दे—ऐसा तीनकालमें नहीं होता; जीव अपनी क्रमबद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न होता हुआ जीव ही है; इसीप्रकार अजीव भी उसकी क्रमबद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न होता हुआ अजीव ही है। जो जीव ऐसा निर्णय और भेदज्ञान नहीं करता वह अज्ञानरूपसे भ्रांतिमें भ्रमण कर रहा है ।

(९९) ज्ञानके निर्णयमें क्रमबद्धका निर्णय

प्रश्नः—तीनकालकी पर्याय क्रमबद्ध है, तथापि कलकी बात भी ज्ञात क्यों नहीं होती ?

उत्तरः—उसका जाननेवाला ज्ञायक कौन है उसका तो पहले निर्णय करो। ज्ञाताका निर्णय करनेसे तीनकालकी क्रमबद्धपर्यायका भी निर्णय हो जायेगा। और देखो, गई कलको शनिवार था और कल सोमवार ही आयेगा, उसके बाद मंगलवार ही आयेगा,—इस प्रकार सातों वारोंकी क्रमबद्धता जानी जा सकती है या नहीं ? 'बहुत समय बाद कभी सोमवारके पश्चात् शनिवार आ जायेगा तो ? अथवा रविवारके बाद बुधवार आ जायेगा तो !....ऐसी शंका कभी नहीं होती क्योंकि उस प्रकारका क्रमबद्धताका निर्णय हुआ है। उसी प्रकार आत्माके केवलज्ञान स्वभावकी प्रतीति करनेसे समस्त द्रव्योंकी क्रमबद्धपर्यायका निर्णय हो जाता है। यहां तो 'क्रमबद्ध-पर्याय" कहनेसे ज्ञायकका निर्णय करनेका प्रयोजन है। ज्ञाता अपने स्वभावसन्मुख होकर परिणमित हुआ वहां स्वयं स्वकालमें क्रमबद्ध परिणमित होता है और उसका स्व-परप्रकाशकज्ञान विकसित हुआ वह परको भी क्रमबद्धपरिणमित जानता है, इसलिये उनका वह कर्ता नहीं होता ।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(१००) "निमित्त न आये तो ?"—ऐसा कहनेवाला निमित्तको नहीं जानता

प्रश्नः—यदि वस्तुकी क्रमबद्धपर्याय अपने आप निमित्तके बिना हो जाती हो तो, यह पीछी यहां पड़ी है उसे हाथके निमित्त बिना ऊपर उठा दीजिये !

उत्तरः—अरे भाई ! पीछीकी अवस्था पीछीमें और हाथकी अवस्था हाथमें,—उसमें तू क्या कर सकता है ? पीछी उसके क्षेत्रान्तरकी क्रमबद्धपर्यायसे ही ऊपर उठती है, और उस समय हाथ आदि निमित्त भी अपनी क्रमबद्धपर्यायरूपसे होते ही हैं, न हों ऐसा नहीं होता। इसप्रकार निमित्तका अस्तित्व होने पर भी उसे जो नहीं मानता, और "निमित्त न आये तो....." ऐसा तर्क करता है वह क्रमबद्धपर्यायको या उपादान-निमित्तको समझा ही नहीं है। "है" फिर "न हो तो...." यह प्रश्न ही कहां से आया ?

(१०१) "निमित्त बिना कार्य नहीं होता"—इसका आशय क्या ?

उपादान-निमित्तकी स्पष्टताका प्रचार होनेसे अब कुछ लोग ऐसी भाषाका उपयोग करते हैं कि—"निमित्त भले ही कुछ नहीं करता, किन्तु उसके बिना तो कार्य नहीं होता न !" किन्तु गहराई से तो उनके भी निमित्ताधीन दृष्टि ही पड़ी है। निमित्त होता है उसे प्रसिद्ध करनेके लिये शास्त्रमें भी ऐसा कहा जाता है कि "निमित्तके बिना नहीं होता;" किन्तु "कार्य होना हो, और निमित्त न आये तो नहीं हो सकता"—ऐसा उसका अर्थ नहीं है । देवसेनाचार्य नयचक्र पृष्ठ ५२-५३ में कहते हैं कि—"यद्यपि मोक्षरूपी कार्यमें भूतार्थसे जाना हुआ आत्मा आदि उपादान कारण है, तथापि वह सहकारी कारण बिना सिद्ध नहीं होता; इसलिये सहकारी कारणकी प्रसिद्धिके लिये निश्चय और व्यवहारका अविनाभाव सम्बन्ध बतलाते हैं।" इसमें तो क्रमबद्धपर्यायमें उपादानकी योग्यताके समय उस प्रकारका निमित्त होता है—ऐसा ज्ञान कराया है; कोई अज्ञानी,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निमित्तको सर्वथा न मानता हो तो, "निमित्त बिना नहीं होता"—ऐसा कहकर निमित्तकी प्रसिद्धि कराई है अर्थात् उसका ज्ञान कराया है। किन्तु उससे निमित्त आया इसलिये कार्य हुआ और निमित्त न होता तो वह पर्याय नहीं होती"—ऐसा उसका सिद्धान्त नहीं है। "निमित्त बिना नहीं होता"—इसका आशय इतना ही है कि जहां-जहां कार्य होता है वहां वह होता है, न हो ऐसा नहीं हो सकता। निमित्तका ज्ञान करानेके लिये निमित्तकी मुख्यतासे कथन होता है परन्तु निमित्तकी मुख्यतासे कहीं पर कार्य नहीं होता, शास्त्रोंमें तो निमित्तके और व्यवहारके अनेक लेख भरे हैं; किन्तु स्व-परप्रकाशक जागृत हुए बिना उनका आशय स्पष्ट कौन करेगा ?

(१०२) शास्त्रोंके उपदेशके साथ क्रमबद्धपर्यायकी सन्धि

कुन्दकुन्दाचार्यदेवकी आज्ञासे वसुबिन्दु अर्थात् जयसेनाचार्य-देवने दो दिनमें ही एक प्रतिष्ठापाठकी रचना की है, उसमें जिनेन्द्र-प्रतिष्ठा सम्बन्धी क्रियाओंका प्रारम्भसे लेकर अंत तकका वर्णन किया है। प्रतिमाजीके लिये ऐसा पाषाण लाना चाहिये, ऐसी विधि-से लाना चाहिये; ऐसे कारीगरोंके पास ऐसी प्रतिमा बनवाना चाहिए तथा अमुक विधिके लिये मिट्टी लेने जाये वहां जमीन खोदकर मिट्टी ले ले और फिर बढ़ी हुई मिट्टीसे वह गड्ढा पूरने पर यदि मिट्टी बढ़े तो उसे शुभ शकुन समझना चाहिये।—इत्यादि अनेक विधियोंका वर्णन आता है, किन्तु आत्माका ज्ञायकपना रखकर वह सब बात है। ज्ञायकपनेसे च्युत होकर या क्रमबद्धपनेको तोड़कर वह बात नहीं है। प्रतिष्ठा करानेवालेको उस प्रकारका विकल्प होता है और मिट्टी आदिकी वैसी क्रमबद्धपर्याय होती है—उसकी वहां पहिचान कराई है, किन्तु ऐसा नहीं बतलाया है कि अजीवकी पर्याय जीव कर देता है। प्रतिष्ठामें "सिद्धचक्रमण्डलविधान" और "यागमण्डलविधान" आदिके बड़े बड़े रंगबिरंगे मण्डल रचे जाते हैं, और शास्त्रमें भी उनका उपदेश आता है, तथापि वह सब क्रमबद्ध ही है; शास्त्रमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसका उपदेश दिया इसलिये उसकी क्रमबद्धता मिट गई या जीव उसका कर्ता हो गया—ऐसा नहीं है। ज्ञाता तो अपनेको जानता हुआ उसे भी जानता है, और क्रमबद्धपर्यायसे स्वयं अपने ज्ञायकभावरूप उत्पन्न होता है।

इसी प्रकार मुनिकी समितिके उपदेशमें भी "देखकर चलना, विचारकर बोलना, वस्तुको यत्नपूर्वक उठाना-रखना"—इत्यादि कथन आता है, किन्तु उसका आशय यह बतलानेका नहीं है कि शरीरकी क्रियाको जीव कर सकता है। मुनिदशामें उस-उस प्रकारका प्रमादभाव होता ही नहीं, हिंसादिका अशुभभाव होता ही नहीं-ऐसा ही मुनिदशाकी क्रमबद्धपर्यायका स्वरूप है—वह बतलाया है। निमित्तसे कथन करके समझायें, तो उससे कहीं क्रमबद्धपर्यायका सिद्धान्त नहीं टूट जाता है।

(१०३) स्वयंप्रकाशी ज्ञायक

शरीरादिका प्रत्येक परमाणु स्वतन्त्ररूपसे अपनी क्रमबद्ध-पर्यायरूप परिणमित हो रहा है, उसे कोई दूसरा अन्यथा बदल दे—ऐसा तीनकालमें नहीं हो सकता। अहो! भगवान आत्मा तो स्वयं-प्रकाशी है, अपने ज्ञायकभाव द्वारा वह स्व-परका प्रकाशक ही है; किन्तु अज्ञानीको उस ज्ञायकस्वभावकी बात नहीं जमती। मैं ज्ञायक क्रमबद्धपर्यायोंको यथावत् जाननेवाला हूँ;—सदा जाननेवाला ही हूँ किन्तु किसीको बदलनेवाला नहीं हूँ—ऐसी स्वसन्मुख प्रतीति न करके अज्ञानी जीव कर्ता होकर परको बदलना मानता है, वह मिथ्या-मान्यता ही संसारपरिभ्रमणका मूल है।

सर्व जीव स्वयंप्रकाशी ज्ञायक हैं; उसमें—

(१) केवली भगवान "पूर्ण ज्ञायक" हैं; (उनके ज्ञायकपना पूर्ण व्यक्त हो गया है।)

(२) सम्यक्त्वी—साधक "अपूर्ण ज्ञायक" हैं; (उनके पूर्ण ज्ञायकपना प्रतीतिमें आ गया है, किन्तु अभी पूर्ण व्यक्त नहीं हुआ।)

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(३) अज्ञानी "विपरीत ज्ञायक" हैं; (उन्हें अपने ज्ञायकपने की खबर नहीं है।)

ज्ञायकस्वभावकी अप्रतीति वह संसार,

ज्ञायकस्वभावकी प्रतीति द्वारा साधक दशा वह मोक्षमार्ग, और—ज्ञायकस्वभाव पूर्ण विकसित हो जाये वह केवलज्ञान और मोक्ष।

(१०४) प्रत्येक द्रव्य "निजभवन" में ही विराजमान है

जगतमें प्रत्येक द्रव्य अपनी क्रमबद्धपर्यायके साथ तद्रूप है, किन्तु परके साथ तद्रूप नहीं है। अपने-अपने भावका जो "भवन" है, उसीमें प्रत्येक द्रव्य विराजमान है। जीवके गुण-पर्यायें वह जीवका भाव है और जीव भाववान है; अजीवके गुण-पर्यायें वह उसका भाव है और अजीव भाववान है। अपने-अपने भावका जो भवन अर्थात् परिणमन—उसीमें सब द्रव्य विराजमान हैं। जीवके भवनमें अजीव नहीं जाता—प्रवेश नहीं करता, और अजीवके भवनमें जीव प्रविष्ट नहीं होता। इसी प्रकार एक जीवके भवनमें दूसरा जीव प्रवेश नहीं करता और एक अजीवके भवनमें दूसरा अजीव नहीं जाता। जीव या अजीव प्रत्येक द्रव्य तीनोंकाल अपने-अपने निज भवनमें (निज परिणमनमें) विराजमान है; अपने निज भवनमेंसे बाहर निकलकर दूसरेके भवनमें कोई द्रव्य नहीं जाता।

सुदृष्टितरंगिणीमें छह मुनियोंका उदाहरण देकर कहा है कि:—जिस प्रकार एक गुफामें बहुत समयसे छह मुनिराज रहते हैं; किन्तु कोई किसीसे मोहित नहीं है, उदासीनता सहित एक गुफामें रहते हैं, छहों मुनिवर अपनी-अपनी स्वरूपसाधनामें ऐसे लीन हैं कि दूसरे मुनि कब क्या करते हैं उसपर लक्ष ही नहीं जाता; एक-दूसरेसे निरपेक्ष रहकर सब अपने-अपनेमें एकाग्र होकर विराजमान हैं। उसीप्रकार इस चौदह ब्रह्माण्डरूपी गुफामें जीवादि छहों द्रव्य एक-दूसरेसे निरपेक्ष रूपसे अपने-अपने स्वरूपमें विराजमान हैं, कोई द्रव्य अन्य द्रव्यकी अपेक्षा नहीं रखता; सर्व द्रव्य अपने-अपने गुण-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पर्यायोंमें ही विद्यमान हैं; जगतकी गुफामें छहों द्रव्य स्वतंत्ररूपसे अपने-अपने स्वरूपमें परिणमित हो रहे हैं। उसमें भगवान आत्मा ज्ञायकस्वभाववाला है, आत्माके अतिरिक्त पांचों द्रव्योंमें ज्ञायकपना नहीं है।

(१०५) यह बात न समझनेवालोंकी कुछ भ्रमणायें

आत्मा ज्ञायक है, और ज्ञायकस्वभावरूपसे परिणमित होता हुआ वह क्रमबद्धपर्यायोंका ज्ञाता ही है। इसमें ज्ञायकस्वभावकी दृष्टिका अनन्तबल आता है;—उसे न समझनेवाले अज्ञानी मूढ़ जीवोंको इसमें एकान्त नियतपना ही भासित होता है, किन्तु उसके साथ स्वभाव और पुरुषार्थ, श्रद्धा और ज्ञानादि आ जाते हैं वे उसे भासित नहीं होते।

कुछ लोग यह बात सुननेके बाद क्रमबद्धपर्यायकी बातें करना सीखे हैं, किन्तु उसका ध्येय कहां जाता है और उसे समझनेवालेकी दशा कैसी होती है वह नहीं जानते, इसलिये वे भी भ्रमणमें ही रहते हैं।

"हम निमित्त बनकर परकी व्यवस्थामें फेरफार कर दें"—ऐसा कुछ अज्ञानी मानते हैं, वे भी मूढ़ हैं।

प्रश्नः—अगर ऐसा है, तो पच्चीस आदमियोंको भोजनका निमन्त्रण देकर फिर चुपचाप बैठे रहें, तो क्या अपने आप रसोई बन जायेगी!!

उत्तरः—भाई, यह तो अन्तर्दृष्टिकी गहरी बात है, इसप्रकार अद्धर से यह नहीं जम सकती। जिसे निमंत्रण देनेका विकल्प आया, वह कहीं वीतराग नहीं है, इसलिये उसे विकल्प आये बिना नहीं रहेगा; किन्तु जीवको विकल्प आये, तो भी वहां वस्तुमें क्रमबद्धरूपसे जो अवस्था होना है, वही होती है। यह जीव विकल्प करे, तथापि सामनेवाली वस्तुमें वैसी अवस्था नहीं भी होती;

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इसलिये विकल्पके कारण बाह्यकार्य होते हैं—ऐसा नहीं है। और विकल्प होता है उसपर भी ज्ञानीकी दृष्टिका बल नहीं है।

(१०६) "ज्ञानी क्या करते हैं"—वह अन्तर्दृष्टिके बिना नहीं जाना जा सकता

प्रश्नः—शरीरमें रोगका होना या मिटना वह सब अजीवकी क्रमबद्धपर्याय है—ऐसा ज्ञानी जानते हैं, तो भी वे दवा तो करते हैं, खाने-पीनेमें भी परहेज रखते हैं—सब करते हैं!

उत्तरः—तुझे ज्ञायकभावकी खबर नहीं है, इसलिये अपनी बाह्यदृष्टिने तुझे ज्ञानी सब करते दिखाई देते हैं, किन्तु ज्ञानी तो अपने ज्ञायकस्वभावकी दृष्टिसे ज्ञायकभावमें ही तन्मयरूपसे परिणमित हो रहे हैं, रागमें तन्मय होकर भी वे परिणमित नहीं होते, और परकी कर्ताबुद्धि तो उनके स्वप्नमें भी नहीं रही है। अन्तर्दृष्टिके बिना तुझे ज्ञानीके परिणमनकी खबर नहीं पड़ सकती। ज्ञानीको अभी पूर्ण वीतरागता नहीं हुई है इसलिये अस्थिरतामें अमुक रागादि होते हैं, उन्हें वे जानते हैं, किन्तु अकेले रागको जाननेकी भी प्रधानता नहीं है। ज्ञायकको जाननेकी मुख्यतापूर्वक रागको भी जानते हैं; और अनन्तानुबन्धी रागादि उनके होते ही नहीं, तथा ज्ञायकदृष्टिमें स्वसन्मुख पुरुषार्थ भी चालू ही है। जो स्वच्छन्दका पोषण करें—ऐसे जीवोंके लिये यह बात नहीं है।

(१०७) दो पंक्तियोंमें अद्भुत रचना!

अब! दो पंक्तियोंकी टीकामें तो आचार्यदेवने जगतके जीव और अजीव समस्त द्रव्यों की स्वतंत्रताका नियम रखकर अद्भुत रचना की है। जीव अपने क्रमबद्धपरिणामोंसे उत्पन्न होता हुआ जीव ही है, अजीव नहीं है; इसीप्रकार अजीव भी अपने क्रमबद्धपरिणामोंसे उत्पन्न होता अजीव ही है, जीव नहीं है। जीव अजीवकी पर्यायको करता है या अजीव जीवकी पर्यायको करता है;—ऐसा जो माने

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसे जीव-अजीवके भिन्नत्वकी प्रतीति नहीं रहती अर्थात् मिथ्याश्रद्धा हो जाती है।

(१०८) 'अभाव' है वहाँ 'प्रभाव' कैसे पाड़े ?

नः—एक-दूसरेका कुछ कर नहीं सकते, किन्तु परस्पर निमित्त होकर प्रभाव तो पाड़ते हैं न ?

उत्तरः—किस प्रकार प्रभाव पाड़ते हैं ? क्या प्रभाव पाड़कर परकी अवस्थाको कोई बदल सकता है ? कार्य हुआ उसमें निमित्तका तो अभाव है, तब फिर उसने प्रभाव कैसे पाड़ा ? जीव अपने स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी अपेक्षासे सत् है, किन्तु परवस्तुके द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी अपेक्षासे वह असत् है, इसलिये परद्रव्यकी अपेक्षासे वह अद्रव्य है, परक्षेत्रकी अपेक्षासे वह अक्षेत्र है, परकालकी अपेक्षासे वह अकाल है, और परवस्तुके भावकी अपेक्षासे वह अभावरूप है; तथा इस जीवके द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी अपेक्षासे अन्य सर्व वस्तुयें अद्रव्य-अक्षेत्र-अकाल और अभावरूप हैं। तब फिर कोई किसीमें प्रभाव पाड़े यह बात नहीं रहती। द्रव्य, क्षेत्र और भावको तो स्वतन्त्र कहे, किन्तु काल अर्थात् स्वपर्याय परके कारण (निमित्तके कारण) होती है—ऐसा माने वह भी स्वतन्त्र वस्तुस्वरूपको नहीं समझा है। प्रत्येक वस्तु प्रतिसमय अपनी क्रमबद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न होती है अर्थात् उसका स्वकाल भी अपनेसे—स्वतंत्र है।

एक पण्डितजी ऐसा कहते हैं कि—"अमुक-अमुक द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावमें ऐसी शक्ति है कि निमित्त होकर दूसरे पर प्रभाव डालते हैं"—किन्तु यदि निमित्त प्रभाव डालकर परकी पर्यायको बदल देता हो तो दो वस्तुओंकी भिन्नता हो कहां रही ? प्रभाव डालना कहना तो मात्र उपचार है। यदि परके द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावसे अपनी पर्याय होना माने तो, अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावसे स्वयं नहीं है—ऐसा हो जाता है इसलिये अपनी नास्ति हो जाती है। इसी प्रकार स्वयं निमित्त होकर परकी अवस्थाको करे तो सामने-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वाली वस्तुकी नास्ति हो जाती है। और कोई द्रव्य परका कार्य करे तो द्रव्य पररूप है—ऐसा हो गया, इसलिये अपने रूप नहीं रहा। जीवके स्वकालमें जीव है और अजीवके स्वकालमें अजीव है; कोई किसीका कर्ता नहीं है।

पुनश्च, निमित्तकी बलवानता बतलानेके लिये सूकरीके दूधका दृष्टान्त देते हैं कि—सूकरीके पेटमें दूध तो बहुत भरा है, किन्तु दूसरा कोई उसे नहीं निकाल सकता; उसके छोटे-छोटे बच्चोंके आकर्षक मुँहका निमित्त पाकर वह दूध झट उनके गलेमें उतर जाता है।—इसलिये देखो, निमित्तका कितना सामर्थ्य है!—ऐसा कहते हैं किन्तु भाई! दूधका प्रत्येक रजकण अपने स्वतन्त्र क्रमबद्धभावसे ही परिणमित हो रहा है। इसीप्रकार "हल्दी और चूनेके मिलनेसे लाल रंग हुआ तो वहां एक दूसरे पर प्रभाव डालकर नई अवस्था हुई या नहीं?"—ऐसा भी कोई कहते हैं, किन्तु वह बात सच्ची नहीं है। हल्दी और चूनेके रजकण एकमेक हुए ही नहीं हैं, उन दोनोंका प्रत्येक रजकण स्वतंत्ररूपसे अपने-अपने क्रमबद्धपरिणामसे ही उस अवस्थारूप उत्पन्न हुआ है, किसी दूसरेके कारण वह अवस्था नहीं हुई। जिसप्रकार हारमें अनेक मोती गुँथे हैं; उसी प्रकार द्रव्यमें अनादि-अनन्त पर्यायोंकी माला है, उसमें प्रत्येक पर्यायरूपी मोती क्रमानुसार लगा है।

(१०९) प्रत्येक द्रव्य अपनी क्रमबद्धपर्यायके साथ तद्रूप है

पहले तो आचार्यदेवने मूल नियम बतलाया कि जीव और अजीव दोनों द्रव्य अपनी-अपनी क्रमबद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न होते हैं; अब दृष्टान्त और उसका हेतु देते हैं। यहां दृष्टान्त भी "सुवर्ण" का दिया है;—जिसप्रकार सुवर्णको कभी जंग नहीं लगती, उस प्रकार यह मूलभूत नियम कभी नहीं फिरता। जिस प्रकार कंकनादि पर्यायोंरूपसे उत्पन्न होनेवाले सुवर्णका अपने कंकनादि परिणामोंके साथ तादात्म्य है, उसी प्रकार सर्व द्रव्योंका अपने परिणामोंके साथ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तादात्म्य है। सुवर्णमें चूड़ी आदि जो अवस्था हुई, उस अवस्थारूप-से वह स्वयं ही उत्पन्न हुआ है, स्वर्णकार नहीं; यदि स्वर्णकार वह अवस्था करता हो तो उसमें वह तद्रूप होना चाहिये; किन्तु स्वर्णकार और हथौड़ी तो एक ओर पृथक् रहने पर भी वह कंकनपर्याय तो रहती है, इसलिये स्वर्णकार या हथौड़ी उसमें तद्रूप नहीं हैं-सुवर्ण ही अपनी कंकनादिपर्यायमें तद्रूप है। इसप्रकार सर्व द्रव्योंका अपने-अपने परिणामोंके साथ ही तादात्म्य है—परके साथ नहीं।

देखो, यह मेज पर्याय है, इसमें उस लकड़ीके परमाणु ही तद्रूप होकर उत्पन्न हुए हैं; बढ़ई या आरीके कारण यह अवस्था हुई है—ऐसा नहीं है। यदि बढ़ईके द्वारा यह मेजरूप अवस्था हुई हो तो बढ़ई इसमें तन्मय होना चाहिए; किन्तु इस समय बढ़ई या आरी निमित्तरूपसे न होने पर भी उन परमाणुओंमें मेजपर्याय वर्त रही है; इसलिये निश्चित् होता है कि यह बढ़ईका या आरीका काम नहीं है। इसी प्रकार प्रत्येक वस्तुका—उत्पन्न होती हुई अपनी क्रमबद्ध-पर्यायोंके साथ ही तादात्म्यपना है, किन्तु साथमें संयोगरूपसे रहनेवाली अन्य वस्तुओंके साथ उसका तादात्म्यपना नहीं है।—ऐसा होनेसे जीवको अजीवके साथ कार्य-कारणपना नहीं है, इसलिये जीव अकर्ता है—यह बात आचार्यदेव युक्तिपूर्वक सिद्ध करेंगे।

-: पाँचवाँ प्रवचन :-

[आश्विन शुक्ला १, वीर सं० २४८०]

देखो, इस क्रमबद्धपर्यायमें वास्तवमें तो ज्ञानस्वभावी आत्माकी बात है; क्योंकि क्रमबद्धपर्यायका ज्ञाता कौन ? "ज्ञायक" को जाने बिना क्रमबद्धपर्याय को जानेगा कौन ? ज्ञायकस्वभावकी ओर उन्मुख होकर जो ज्ञायकस्वभाव-रूपसे परिणमित हुआ वह ज्ञायक अर्थात् अकर्ता हुआ, और वही क्रमबद्धपर्यायका ज्ञाता हुआ।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(११०) क्रमबद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न होनेवाला ज्ञायक परका अकर्ता है

यह सर्वविशुद्धज्ञान-अधिकार है; सर्वविशुद्धज्ञान अर्थात् शुद्धज्ञायकभाव, वह परका अकर्ता है—यह बात यहाँ सिद्ध करना है।

अपने ज्ञायकभावकी क्रमबद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न होता हुआ जीव परका कर्ता नहीं है और पर उसका कार्य नहीं है। पर्याय नई होती है उस अपेक्षासे वह "उत्पन्न होता है"—ऐसा कहा है। पहले वह पर्याय नहीं थी और नई प्रगट हुई—इसप्रकार पहलेकी अपेक्षासे वह नई उत्पन्न हुई कहलाती है; किन्तु उस पर्यायको निरपेक्षरूपसे देखें तो प्रत्येक समयकी पर्याय उस-उस समयका सत् है, उसकी उत्पत्ति और विनाश—वह तो पहलेके और बादके समयकी अपेक्षा-से है।

"द्रव्यके बिना पर्याय नहीं होती, अर्थात् द्रव्य और पर्याय-इन दो वस्तुओंके बिना कर्ताकर्मपना सिद्ध नहीं होता"—यह दलील तो तब आती है जब कर्ताकर्मपना सिद्ध करना हो; किन्तु "पर्याय भी निरपेक्ष सत् है"—ऐसा सिद्ध करना हो वहाँ यह बात नहीं आती। प्रत्येक समयकी पर्याय भी स्वयं अपनेसे सत् होनेसे "द्रव्यसे नहीं आलिंगित ऐसी शुद्धपर्याय है," पर्याय द्रव्यसे आलिंगित नहीं है अर्थात् निरपेक्ष है। (देखो, प्रवचनसार गाथा १७२, टीका) यहाँ यह बात सिद्ध करना है कि अपनी निरपेक्ष क्रमबद्धपर्यायसे उत्पन्न होता हुआ जीव उसमें तद्रूप है। द्रव्य अपनी पर्यायके साथ तद्रूप—ऐकमेक है, किन्तु परकी पर्यायके साथ तद्रूप नहीं है, इसलिये उसका परके साथ कर्ताकर्मपना नहीं है;—इसप्रकार ज्ञायक आत्मा अकर्ता है। यह कर्ताकर्म-अधिकार नहीं है किन्तु सर्वविशुद्धज्ञान-अधिकार है, इसलिये यहाँ ज्ञायकभाव परका अकर्ता है—ऐसा अकर्तापना सिद्ध करना है।

जीव अपने क्रमबद्धपरिणामोंसे उत्पन्न होता हुआ जीव ही

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है—अजीव नहीं है। "उत्पन्न होता है"—कौन उत्पन्न होता है? जीव स्वयं। जीव स्वयं जिस परिणामरूपसे उत्पन्न होता है उसके साथ उसे अनन्यपना—एकपना है; अजीवके साथ उसे अनन्यपना नहीं है इसलिये उसे अजीवके साथ कार्यकारणपना नहीं है। प्रत्येक द्रव्यको—स्वयं जिस परिणामरूपसे उत्पन्न होता है—उसीके साथ अनन्यपना है, दूसरेके परिणामोंके साथ उसे अनन्यपना नहीं है। इसलिये वह अकर्ता है। आत्मा भी अपने ज्ञायकभावरूपसे उत्पन्न होता हुआ उसके साथ तन्मय है; वह अपने ज्ञानपरिणामके साथ एकमेक है, किन्तु परके साथ एकमेक नहीं है, इसलिये वह परका अकर्ता है। ज्ञायकरूपसे उत्पन्न होते हुए जीवको कर्मके साथ एकपना नहीं है, इसलिये वह कर्मका कर्ता नहीं है; ज्ञायकदृष्टिमें वह नये कर्मबन्धनको निमित्त भी नहीं होता इसलिये वह अकर्ता ही है।

(१११) कर्मके कर्तापनेका व्यवहार किसे लागू होता है?

प्रश्नः—यह तो निश्चयकी बात है, किन्तु व्यवहारसे तो आत्मा कर्मका कर्ता है न?

उत्तरः—ज्ञायकस्वरूप आत्मापर जिसकी दृष्टि नहीं है और कर्मपर दृष्टि है, ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव ही कर्मका व्यवहारसे कर्ता है—यह बात आचार्यदेव अगली गाथाओंमें कहेंगे। इसलिये जिसे अभी कर्मके साथका सम्बन्ध तोड़कर ज्ञायकभावरूप परिणमित नहीं होना है किन्तु कर्मके साथ कर्ताकर्मपनेका व्यवहार रखना है, वह तो मिथ्यादृष्टि ही है। मिथ्यात्वादि जड़कर्मके कर्तापनेका व्यवहार अज्ञानीको ही लागू होता है।

प्रश्नः—तो फिर ज्ञानीको कौन-सा व्यवहार?

उत्तरः—ज्ञानीके ज्ञानमें तो अपने ज्ञायकस्वभावको जाननेकी मुख्यता है, और मुख्य वह निश्चय है; इसलिये अपने ज्ञायकस्वभावको जानना वह निश्चय है; और साधकदशामें बीचमें जो राग रहा है उसे जानना वह व्यवहार है। ज्ञानीको ऐसे निश्चय-व्यवहार एकसाथ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वर्तते हैं। किन्तु, मिथ्यात्वादि कर्मप्रकृतिके बन्धनमें निमित्त हो या व्यवहारसे कर्ता हो—ऐसा व्यवहार ज्ञानीके होता ही नहीं। उसे ज्ञायकदृष्टिके परिणमनमें कर्मके साथका निमित्त–नैमित्तिक–सम्बन्ध टूट गया है। अगली गाथाओंमें आचार्यदेव यह बात विस्तारपूर्वक समझायेंगे।

(११२) वस्तुका कार्यकाल

कार्यकाल कहो या क्रमबद्धपर्याय कहो; जीवका जो कार्यकाल है उसमें उत्पन्न होता हुआ जीव उससे अनन्य है, और अजीवके कार्यकालसे वह भिन्न है। जीवकी जो पर्याय हो उसमें अनन्यरूप-से जीवद्रव्य उत्पन्न होता है। उस समय जगतके अन्य जीव-अजीव द्रव्य भी सब अपने–अपने कार्यकालमें—क्रमबद्धपर्यायसे—उत्पन्न होते हैं, किन्तु उन किसीके साथ इस जीवकी एकता नहीं है।

उसी प्रकार, अजीवका जो कार्यकाल है उसमें उत्पन्न होता हुआ अजीव उससे अनन्य है, और जीवके कार्यकालसे वह भिन्न है। अजीवके एक–एक परमाणुकी जो पर्याय होती है उसमें अनन्यरूपसे वह परमाणु उत्पन्न होता है, उसे दूसरेके साथ एकता नहीं है। शरीरका हलन–चलन हो, भाषा बोली जाये,—इत्यादि पर्यायोंरूपसे अजीव उत्पन्न होता है, वह अजीवकी क्रमबद्धपर्याय है, जीवके कारण वह पर्याय नहीं होती।

(११३) निषेध किसका ? निमित्तका या निमित्ताधीनदृष्टिका ?

प्रश्नः—आप क्रमबद्धपर्याय होना कहते हैं, उसमें निमित्तका तो निषेध हो जाता है।

उत्तरः—क्रमबद्धपर्याय माननेसे निमित्तका सर्वथा निषेध नहीं हो जाता, किन्तु निमित्ताधीनदृष्टिका निषेध हो जाता है। पर्यायमें अमुक निमित्त–नैमित्तिकसम्बन्ध भले हो, किन्तु यहाँ ज्ञायकदृष्टिमें उसकी बात नहीं है। क्रमबद्धपर्याय माननेसे निमित्त होनेका सर्वथा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निषेध भी नहीं होता, तथा निमित्तके कारण कुछ होता है—यह बात भी नहीं रहती। निमित्त पदार्थ उसके क्रमबद्ध स्वकालसे अपनेमें उत्पन्न होता है और नैमित्तिक पदार्थ भी उसके स्वकालसे अपने में उत्पन्न होता है; इस प्रकार दोनोंका भिन्न-भिन्न अपनेमें परिणमन हो ही रहा है। "उपादानमें पर्याय होनेकी योग्यता तो है, किन्तु यदि निमित्त आये तो होती है, और न आये तो नहीं होती"—यह मान्यता मिथ्यादृष्टिकी है। पर्याय होनेकी योग्यता ही और पर्याय न हो—ऐसा हो ही नहीं सकता। उसी प्रकार, यहाँ क्रमबद्ध-पर्याय होनेका काल हो और उस समय उसके योग्य निमित्त न हो—ऐसा भी हो ही नहीं सकता। यद्यपि निमित्त तो परद्रव्य है, वह कहीं उपादानके आधीन नहीं है; किन्तु वह परद्रव्य उसके अपने लिये तो उपादान है, और उसका भी क्रमबद्धपरिणमन हो ही रहा है। यहाँ, आत्माको अपने ज्ञायकस्वभावसन्मुखके क्रमबद्धपरिणमनसे छट्ठे-सातवें गुणस्थानकी भावलिंगी मुनिदशा प्रगट हो, वहाँ निमित्तमें द्रव्यलिंगरूपसे शरीरकी दिगम्बर दशा ही होती है—ऐसा उसका क्रम है। कोई मुनिराज ध्यानमें बैठे हों और कोई अज्ञानी आकर उनके शरीर पर वस्त्र डाल जाये तो वह कहीं परिग्रह नहीं है, वह तो उपसर्ग है। सम्यग्दर्शन हुआ वहाँ कुदेवादिको माने ऐसा क्रमबद्ध-पर्यायमें नहीं होता, और मुनिदशा हो वहाँ वस्त्र-पात्र रखे ऐसा क्रमबद्धपर्यायमें नहीं होता,—इस प्रकार सर्व भूमिकाओंको समझ लेना चाहिये।

(११४) योग्यता और निमित्त (सर्व निमित्त धर्मास्तिकायवत् हैं)

'इष्टोपदेश' में (३५ वीं गाथा में) कहा है कि कोई भी कार्य होनेमें वास्तविक रूपसे उसकी अपनी योग्यता ही साक्षात् साधक है, अर्थात् प्रत्येक वस्तुकी अपनी योग्यतासे ही कार्य होता है, वहाँ दूसरी वस्तु तो धर्मास्तिकायवत् निमित्तमात्र है। जिस प्रकार अपनी योग्यतासे स्वयं गति करनेवाले पदार्थोंको धर्मास्तिकाय तो सर्वत्र बिछा हुआ निमित्त है, वह कहीं किसीको गति नहीं कराता; उसी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रकार प्रत्येक वस्तुमें अपनी क्रमबद्धपर्यायकी योग्यतासे ही कार्य होता है, उसमें जगतकी दूसरी वस्तुयें तो मात्र धर्मास्तिकायवत् हैं। देखो, यह इष्ट-उपदेश। ऐसी स्वाधीनताका उपदेश ही इष्ट है, हितकारी है, यथार्थ है। इससे विपरीत मान्यताका उपदेश हो तो वह इष्ट-उपदेश नहीं है किन्तु अनिष्ट है। जैनदर्शनका उपदेश कहो ....आत्माके हितका उपदेश कहो....इष्ट उपदेश कहो....यथार्थ उपदेश कहो....सत्यका उपदेश कहो....अनेकान्तका उपदेश कहो या सर्वज्ञ-भगवानका उपदेश कहो....वह यह है कि-जीव और अजीव प्रत्येक वस्तुमें अपनी-अपनी क्रमबद्धयोग्यतासे ही कार्य होता है, परसे उसमें कुछ भी नहीं होता। वस्तु अपनी क्रमबद्धपर्यायरूप अपनी योग्यतासे ही स्वयं परिणमित हो जाती है, दूसरी वस्तु तो धर्मास्ति-कायवत् निमित्तमात्र है। यहाँ धर्मास्तिकायका उदाहरण देकर पूज्यपादस्वामीने निमित्तका स्वरूप बिलकुल स्पष्ट कर दिया है।

धर्मास्तिकाय तो समस्त लोकमें सदैव ज्योंका त्यों स्थित है; जो जीव या पुद्गल स्वयं अपनी योग्यतासे ही गति करते हैं, उन्हें वह निमित्तमात्र है। गतिरूपसे 'स्वयं परिणमितको' ही निमित्त है; स्वयं परिणमित न होनेवालेको वह परिणमित नहीं कराता; और न निमित्त भी होता है।

"योग्यताके समय निमित्त न हो तो ?" ऐसी शंका करने-वाला वास्तवमें योग्यताको या निमित्तके स्वरूपको नहीं जानता। जिसप्रकार कोई पूछता है कि—"जीव-पुद्गलमें गति करनेकी योग्यता तो है, किन्तु धर्मास्तिकाय न हो तो ?"—तो ऐसा पूछनेवाला वास्तवमें जीव-पुद्गलकी योग्यताको या धर्मास्तिकायको भी नहीं जानता है; क्योंकि गतिके समय सदैव धर्मास्तिकाय निमित्तरूपसे होता ही है, जगतमें धर्मास्तिकाय न हो ऐसा कभी होता ही नहीं।

"योग्यताके समय निमित्त न हो तो ?"

"गतिकी योग्यताके समय धर्मास्तिकाय न हो तो ?"

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

"पानी गर्म होनेको योग्यताके समय अग्नि न हो तो ?"

"मिट्टीमें घड़ा होनेकी योग्यताके समय कुम्हार न हो तो ?"

"जीवमें मोक्ष होनेकी योग्यता हो, किन्तु वज्रर्षभनाराच-संहनन न हो तो ?"

—यह सब प्रश्न एक ही प्रकारके—निमित्ताधीन दृष्टिवालेके—हैं। इसी प्रकार गुरु-शिष्य, क्षायकसम्यक्त्व और केवली-श्रुत-केवली-आदि सभीमें समझ लेना चाहिये। जगतमें जीव या अजीव प्रत्येक द्रव्य अपने-अपने नियमित स्वकालकी योग्यतासे ही परिणमित होता है, उस समय दूसरी वस्तु निमित्तरूप हो वह "गतेः धर्मास्तिकायवत्" है। कोई भी कार्य होनेमें वस्तुकी "योग्यता ही" निश्चयकारण है; दूसरा कारण कहना वह "गतिमें धर्मास्तिकायवत्" उपचारमात्र है, अर्थात् वास्तवमें वह कारण नहीं है। अपनी क्रम-बद्धपर्यायरूपसे वस्तु स्वयं ही उत्पन्न होती है—यह नियम समझे तो निमित्ताधीनदृष्टिकी सब गुत्थियाँ सुलझ जायें। वस्तु एक समयमें उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वरूप है। एक समयमें अपनी क्रमबद्धपर्याय रूपसे उत्पन्न होती है, उसी समय पूर्व पर्यायसे व्ययको प्राप्त होती है, और उसी समय अखण्डतारूपसे ध्रुव स्थिर रहती है—इस प्रकार उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप वस्तु स्वयं वर्तती है; एक वस्तुके उत्पाद-व्यय-ध्रुवमें बीचमें कोई दूसरा द्रव्य घुस जाये—ऐसा नहीं होता।

जिस प्रकार वास्तवमें मोक्षमार्ग तो एक ही है, किन्तु उसका निरूपण दो प्रकारसे है; निश्चयरत्नत्रयको मोक्षमार्ग कहना वह तो वास्तवमें मोक्षमार्ग है, और शुभरागरूप व्यवहाररत्नत्रयको मोक्ष-मार्ग कहना वह वास्तवमें मोक्षमार्ग नहीं है, किन्तु उपचारमात्र है।

उसी प्रकार कार्यका कारण वास्तवमें एक ही है। वस्तुकी योग्यता ही सच्चा कारण है, और निमित्तको दूसरा कारण कहना वह सच्चा कारण नहीं है, किन्तु उपचारमात्र है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इसी प्रकार कार्यका कर्ता भी एक ही है, दो कर्ता नहीं हैं। दूसरेको कर्ता कहना वह उपचारमात्र है।

(११५) प्रत्येक द्रव्यका स्वतंत्र परिणमन जाने बिना भेदज्ञान नहीं होता

यहाँ कहते हैं कि द्रव्य उत्पन्न होता हुआ अपने परिणामसे अनन्य है; इसलिये उस परिणमनके कर्ता दो नहीं होते। एक द्रव्यके परिणाममें दूसरा द्रव्य तन्मय नहीं होता, इसलिये दो कर्ता नहीं होते; उसी प्रकार एक द्रव्य दो परिणाममें (अपने और परके—दोनोंके परिणाममें) तन्मय नहीं होता, इसलिये एक द्रव्य दो परिणाम नहीं करता। नाटक-समयसारमें पण्डित बनारसीदासजी कहते हैं कि—

करता परिनामी दरव,
करमरूप परिनाम।
किरिया परजयकी फिरनी
वस्तु एक त्रय नाम ॥ ७ ॥

अर्थात्—अवस्थारूपसे जो द्रव्य परिणमित होता है वह कर्ता है; जो परिणाम होते हैं वह उसका कर्म है; और अवस्थासे अवस्थान्तर होना वह क्रिया है। यह कर्ता, कर्म और क्रिया वस्तुरूपसे भिन्न नहीं हैं, अर्थात् वे भिन्न-भिन्न वस्तुमें नहीं रहते। पुनश्च—

एक परिनामके न करता दरव दोइ,
दोई परिनाम एक दर्व न धरतु है।
एक करतूति दोइ दर्व कबहूँ न करैं,
दोइ करतूति एक दर्व न करतु है॥
जीव पुद्गल एक खेत-अवगाही दोउ,
अपनें अपनें रूप कोउ न टरतु है।
जड़ परनामनिकौ करता है पुद्गल,
चिदानन्द चेतन सुभाउ आचरतु है॥ १०॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अर्थात्—एक परिणामके कर्ता दो द्रव्य नहीं होते; एक द्रव्य दो परिणामोंको नहीं करता। एक क्रियाको दो द्रव्य कभी नहीं करते, तथा एक द्रव्य दो क्रियायें नहीं करता।

जीव और पुद्गल यद्यपि एक क्षेत्रमें रहते हैं, तथापि अपने-अपने स्वभावको कोई नहीं छोड़ते। पुद्गल तो उसके जड़-परिणामका कर्ता है, और चिदानन्दआत्मा अपने चेतनस्वभावका आचरण करता है।

—इस प्रकार प्रत्येक द्रव्यके भिन्न-भिन्न स्वतंत्र परिणमनको जबतक जीव न जाने तबतक परसे भेदज्ञान नहीं होता और स्वभावमें एकता प्रगट नहीं होती, इसलिये सम्यग्दर्शनादि कुछ नहीं होते।

(११६) जो पर्यायमें तन्मय हो वही उसका कर्ता

क्रमबद्धपरिणामसे परिणमित द्रव्य अपनी पर्यायके साथ एकमेक है,—यह सिद्धांत समझानेके लिये आचार्यदेव यहाँ सुवर्णका दृष्टांत देते हैं। जिस प्रकार सुवर्णमें कुण्डलादि जो अवस्था हुई उसके साथ वह सुवर्ण एकमेक है, पृथक् नहीं है; सुवर्णकी अवस्थासे स्वर्णकार पृथक् है किन्तु सुवर्ण पृथक् नहीं है। उसी प्रकार जगतके जीव या अजीव सर्व द्रव्य अपनी-अपनी जो अवस्था होती है उसके साथ एकमेक हैं; दूसरेके साथ एकमेक नहीं हैं; इसलिये वे दूसरेके अकर्ता हैं। जो पर्याय हुई, उस पर्यायमें जो तन्मय हो वही उसका कर्ता होता है, किन्तु उससे जो पृथक हो वह उसका कर्ता नहीं होता—यह नियम है। जैसे कि—

घड़ा हुआ, वहां उस घड़ारूप अवस्थाके साथ मिट्टीके परमाणु एकमेक हैं, किन्तु कुम्हार उसके साथ एकमेक नहीं है, इसलिये कुम्हार उसका अकर्ता है।

वस्त्र हुआ, वहां उस वस्त्ररूप पर्यायके साथ ताने-बानेके परमाणु एकमेक हैं, किन्तु बुनकर उसके साथ एकमेक नहीं है, इसलिये वह उसका अकर्ता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आलमारी हुई, वहाँ उस आलमारीकी अवस्थाके साथ लकड़ीके परमाणु एकमेक हैं, किन्तु बढ़ई उसके साथ एकमेक नहीं है, इसलिये वह उसका अकर्ता है।

रोटी हुई, वहाँ रोटीके साथ आटेके परमाणु एकमेक हैं, किन्तु स्त्री (रसोई बनानेवाली) उसके साथ एकमेक नहीं है, इसलिये स्त्री रोटीकी अकर्ता है।

सम्यग्दर्शन हुआ, वहाँ उस पर्यायके साथ आत्मा स्वयं एकमेक है, इसलिये आत्मा उसका कर्ता है, किन्तु अजीव उसमें एकमेक नहीं है इसलिये वह अकर्ता है। इसप्रकार सम्यग्ज्ञान, सुख, आनन्द सिद्धदशा आदि सर्व अवस्थाओंमें समझ लेना चाहिए। उस-उस अवस्थारूपसे उत्पन्न होता हुआ जीव ही उसमें तद्रूप होकर उसका कर्ता है; वह अजीव नहीं है इसलिये अजीवके साथ उसे कार्य-कारणपना नहीं है।

(११७) ज्ञाता रागका अकर्ता

यहाँ तो आचार्यदेव यह सिद्धान्त समझाते हैं कि—ज्ञायक-स्वभावसन्मुख होकर जो जीव ज्ञातापरिणामरूपसे उत्पन्न हुआ वह जीव रागका भी अकर्ता है; अपने ज्ञातापरिणाममें तन्मय होनेसे उसका कर्ता है और रागका अकर्ता है, क्योंकि रागमें वह तन्मय नहीं है। ज्ञायकभावमें जो तन्मय हुआ वह रागमें तन्मय नहीं होता, इसलिये वह रागका अकर्ता ही है।

—ऐसे ज्ञातास्वभावको जानना वह निश्चय है। स्वसन्मुख होकर ऐसा निश्चयका ज्ञान करे तो, किस पर्यायमें कैसा राग होता है और वहाँ निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध किस प्रकारका होता है,—उस सब व्यवहारका भी **यथार्थ विवेक** हो जाता है।

(११८) निश्चय-व्यवहारका आवश्यक स्पष्टीकरण

कई लोग कहते हैं कि यह तो निश्चयकी बात है, किन्तु

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

व्यवहारसे तो जीव जड़कर्मका कर्ता है! तो आचार्यदेव कहते हैं कि—अरे भाई! जिसकी दृष्टि ज्ञायक पर नहीं है और कर्म पर है ऐसे अज्ञानीको ही कर्मके कर्तापनेका व्यवहार लागू होता है; ज्ञायक-दृष्टिवाले ज्ञानीको वैसा व्यवहार लागू नहीं होता। ज्ञायकस्वभावी जीव मिथ्यात्वादि कर्मका अकर्ता होने पर भी उसे कर्मका कर्ता कहना वह व्यवहार है; और वह व्यवहार अज्ञानीको ही लागू होता है। ज्ञायकस्वभावकी दृष्टिवाला ज्ञानी तो अकर्ता ही है।

सुवर्णकी जो अवस्था हुई उसका स्वर्णकार अकर्ता है, तथापि उसे निमित्तकर्ता कहना वह व्यवहार है। जो कर्ता है उसे कर्ता जानना वह निश्चय, और अकर्ताको कर्ता कहना वह व्यवहार है। जीव अपनी क्रमबद्धअवस्थारूपसे उत्पन्न होता हुआ जीव ही है, और अजीव अपनी क्रमबद्धअवस्थारूपसे उत्पन्न होता हुआ अजीव ही है। जीव अजीवकी अवस्थाका अकर्ता है और अजीव जीवकी अवस्थाका अकर्ता।—इसप्रकार जैसे जीव-अजीवको परस्पर कर्तापना नहीं है उसी प्रकार उनको परस्पर कर्मपना, करणपना, सम्प्रदानपना, अपादानपना या अधिकरणपना भी नहीं है। मात्र निमित्तपनेसे उन्हें एक—दूसरेका कर्ता, कर्म, करण आदि कहना वह व्यवहार है। निमित्तसे कर्ता यानी वास्तवमें अकर्ता; और अकर्ताको कर्ता कहना वह व्यवहार। निश्चयसे अकर्ता हुआ तब व्यवहारका ज्ञान सच्चा हुआ। ज्ञायकस्वभावकी ओर ढलकर जो ज्ञाता हुआ वह रागको रागरूपसे जानता है किन्तु वह रागमें ज्ञानकी एकता नहीं करता, इसलिये वह ज्ञाता तो रागका भी अकर्ता है।

(११९) क्रमबद्धपर्यायका मूल

देखो, इस क्रमबद्धपर्यायमें वास्तवमें तो ज्ञानस्वभावी आत्माकी बात है; क्योंकि क्रमबद्धपर्यायका ज्ञाता कौन? "ज्ञायक" को जाने बिना क्रमबद्धपर्यायको जानेगा कौन? ज्ञायकस्वभावकी ओर ढलकर जो ज्ञायकभावरूप परिणमित हुआ वह ज्ञायक हुआ अर्थात्

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अकर्ता हुआ, और वही क्रमबद्धपर्यायका ज्ञाता हुआ। "ज्ञायक" कहो या "अकर्ता" कहो; ज्ञायक परका अकर्ता है। ज्ञायकस्वभावकी ओर ढलकर ऐसा भेदज्ञान करे, फिर साधकदशामें भूमिकानुसार जो व्यवहार रहा उसे ज्ञानी जानता है, इसलिये "व्यवहारनय उस काल जाना हुआ प्रयोजनवान है"—यह बात उसे लागू होती है मिथ्यादृष्टिको नहीं। मिथ्यादृष्टि तो ज्ञायकको भी नहीं जानता, और व्यवहारका भी उसे सच्चा ज्ञान नहीं होता।

द्रव्य अपनी जिस क्रमबद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न होता है वह पर्याय ही उसका कार्य है, दूसरा उसका कार्य नहीं है। इसप्रकार एक कर्ताके दो कार्य नहीं होते, इसलिये जीव-अजीवको परस्पर कार्य-कारणपना नहीं है। निगोदसे लेकर सिद्ध तकके समस्त जीव और एक परमाणुसे लेकर अचेतन महास्कन्ध, तथा दूसरे चार अजीव द्रव्य;—उन सबको अपने-अपने उसकालके क्रमबद्ध उत्पन्न होनेवाले परिणामोंके साथ तद्रूपपना है। पर्यायें अनादि अनन्त क्रमबद्ध होने पर भी उनमें वर्तमानरूपसे तो एक ही पर्याय वर्तती है, और उस उस समय वर्तती हुई पर्यायमें द्रव्य तद्रूपतासे वर्त रहा है। वस्तुको तो जब देखो तब वर्तमान है, जब देखो तब वर्तमान उस समयकी पर्याय सत् है, उस वर्तमानके पहले हो जानेवाली पर्यायें भूतकालमें हैं और बादमें होनेवाली पर्यायें भविष्यमें हैं; वर्तमान पर्याय एक समय भी आगे-पीछे होकर भूत या भविष्यकी पर्यायरूप नहीं हो जाती; उसीप्रकार भविष्यकी पर्याय भूतकालकी पर्यायरूप नहीं होती या भूतकालकी पर्याय भविष्यकी पर्यायरूप नहीं हो जाती। अनादि-अनन्त प्रवाहक्रममें प्रत्येक पर्याय अपने-अपने स्थान पर ही प्रकाशित रहती है; इसप्रकार पर्यायोंकी क्रमबद्धता है।—यह बात प्रवचनसार की ९९ वीं गाथामें प्रदेशोंके विस्तारक्रमका दृष्टांत देकर अलौकिक रीतिसे समझाई है।

(१२०) क्रमबद्धपर्यायमें क्या-क्या आया ?

प्रश्न:—"क्रमबद्ध" कहनेसे भूतकालकी पर्याय भविष्यरूप,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

या भविष्यकी पर्याय भूतकालरूप नहीं होती—यह बात तो ठीक है; किन्तु इस समय यह पर्याय ऐसी ही होगी—यह बात इस क्रमबद्ध-पर्यायमें कहाँ आई ?

उत्तर:—क्रमबद्धपर्यायमें जिस समयके जो परिणाम हैं वे सत् हैं; और उस परिणामका स्वरूप कैसा होता है वह भी उसमें साथ ही आ जाता है। "मैं ज्ञायक हूँ" तो मेरे ज्ञेयरूपसे समस्त पदार्थोंके तीनोंकालके परिणाम क्रमबद्ध सत् हैं—ऐसा निर्णय उसमें हो जाता है। यदि ऐसा न माने तो उसने अपने ज्ञायकभावके पूर्ण सामर्थ्यको ही नहीं माना है। मैं ज्ञायक हूँ और पदार्थोंमें क्रमबद्ध-पर्याय होती है—यह बात जिसे नहीं जमती उसे निश्चय-व्यवहारके या निमित्त-उपादान आदिके झगड़े खड़े होते हैं; किन्तु यह निर्णय करे तो सब झगड़े शान्त हो जायें और भूल दूर होकर मुक्ति हुए बिना न रहे।

(१२१) जहाँ रुचि वहाँ जोर

"निमित्तसे और व्यवहारसे तो आत्मा कर्मका कर्ता है न" !—ऐसा अज्ञानी जोर देता है; किन्तु भाई ! तेरा जोर उल्टा है; तू कर्मकी ओर जोर देता है किन्तु "आत्मा अकर्ता है—ज्ञान ही है"—इसप्रकार ज्ञायक पर जोर क्यों नहीं देता ? जिसे ज्ञायककी रुचि नहीं है और रागकी रुचि है वही कर्मके कर्तापने पर जोर देता है।

क्रमबद्धपर्यायका यथार्थ निर्णय करनेवाला कालके प्रवाहकी ओर नहीं देखता, किन्तु ज्ञायकस्वभावकी ओर देखता है; क्योंकि वस्तुकी क्रमबद्धपर्याय कहीं कालके कारण नहीं होती। कालद्रव्य तो परिणमनमें सर्व द्रव्योंको एकसाथ निमित्त है, तथापि कोई परमाणु स्कन्धमें जुडे, तो उसी समय दूसरा परमाणु उसमेंसे पृथक् होता है, एक जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है और दूसरा जीव उसी समय केवलज्ञान प्राप्त कर लेता है,—इसप्रकार जीव-अजीव द्रव्योंमें अपनी-अपनी योग्यतानुसार भिन्न-भिन्न अवस्थारूपसे क्रमबद्ध परिणाम होते

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हैं। इसलिये, अपने ज्ञानपरिणामका प्रवाह जहाँसे बहता है—ऐसे ज्ञायकस्वभाव पर दृष्टि रखकर ही क्रमबद्धपर्यायका यथार्थ ज्ञान होता है।

(१२२) तद्रूप और कद्रूप; [ज्ञानीको दिवाली, अज्ञानीको होली]

क्रमबद्धपर्यायरूपसे परिणमित होनेवाला द्रव्य अपने परिणामके साथ "तद्रूप" है;—ऐसा न मानकर दूसरा कर्ता माने तो उसने द्रव्यके साथ पर्यायको तद्रूप नहीं माना किन्तु परके साथ तद्रूप माना, इसलिये उसकी मान्यता कद्रूप हुई—मिथ्या हुई। पर्यायको अंतरोन्मुख करके ज्ञायकभावके साथ तद्रूप करना चाहिये, उसके बदले परके साथ तद्रूप मानकर कद्रूप की, उसने दिवालीके बदले होली की है। जिसप्रकार होलीके बदले दिवालीके त्यौहारमें मुँह पर कालिख पोतकर मुँह काला करले तो उसे मूर्ख कहा जायेगा, उसी प्रकार "दि....वाली" यानी अपनी निर्मल स्वपर्याय; उसमें स्वयं तद्रूप होना चाहिये उसके बदले अज्ञानी परके साथ अपनी तद्रूपता मानकर अपनी पर्यायको मलिन करता है, इसलिये वह दिवालीके बदले अपने गुणोंकी होली जलाता है। भाई, "दि" अर्थात् स्वकालको पर्याय, उसे "वाल" (झुका) अपने आत्मामें,—तो तेरे घर पर दिवालीके दीपक जगमगा उठें अर्थात् सम्यग्ज्ञानके दीप जल उठें और मिथ्यात्वकी होली दूर हो जाये। स्वकालकी पर्यायको अन्तरोन्मुख न करके परके साथ एकत्व मानकर, उस विपरीत मान्यतामें अज्ञानी अपने गुणोंको होम (जला) देता है इसलिये उसमें गुणोंकी होली जलती है—गुणोंकी निर्मलदशा प्रगट होनेके बदले मलिनदशा प्रगट होती है; उसमें आत्माकी शोभा नहीं है।

स्वभावसन्मुख होकर क्रमबद्ध आये हुए निर्मल स्वकालके साथ तद्रूपता धारण करे उसमें आत्माकी शोभा और प्रभुता है। अपनी-अपनी पर्यायके साथ तद्रूपता धारण करे उसीमें प्रत्येक द्रव्यकी प्रभुता है; यदि उसकी पर्यायमें दूसरा कोई तद्रूप होकर उसे करे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तो उसमें द्रव्यकी प्रभुता नहीं रहती; अथवा आत्मा स्वयं परके साथ तद्रूपता मानकर उसका कर्ता होने जाये तो उसमें भी अपनी या परकी प्रभुता नहीं रहती। 'जो परका कर्ता होने जाये वह अपनी प्रभुताको भूलता है। क्रमबद्धपर्यायका ज्ञातापना न मानकर उसमें उल्टा-सीधा करना माने तो वह जीव अपने ज्ञाताभावके साथ तद्रूप न रहकर मिथ्यादृष्टि—कद्रूप हो जाता है।

(१२३) यह है जैनशासनका सार !

अहो, प्रत्येक द्रव्य स्वयं ही अपनी क्रमबद्धपर्यायसे उत्पन्न होता हुआ उस-उस परिणाममें तद्रूप होकर उसे करता है, किन्तु दूसरे परिणामको नहीं करता;-इस एक सिद्धान्तमें छहों द्रव्योंके तीनोंकालके परिणमनके हलकी चाबी आ जाती है, सब समाधान हो जाते हैं। मैं ज्ञायक, और पदार्थोंमें स्वतन्त्र क्रमबद्धपरिणमन—बस इसमें सब सार आ गया। अपने ज्ञायकस्वभावका और पदार्थोंके क्रमबद्धपरिणमनकी स्वतन्त्रताका निर्णय करके, स्वयं अपने ज्ञायक-स्वभावमें अभेद होकर परिणमित हुआ, वहाँ स्वयं ज्ञायक हो रहा और परका अकर्ता हुआ, उसका ज्ञान रागादिसे पृथक् होकर "सर्वविशुद्ध" हुआ।—इसका नाम जैनशासन और इसका नाम धर्म।

"योग्यताको ही" कार्यकी साक्षात् साधक कहकर इष्टोपदेशमें स्वतन्त्रताका अलौकिक उपदेश किया है। "इष्टोपदेश" को "जैनका उपनिषद्" भी कहते हैं। वास्तवमें वस्तुकी स्वतंत्रता बतलाकर आत्माको अपने ज्ञायकस्वभावकी ओर ले जाये वही इष्ट-उपदेश है; और वही जैनधर्मका मर्म है, इसलिये जैनका उपनिषद् है।

(१२४) "—विरला बूझे कोई !"

यह बात समझे बिना उपादान-निमित्तका भी यथार्थ ज्ञान नहीं होता। उपादान और निमित्त दोनों वस्तुयें हैं अवश्य, उनका ज्ञान करानेके लिये शास्त्रोंमें उनका वर्णन किया है; वहां अज्ञानी अपनी विपरीत दृष्टिसे उपादान-निमित्तके नामसे उल्टा स्व-परकी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

एकत्वबुद्धिका पोषण करता है; "देखो शास्त्रमें निमित्त तो कहा है न ? दो कारण तो कहे हैं न ?"—ऐसा कहकर उल्टा स्व-परकी एकत्वबुद्धिको घोंटता है। पं० बनारसीदासजी कहते हैं कि :—

उपादान निजगुण जहां तहां निमित्त पर होय।
भेदज्ञान परमाण विधि विरला बूझै कोय ॥४॥

अर्थात्—जहां उपादानकी अपनी निजशक्तिसे कार्य होता है वहां दूसरी वस्तु निमित्त होती है; इसप्रकार उपादान और निमित्त दोनों वस्तुयें तो हैं, किन्तु वहां उपादानकी अपनी योग्यतासे ही कार्य होता है, और निमित्त तो उसमें अभावरूप—अकिंचित्कर है;—ऐसी भेदज्ञानकी यथार्थ विधि कोई विरले ही जानते हैं, अर्थात् सम्यक्त्वी जानते हैं।

(१२५) यहां सिद्ध करना है—आत्माका अकर्तृत्व

अभी तक आचार्यदेवने यह बात सिद्ध की है कि—"प्रथम तो जीव क्रमबद्ध ऐसे अपने परिणामोंसे उत्पन्न होता हुआ जीव ही है, अजीव नहीं है; इसीप्रकार अजीव भी क्रमबद्ध अपने परिणामोंसे उत्पन्न होता हुआ अजीव ही है, जीव नहीं है; क्योंकि जिस प्रकार सुवर्णका कंकनादि परिणामोंके साथ तादात्म्य है उसी प्रकार सर्व द्रव्योंको अपने परिणामोंके साथ तादात्म्य है।"

अब इस सिद्धान्त परसे जीवका अकर्तृत्व सिद्ध करनेके लिये आचार्यदेव कहते हैं कि-"इसप्रकार जीव अपने परिणामोंसे उत्पन्न होता है, तथापि उसका अजीवके साथ कार्यकारणभाव सिद्ध नहीं होता × × ×" कर्ता होकर अपने ज्ञायकपरिणामरूपसे उत्पन्न होता हुआ जीव, कर्मके बन्धनका भी कारण हो-ऐसा नहीं होता। इस प्रकार उसका अकर्तृत्व है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(१२६) "एक" का कर्ता "दो" का कर्ता नहीं है (ज्ञायकके अकर्तृत्वकी सिद्धि)

प्रश्न :—यदि जीव अपने परिणामसे उत्पन्न होता है और उसमें तद्रूप होकर उसे करता है, तो एकके साथ दूसरेका भी करे उसमें क्या हर्ज ? "एकका ग्वाला वह दो का ग्वाला"—यानी जो ग्वाल एक गाय चराने ले जाता है वह साथमें दो ले जाये तो उसमें उसे क्या परिश्रम ? अथवा "एक की रसोई बनाना वहां साथमें दो की बना लेना।" उसी प्रकार कर्ता होकर एक अपना करे वह साथमें दूसरेका भी कर दे तो क्या हर्ज ? जीव स्वयं ज्ञानकरूपसे उत्पन्न भी हो और कर्मको भी बांध ले—इसमें क्या आपत्ति है ?

उत्तर :—प्रत्येक द्रव्य अपनी पर्यायके साथ तद्रूप है, इसलिये उसे तो करता है, किन्तु परके साथ तद्रूप नहीं है, इसलिये उसका वह कर्ता नहीं है। परके साथ तद्रूप हो तभी परको करे, किन्तु ऐसा तो कभी हो नहीं सकता। इसलिये "गायके ग्वाले" जैसी लौकिक कहावत यहां लागू नहीं होती। स्वभाव-सन्मुख होकर जो जीव अपने ज्ञायकभावरूपसे परिणमित हुआ, वह अपने ज्ञायकभावके साथ तद्रूप है, इसलिये उसका तो वह कर्ता है, किन्तु रागादिभावोंके साथ वह तद्रूप नहीं है इसलिये वास्तवमें रागका कर्ता नहीं है, इसलिये कर्मके कर्तृत्वका व्यवहार भी उसे लागू नहीं होता। इससे आचार्यदेव कहते हैं कि—"जीव अपने परिणामोंसे उत्पन्न होता है, तथापि उसे अजीवके साथ कार्यकारणभाव सिद्ध नहीं होता।"

कौन-सा जीव ?... कहते हैं कि ज्ञानी;

कैसे परिणाम ?....कहते हैं कि ज्ञाता-दृष्टाके निर्मल परिणाम—ज्ञानी अपने ज्ञाता-दृष्टाको निर्मल परिणामरूपसे उत्पन्न होता है, किन्तु अजीव कर्मोंके बन्धका कारण नहीं होता; क्योंकि उसे अपने ज्ञायकभावके साथ ही एकता है, रागादिकी कर्मके साथ एकता नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है, इसलिये वह रागादिका और कर्मका अकर्ता ही है। जीव अपने ज्ञायकपरिणामका कर्ता हो और साथ ही साथ अजीवमें नये कर्म बांधनेमें भी निमित्त हो—ऐसा नहीं होता। नये कर्मोंमें यहां मुख्यरूपसे मिथ्यात्वादि ४१ प्रकृतियोंकी बात लेना है,—उनका बन्धन ज्ञानीको होता हो नहीं। ज्ञानीको अपने निर्मल ज्ञान परिणामके साथ कार्यकारणपना है, किन्तु अजीवके साथ या रागादिके साथ उसे कार्य-कारणपना नहीं है, इसलिये वह अकर्ता है।

(१२७) व्यवहार कौनसा ? और किसको ?

प्रश्नः—यह तो निश्चयकी बात हुई, अब व्यवहार समझाइये ?

उत्तरः—जो यह निश्चयरूप समझ ले उसे व्यवहारकी खबर पड़ती है। ज्ञाता जागृत हुआ और स्व-पर प्रकाशक शक्ति विकसित हुई तब निमित्त और व्यवहार कैसे होते हैं उन्हें वह जानता है। स्वयं रागसे अधिक होकर ज्ञायकरूपसे परिणमित होता हुआ चारित्रमें अस्थिरताका जो राग है उसे भी जानता है—वह ज्ञानीका व्यवहार है। किन्तु जहाँ निश्चयका भान नहीं है, ज्ञाता जागृत नहीं हुआ है, वहां व्यवहारको जानेगा कौन ? वह अज्ञानी तो रागको भला जानते हुए उसीमें एकता मान लेता है, इसलिये उसे तो राग ही निश्चय हो गया, रागसे पृथक् कोई रागका ज्ञाता नहीं रहा। यहां तो जागृत होकर ज्ञानकी अधिकतारूपसे परिणमित होता हुआ शेष अल्प रागको भी जाने वह व्यवहार है। परमार्थज्ञेय तो अपना ज्ञायक आत्मा ही है, और राग वह ज्ञानीका व्यवहारज्ञेय है। किन्तु जिसे ज्ञायकस्वभावकी दृष्टि नहीं है और "कर्मका व्यवहारकर्ता तो हूँ न !"—ऐसी दृष्टि है, उसके लिये आचार्यदेव अगली गाथा कहेंगे कि कर्मके साथ कर्तापनाका व्यवहार अज्ञानी—मिथ्यादृष्टिको ही लागू होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

–: छठवाँ प्रवचन :–

[आश्विन शुक्ला २, वीर सं० २४८०]

भाई, पंचपरमेष्ठी भगवान ही हमारे "पंच" हैं। ज्ञायकस्वभाव और क्रमबद्धपर्यायका यह जो वस्तुस्वरूप कहा जा रहा है उसी प्रकार अनादिसे पंचपरमेष्ठी भगवन्त कहते आये हैं, और महाविदेहमें विराजमान सीमंधरादि भगवन्त इस समय भी यही उपदेश दे रहे हैं। इसके सिवा अज्ञानी विपरीत माने, तो भले माने किन्तु यहां तो पचपरमेंष्ठी भगवन्तोंको पंचरूपसे रखकर यह बात कही जा रही है।

(१२८) ज्ञायक वस्तुस्वरूप, और अकर्तृत्व

इस "सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार" को "शुद्धात्मद्रव्य अधिकार" भी कहा जाता है। ज्ञायकस्वभावी शुद्ध आत्मद्रव्यका स्वरूप क्या है वह आचार्यदेव बतलाते हैं। आत्माका स्वभाव तो ज्ञायक है, ज्ञाता है; वह ज्ञायकस्वभाव न तो परका कर्ता है, और न रागका। कर्ता होकर परकी अवस्था उत्पन्न करे ऐसा तो ज्ञायकका स्वरूप नहीं है, और न रागमें कर्ताबुद्धि भी उसका स्वभाव है; राग भी उसके ज्ञेय-रूप ही है। रागमें तन्मय होकर नहीं, किन्तु रागसे अधिक रहकर— भिन्न रहकर ज्ञायक उसे जानता है। ऐसा ज्ञायक–वस्तुस्वरूप समझे तो ज्ञातृत्व और कर्तृत्वके सारे गर्व दूर हो जायें।

यहाँ जीवको समझाना है कि तू ज्ञायक है, परका अकर्ता है। "ज्ञायक" ज्ञाता–दृष्टा परिणामके अतिरिक्त दूसरा क्या करे? ऐसे अपने ज्ञायकस्वभावको जानकर जो स्वसन्मुख निर्मल परिणामरूपसे परिणमित हुआ वह ज्ञानी ऐसा जानता है कि प्रतिसमय मेरे ज्ञानके जो निर्मल क्रमबद्धपरिणाम होते हैं उन्हींमें मैं तन्मय हूँ, रागमें या परमें मैं तन्मय नहीं हूँ, इसलिये उनका मैं अकर्ता हूँ।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अजीव भी अपने क्रमबद्ध होनेवाले जड़ परिणामोंके साथ तन्मय है और दूसरोंके साथ तन्मय नहीं है; इसलिये वह अजीव भी परका अकर्ता है; किन्तु यहाँ उसकी मुख्यता नहीं है, यहा तो जीवका अकर्तृत्व सिद्ध करना है; जोवको यह बात समझाना है ।

(१२९) दृष्टि बदलकर सम्यग्दर्शन प्रगट करे, वही इस उपदेशका रहस्य समझा है ।

यह आत्माके ज्ञायकभावकी बात है; इसे समझ ले तो अपूर्व सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान हो, और उसके साथ अतीन्द्रिय आनन्दके अंशका वेदन हो । दृष्टिको बदले तो यह बात जीवकी समझमें आ सकती है । यह वस्तु मात्र करनेके लिये नही है, किन्तु समझकर दृष्टिको अन्तरोन्मुख करनेके लिये यह उपदेश है । क्रमबद्ध-पर्याय तो अजीवमें भी होती है, किन्तु उसे कहीं ऐसा नहीं समझाना है कि तू अकर्ता है इसलिये दृष्टिको बदल ! यहां तो जीवको समझाना है । अज्ञानी जीव अपने ज्ञायकस्वभावको भूलकर "मैं परका कर्ता"—ऐसा मान रहा है; उसे यहाँ समझाते हैं कि भाई ! तू तो ज्ञायक है; जीव और अजोव सर्व द्रव्य अपनी-अपनी क्रमबद्ध-पर्यायमें परिणमित हो रहे हैं, तू उनका ज्ञायक है, किन्तु किसी परका कर्ता नहीं है । "मैं ज्ञायक स्वभाव, परका अकर्ता, अपनी ज्ञानपर्यायमें क्रमबद्ध परिणमित होता हूँ"—ऐसा समझकर स्वद्रव्यकी दृष्टि करनेसे सम्यग्दर्शन होता है । दृष्टिकी दिशा स्वोन्मुख करे तभी क्रमबद्धपर्यायका यथार्थ निर्णय होता है, और उसके अपनेमें निर्मल पर्यायका क्रम प्रारम्भ हो जाता है । "मेरी सब पर्यायें क्रमबद्ध-क्रमशः होती हैं"—ऐसा निर्णय करते हुए, उन पयायोंरूपसे परिणमित होनेवाले ऐसे ज्ञायकद्रव्यकी ओर दृष्टि जाती है । मेरा क्रमबद्धपरिणमन मुझमें और परका क्रमबद्धपरिणमन परमें; परके क्रममें मैं नहीं हूँ और मेरे क्रममें पर नहीं है;—ऐसा यथार्थ भेदज्ञान करनेसे "मैं परका कुछ करूँ"—ऐसी दृष्टि छूट

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जाती है, और ज्ञायकस्वभावोन्मुखदृष्टि होती है। उस स्वसन्मुख दृष्टि का परिणमन होनेसे ज्ञान, आनन्द, वीर्यादि समस्त गुणोंमें भी स्वाश्रयसे अंशतः निर्मल परिणमन हुआ।

(१३०) जैनधर्मकी मूल बात

पंडित या त्यागी नाम धारण करनेवाले कितनोंको तो अभी "सर्वज्ञ" की तथा क्रमबद्धपर्यायकी भी श्रद्धा नहीं है। किन्तु यह तो जैनधर्मकी मूल बात है, इसका निर्णय किये बिना सच्चा जैनत्व होता ही नहीं। यदि केवलज्ञान तीनकालकी समस्त पर्यायोंको न जाने तो वह केवलज्ञान काहेका ? और यदि पदार्थोंकी तीनोंकालकी समस्त पर्यायें व्यवस्थित—क्रमबद्ध ही न हों तो केवलीभगवानने देखा क्या ?

(१३१) "सर्वभावांतरच्छिदे"

समयसारका मांगलिक करते हुए पहले ही कलशमें आचार्यदेवने कहा है कि—

नमः समयसाराय
स्वानुभूत्या चकासते
चित्स्वभावाय भावाय
सर्वभावांतरच्छिदे ।।१।।

"समयसार" अर्थात् शुद्ध आत्माको नमस्कार करते हुये आचार्यदेव कहते हैं कि मैं साधक हूँ, इसलिये मेरा परिणमन अंतरमें नमता है, मैं शुद्धात्मामें परिणमित होता हूँ।—कैसा है शुद्धात्मा ? प्रथम तो स्वानुभूतिसे प्रकाशमान है यानी स्वसन्मुख ज्ञानक्रिया द्वारा ही वह प्रकाशमान है; राग द्वारा या व्यवहारके अवलम्बन द्वारा वह प्रकाशित नहीं होता। और कहा है कि वह ज्ञानस्वभावरूप वस्तु है, तथा स्वयंसे अन्य समस्त भावोंका भी ज्ञाता है। इस प्रकार जीवका ज्ञानस्वभाव है और वह तीनोंकालकी क्रमबद्धपर्यायोंको जानता है-यह बात भी उसमें आ गई।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(१३२) ज्ञानमें जो परको जाननेकी शक्ति है वह अभूतार्थ नहीं है

प्रश्नः—जीवका ज्ञानस्वभाव है, और केवलज्ञान होने पर वह सर्व पदार्थोंको तीनोंकालकी क्रमबद्धपर्यायोंको जानता है—ऐसा आप कहते हैं, किन्तु नियमसारकी १५९ वीं तथा १६६ वीं गाथामें कहा है कि केवलीभगवान निश्चयसे स्वको जानते-देखते हैं और लोकालोकको तो व्यवहारसे जानते-देखते हैं; तथा समयसारकी ११ वीं गाथामें व्यवहारको अभूतार्थ कहा है; इसलिये "सर्वज्ञभगवानने तीनकालकी समस्त पर्यायोंको जाना है और तदनुसार ही पदार्थोंमें क्रमबद्धपरिणमन होता है"—यह बात ठीक नहीं है ! ! (-ऐसा प्रश्न है ।)

उत्तरः—भाई, तुझे सर्वज्ञकी भी श्रद्धा नहीं रही ? शास्त्रोंकी ओटमें तू अपनी विपरीत दृष्टिका पोषण करना चाहता है; किन्तु सर्वज्ञकी श्रद्धाके बिना तुझे शास्त्रोंका एक अक्षर भी यथार्थरूपसे समझमें नहीं आ सकता। ज्ञान परको व्यवहारसे जानता है—ऐसा कहा, वहाँ ज्ञानमे जाननेकी शक्ति कहीं व्यवहारसे नहीं है; जाननेकी शक्ति तो निश्चयसे है, किन्तु परके साथ एकमेक होकर अथवा तो परसन्मुख होकर केवलज्ञान उसे नहीं जानता इसलिये व्यवहार कहा है। स्वको जानते हुए अपनेमें एकमेक होकर जानता है इसलिये स्व-परप्रकाशकपनेको निश्चय कहा, और परमें एकमेक नहीं होता इसलिये परप्रकाशकपनेको व्यवहार कहा है। किन्तु ज्ञानमें स्व-परप्रकाशक शक्ति है वह तो निश्चयसे ही है, वह कहीं व्यवहार नहीं है। "सर्वभावांतरच्छिदे"—ऐसा कहा उसमें क्या शेष रह गया ?—वह कहीं व्यवहारसे नहीं कहा है। और १६० वीं गाथामें "सो सव्वणाणदरिसी.....अर्थात् आत्मा स्वयं ही ज्ञान होनेके कारण विश्वको (सर्व पदार्थोंको) सामान्य-विशेषरूपसे जाननेके स्वभाववाला है"—ऐसा कहा, वह कहीं व्यवहारसे नहीं कहा है किन्तु निश्चयसे ऐसा ही है। ज्ञानमें स्व-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परको जाननेकी शक्ति है वह कहीं व्यवहार या अभूतार्थ नहीं है। अरे ! स्वच्छन्दसे कही हुई अपनी बातको सिद्ध करनेके लिये, ज्ञान-स्वभावके सामर्थ्यको भी अभूतार्थ कहकर उड़ाये, और उसी पर कुन्दकुन्द भगवान जैसे आचार्योंके नामसे बात करे—यह तो मूढ़ जीवोंका महान गजब है ! और जो उनकी ऐसी बातको स्वीकार करते हैं उन्हें भी वास्तवमें सर्वज्ञदेवकी श्रद्धा नहीं है।

(१३३) सर्वज्ञस्वभावका निर्णय करे उसे पुरुषार्थकी शंका नहीं रहती

अब, अनेक जीव यों ही (निर्णय बिना) सर्वज्ञताको मानते हैं; उन्हें ऐसा प्रश्न उठता है कि यदि सर्वज्ञभगवानके देखे अनुसार ही क्रमबद्ध होता है और उस क्रममें फेरफार नहीं हो सकता,—तो फिर जीवको पुरुषार्थ करना कहां रहा ? तो उससे कहा है कि हे भाई ! तूने अपने ज्ञानस्वभावका निर्णय किया है ?—सर्वज्ञका निर्णय किया है ? तू अपने ज्ञानस्वभावका और सर्वज्ञका निर्णय कर तो तुझे खबर पड़ेगी कि क्रमबद्धपर्यायमें पुरुषार्थ किस प्रकार आता है ? पुरुषार्थका यथार्थ स्वरूप ही अभी लोगोंकी समझमें नहीं आया है। अनादिकालसे परमें और रागमें ही स्वत्व मानकर मिथ्यात्वके अनन्त दुःखका अनुभव कर रहा है, उसके बदले ज्ञायक-स्वभावका निर्णय होनेसे वह विपरीत मान्यता छूट गई और ज्ञायकभावकी ओर दृष्टि ढली, वहाँ अपूर्व अतीन्द्रिय आनन्दके अंशका अनुभव होता है,—इसीमें अपूर्व पुरुषार्थ आ जाता है। ज्ञायकस्वभावको दृष्टिमें लेकर उसका अनुभव करनेसे पुरुषार्थ, ज्ञान, श्रद्धा, आनन्द, चारित्र—इन समस्त गुणोंका परिणमन स्वोन्मुख हुआ है। स्वसन्मुख होकर ज्ञानस्वभावका निर्णय किया उसमें केवलज्ञानका निर्णय, क्रमबद्धपर्यायका निर्णय, भेदज्ञान, सम्यग्दर्शन, पुरुषार्थ, मोक्षमार्ग—यह सब एकसाथ आ गया है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(१३४) निर्मल क्रमबद्धपर्याय कब प्रारम्भ होती है ?

सर्व द्रव्य अपनी-अपनी क्रमबद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न होते हैं; और उसमें वे तद्रूप हैं;—जीव अपनी पर्यायसे उत्पन्न होता है तथापि वह अजीवको उत्पन्न नहीं करता, इसलिये अजीवके साथ उसे कार्यकारणपना नहीं है। ऐसा होने पर भी, अज्ञानी अपनी दृष्टि अपने ज्ञायकस्वभावकी ओर न घुमाकर, "मैं पर का करूँ"—ऐसी दृष्टिसे अज्ञानरूप परिणमित होता है और इसलिये वह मिथ्यात्वादि कर्मोंका निमित्त होता है। क्रमबद्ध तो क्रमबद्ध ही है, किन्तु अज्ञानी अपने ज्ञायकस्वभावका निर्णय नहीं करता, इसलिये उसकी क्रमबद्धपर्याय शुद्ध न होकर विकारी होतो है। यदि ज्ञायकस्वभावका निर्णय करे तो दृष्टि बदल जाये और मोक्षमार्गकी निर्मल क्रमबद्धपर्याय प्रारम्भ हो जाय।

(१३५) "मात्र दृष्टिकी भूल है"

चैतन्यमूर्ति आत्मा ज्ञानस्वभाव है, वह स्व-परका प्रकाशक है, इसलिये पदार्थ जैसे हैं वैसा ही उनको जाननेवाला है, किन्तु किसीको आगे-पीछे करनेवाला नहीं है। भाई! जगतके समस्त पदार्थोंमें जिस पदार्थकी जिस समय जो अवस्था होना है वह होना ही है, तू किसी परद्रव्यकी अवस्थामें फेरफार करनेकी सामर्थ्य नहीं रखता;—तो अब तुझे क्या करना रहा? अपने ज्ञायकस्वभावको चूककर, "मैं परका कर्ता" ऐसी दृष्टिमें अटका है उसकी कुलाँट मारकर ज्ञानस्वभावकी ओर अपनी दृष्टि घुमा! ज्ञायककी ओर दृष्टि करनेसे क्रमबद्धपर्यायका ज्ञाता रह जाता है; वह ज्ञाता अपने निर्मल ज्ञानादि-परिणामोंका तो कर्ता है, किन्तु रागादिका या कर्मका कर्ता वह नहीं है। ऐसे ज्ञातास्वभावको जो न माने और परका कर्ता होकर उसकी क्रमबद्ध-पर्यायको बदलने जाये, तो उस जीवको सर्वज्ञकी भी सच्ची श्रद्धा नहीं है। जिस प्रकार सर्वज्ञभगवान ज्ञाता-दृष्टापनेका ही कार्य करते हैं, किसीके परिणमनको नहीं बदलते, उसीप्रकार इस आत्माका स्वभाव भी ज्ञाता-दृष्टापनेका कार्य करना ही है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पुण्य-पाप अधिकारकी १६० वीं गाथामें आचार्यदेव कहते हैं कि :—

सो सव्वणाणदरिसी कम्मरएण णिएएणवच्छण्णो ।
संसारसमावण्णो ण विजाणदि सव्वदो सव्वं ।।
—यह सर्वज्ञानी-दर्शि भी, निजकर्म रज आच्छाद से ।
संसार प्राप्त, न जानता वो सर्वको सब रीत से ।।१६०।।

ज्ञानस्वरूपी आत्मा तो सर्वका ज्ञायक तथा दर्शक है; किन्तु अपने ज्ञानस्वभावके सन्मुख होकर उसकी प्रतीति नहीं करता, इसीलिये वह अज्ञानरूपसे वर्तता है। सर्वको जाननेवाला जो अपना सर्वज्ञ-स्वभाव अर्थात् ज्ञायकस्वभाव, अपने अपराधके कारण उसे स्वयं नहीं जानता, इसलिये ज्ञाता-दृष्टापनेका परिणमन न होकर अज्ञानके कारण विकारका परिणमन होता है। ज्ञानस्वभावकी प्रतीति होनेके पश्चात् ज्ञानीको अस्थिरताके कारण अमुक रागादि होते हैं और ज्ञानका परिणमन अल्प होता है—उसकी यहाँ मुख्यता नहीं है, क्योंकि ज्ञानीको ज्ञाता-दृष्टापनेकी ही मुख्यता है, ज्ञायकदृष्टिके परिणमनमें रागका कर्तापना नहीं है।

(१३६) "पुरुषार्थ" भी न उड़े...और..."क्रम" भी न टूटे !

अपनी क्रमबद्धपर्यायमें ज्ञातापनेका कार्य करता हुआ जीव दूसरेका भी कार्य करे—ऐसा नहीं होता, इसप्रकार ज्ञायकजीव अकर्ता है। जड़ या चेतन, ज्ञानी या अज्ञानी,—सब अपनी क्रमबद्धपर्यायरूप ही उत्पन्न होते हैं।

ज्ञायकस्वभावके आश्रयसे पुरुषार्थ होता है, तथापि पर्यायका क्रम नहीं टूटता;

ज्ञायकस्वभावके आश्रयसे सम्यग्दर्शन होता है, तथापि पर्यायका क्रम नहीं टूटता;

ज्ञायकस्वभावके आश्रयसे चारित्रदशा होती है, तथापि पर्यायका क्रम नहीं टूटता;

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञायकस्वभावके आश्रयसे आनन्द प्रगट होता है, तथापि पर्यायका क्रम नहीं टूटता;

ज्ञायकस्वभावके आश्रयसे केवलज्ञान होता है, तथापि पर्यायका क्रम नहीं टूटता;

देखो, यह बस्तुस्थिति ! पुरुषार्थ भी नहीं उड़ता और क्रम भी नही टूटता। ज्ञायकस्वभावके आश्रयसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रादिका पुरुषार्थ होता है, और वैसी निर्मलदशायें होती जाती हैं, तथापि पर्यायकी क्रमबद्धता नहीं टूटती।

(१३७) अज्ञानीको क्या करना चाहिये ?

प्रश्नः—हम तो अज्ञानी हैं, हमें क्या करना चाहिये ? क्या क्रमबद्ध मानकर बैठे रहें ?

उत्तरः—भाई ! अज्ञानीको अपने ज्ञानस्वभावका निर्णय करना चाहिये। स्वसन्मुख पुरुषार्थ द्वारा जहां ज्ञानस्वभावका निर्णय किया वहां क्रमबद्धका भी निर्णय हुआ और अपनी क्रमबद्धपर्यायमें जो निर्मल पर्यायका क्रम था वही पर्याय आकर उपस्थित हो गई। स्वसन्मुख पुरुषार्थसे रहित तो क्रमबद्धको मान्यता भी सच्ची नहीं है। ज्ञानस्वभावका आश्रय करके परिणमित होनेसे, यद्यपि पर्यायका क्रम आगे-पीछे नहीं होता, तथापि सम्यग्दर्शनादिका परिणमन हो जाता है और अज्ञानदशा छूट जाती है। इसलिये, "अज्ञानीको क्या करना चाहिये"—इसका उत्तर यह है कि अपने ज्ञायकस्वभावका निर्णय करके अज्ञान दूर करना चाहिये। प्रश्न ऐसा था कि-"क्या हम बैठे रहें ?"—किन्तु भाई ! बैठे रहनेकी व्याख्या क्या ? यह जड़ शरीर बैठा रहे तो इसके साथ कहीं धर्मका सम्बन्ध नहीं है। अज्ञानी अनादिकालसे रागके साथ एकत्वबुद्धि करके उस रागमें ही बैठा है—रागमें ही स्थित है; उसके बदले ज्ञायकस्वभावमें एकता करके उसमें बैठे--अर्थात् एकाग्र हो तो अज्ञान दूर हो और सम्यग्दर्शनादि शुद्धताका अपूर्व क्रम प्रारम्भ हो।—इसका नाम धर्म है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(१३८) एक बिना सब व्यर्थ !

मैं ज्ञाता ही हूँ और पदार्थ क्रमबद्ध परिणमित होनेवाले हैं—ऐसा जो नहीं मानता वह केवलीभगवानको, आत्माके ज्ञानस्वभावको, पंचपरमेष्ठी भगवन्तोंको या शास्त्रको नहीं मानता; जीव–अजीवकी स्वतंत्रता या सात तत्वोंकी उसे श्रद्धा नहीं है, मोक्षमार्गके पुरुषार्थकी तथा द्रव्य–गुण–पर्यायकी, उपादान–निमित्तको या निश्चयव्यवहारकी भी उसे खबर नहीं है। जिसने ज्ञानस्वभावका निर्णय नहीं किया उसका कुछ भी सच्चा नहीं है। ज्ञानस्वभावका निर्णय करे तो उसमें सभी पक्षोंका निर्णय आ जाता है।

(१३९) पंचरूपसे परमेष्ठी और उनका फैसला

प्रश्नः—इस सम्बन्धमें आजकल बहुत झगड़े (मतभेद) चल रहे हैं, इसलिये "पंचों"को बीचमें रखकर इसका कुछ निपटारा करो न ?

उत्तरः—भाई, पंचपरमेष्ठी भगवान ही हमारे "पंच" हैं ज्ञायकस्वभाव और क्रमबद्धपर्यायका यह जो वस्तुस्वरूप कहा जा रहा है उसी प्रकार अनादिसे पंचपरमेष्ठी भगवान कहते आये हैं, और महाविदेहमें विराजमान सीमंधरादि भगवन्त इस समय भी यही उपदेश दे रहे हैं। इसके सिवा अज्ञानी विपरीत मानते हों तो भले मानें, किन्तु यहाँ तो पंचपरमेष्ठी भगवन्तोंको पंचरूपसे रखकर यह बात कही जा रही है। पंचपरमेष्ठी भगवन्त इसीप्रकार मानते आये हैं और इसी प्रकार कहते आये हैं। जिसे पंचपरमेष्ठीमें सम्मिलित होना हो उसे इसी अनुसार मानना पड़ेगा।

देखो, यह पंचायतका फैसला !

हे भाई ! पंचपरमेष्ठी भगवन्तोंमें अरिहन्त और सिद्ध भगवंत सर्वज्ञ हैं, तीनकाल तीनलोकको प्रत्यक्ष जाननेवाले हैं,—उस सर्वज्ञताको तू मानता है या नहीं मानता ?

—यदि तू वास्तवमें सर्वज्ञताको मानता हो तो उसमें क्रमबद्ध–पर्यायकी स्वीकृति भी आ ही गई।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

—और यदि तू सर्वज्ञताको मानता हो तो तूने पंचोंको (-पंचपरमेष्ठी भगवन्तोंको) ही वास्तवमें नहीं माना है।

"णमो अरिहंताणं और णमो सिद्धाणं"—ऐसा प्रतिदिन बोलते हैं, किन्तु अरिहन्त और सिद्धभगवान केवलज्ञान सहित हैं, वे तीनकाल तीनलोकको जानते हैं और उसीप्रकार होता है—ऐसा माने तो उसमें क्रमबद्धपर्यायकी स्वीकृति आ ही जाती है। आत्माको सम्पूर्ण ज्ञानशक्तिको और क्रमबद्धपर्यायको जो नहीं मानता वह पंचपरमेष्ठी भगवन्तोंको भी यथार्थस्वरूपसे नहीं मानता। इसलिये जिसे वास्तवमें पंचपरमेष्ठी भगवन्तोंको पहिचानना हो उसे बराबर निर्णय करके यह बात मानना चाहिये।—ऐसा पंचोंका फैसला है।

(१४०) जीवके अकर्तृत्वकी न्यायसे सिद्धि

ज्ञायक आत्मा कर्मका अकर्ता है—ऐसा यहाँ आचार्यदेव न्याय से सिद्ध करते हैं:—

(१) प्रथम तो जीव और अजीव सभी द्रव्य अपनी-अपनी क्रमबद्ध-पर्यायरूपसे उत्पन्न होते हैं;

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(२) जो पर्याय होती है उसमें वे तद्रूप हैं;

(३) जीव अपने परिणामरूपसे उत्पन्न होता है, तथापि वह परको (–कर्मको) उत्पन्न नहीं करता, इसलिये उसे परके साथ उत्पाद्य–उत्पादकभाव नहीं है;

(४) उत्पाद्य–उत्पादकभावके बिना कार्यकारणपना नहीं होता इसलिये जीव कारण होकर कर्मको उत्पन्न करे ऐसा नहीं होता, और—

(५) कारण–कार्यभावके बिना जीवका अजीवके साथ कर्ताकर्मपना सिद्ध नहीं हो सकता, अर्थात् ज्ञायकभावरूपसे उत्पन्न होनेवाला जीव कर्ता होकर, मिथ्यात्वादि अजीव कर्मको उत्पन्न करे—ऐसा किसी प्रकार सिद्ध नहीं होता।

—इसलिये ज्ञायकभावकी क्रमबद्धपर्यायरूपसे परिणमित होता हुआ ज्ञानी कर्मका अकर्ता ही है। भाई! तू तो ज्ञानस्वभाव! तू अपने ज्ञाता–दृष्टाभावरूपसे परिणमित होकर उस परिणाममें तद्रूप होकर उसे कर सकता है, किन्तु तू जड़कर्मका कर्ता हो—ऐसा तेरा स्वभाव नहीं है। अहो! मैं....ज्ञा....य....क....हूँ.. ऐसा अं....त....र् मु....ख....हो....कर....स....म....कै....तो....जी...व...को....कि...त....नी... शां....ति....हो....जा....ये....!

(१४१) अजीवमें भी अकर्तापना

यहाँ जीवका अकर्तापना समझानेके लिये आचार्यदेवने जो न्याय दिया है वह सर्व द्रव्योंमें लागू होता है। अजीवमें भी एक अजीव दूसरे अजीवका अकर्ता है। जैसे कि—पानी उष्ण हुआ वहाँ अग्नि उसका अकर्ता है, निम्नानुसार:—

(१) अग्नि और पानी दोनों पदार्थ अपनी–अपनी क्रमबद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न होते हैं;

(२) अपनी–अपनी जो पर्याय होती है उसमें वे तद्रूप हैं;

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(३) अग्नि अपने परिणामरूपसे उत्पन्न होती है, तथापि वह पानीकी उष्ण अवस्थाको उत्पन्न नहीं करती; इसलिये उसे पानीके साथ उत्पाद्य–उत्पादकभाव नहीं है;

(४) उत्पाद्य–उत्पादकभावके बिना कार्य–कारणपना नहीं होता, इसलिये अग्नि कारण होकर पानीकी उष्ण अवस्थाको उत्पन्न करे—ऐसा नहीं होता; और—

(५) कारण–कार्यभावके बिना अग्निका पानीके साथ कर्ताकर्मपना सिद्ध नहीं हो सकता।

—इसलिये अग्नि पानीकी अकर्ता ही है। अग्नि अग्निकी पर्यायमें तद्रूप है और उष्ण पानीकी अवस्थामें वह पानी ही तद्रूप है। इसीप्रकार कुम्हार और घड़ा आदि जगतके समस्त पदार्थोंमें भी उपरोक्तानुसार पांच बोल लागू करके एक–दूसरेका अकर्तापना समझ लेना चाहिये।

[नोट:—यहाँ जो अग्नि और पानीका दृष्टान्त दिया है, वह जीवका अकर्तृत्व सिद्ध करनेके लिये नहीं दिया है, किन्तु अजीवका परस्पर अकर्तृत्व सिद्ध करनेके लिये दिया है–यह बात लक्षमें रखना चाहिये।]

(१४२) ".. निमित्त कर्ता तो है न ?"

प्रश्न:—जीव कर्ता है या नहीं ?

उत्तर:—हाँ, जीव कर्ता अवश्य है, लेकिन किसका ? कि—अपने ज्ञायकपरिणामका; —पुद्गलकर्मका नहीं।

प्रश्न:—पुद्गल कर्मका निमित्तकर्ता है या नहीं ?

उत्तर:—नहीं; ज्ञायकभावरूपसे परिणमित होनेवाला जीव मिथ्यात्वादि पुद्गलकर्मका निमित्तकर्ता भी नहीं है। कर्मके निमित्त होने पर जिसकी दृष्टि है उस जीवको ज्ञायकभावका परिणमन नहीं है किन्तु अज्ञानभावका परिणमन है। अज्ञानभावके कारण ही वह

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पुद्गलकर्मका निमित्तकर्ता होता है, और वह संसारका ही कारण है।—यह बात आचार्यदेवने आगे आनेवाली गाथाओंमें भलीभाँति समझाई है।

(१४३) ज्ञाताका कार्य

ज्ञानस्वभावी जीव कर्ता होकर किसी पर्यायको आगे-पीछे बदल दे ऐसा नहीं है। स्वयं अपने ज्ञातापरिणामरूपसे उत्पन्न होता हुआ क्रमबद्धपर्यायका ज्ञाता है; ज्ञातापरिणाम ही ज्ञानीका कार्य है। जिसप्रकार "ईश्वर जगतका कर्ता"—यह बात मिथ्या है, उसीप्रकार जीवका परका कर्ता—यह बात भी मिथ्या है। ज्ञायकमूर्ति आत्मा स्व-परप्रकाशक है, वास्तवमें ज्ञायक तो शुभ-अशुभभावोंका भी ज्ञाता ही है; उसमें एकतारूप परिणमित न होनेसे, किन्तु भिन्न ज्ञानभावरूप परिणमित होनेसे, वह रागका कर्ता नहीं है। रागको ज्ञानके साथ एकमेक करके जो उसका कर्ता होता है, उसकी दृष्टि "ज्ञायक" पर नहीं है किन्तु विकार पर है, इसलिये मिथ्यादृष्टि है। शुभभाव हो, वहाँ "अशुभभाव होना थे, किन्तु ज्ञानने उन्हें बदलकर शुभ कर दिया"—ऐसा जो मानता है उसकी उन्मुखता भी विकारकी ओर ही है; ज्ञायकको ओर उसकी उन्मुखता नहीं है। ज्ञाता तो ज्ञायकस्वभावसन्मुख होकर, अपने अपने ज्ञाताभावरूप ही परिणमित होता हुआ, उस-उस समयके रागको भी ज्ञानका व्यवहारज्ञेय बनाता है, किन्तु उसे ज्ञानका कार्य नहीं मानता। उस समय जो ज्ञानपरिणमन हुआ (-उस ज्ञानपरिणमनके साथ सम्यकश्रद्धा, आनंद, पुरुषार्थ आदिका परिणमन भी साथ ही है) वही ज्ञाताका कार्य है। इसप्रकार ज्ञानी अपने निर्मल ज्ञान—आनन्दादि परिणामोंका कर्ता है, किन्तु रागका या परका कर्ता नहीं है।

(१४४) "अकार्यकारणशक्ति" और पर्यायमें उसका परिणमन

ज्ञानी जानता है कि मुझमें अकार्यकारणशक्ति है; मैं कारण होकर परका कार्य करूँ और पर वस्तु कारण होकर मेरा कार्य

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

करे—ऐसा परके साथ कार्यकारणपना मुझे नहीं है। अरे! अन्तर्में ज्ञान कारण होकर रागको कार्यरूपसे उत्पन्न करे, अथवा तो रागको कारण बनाकर ज्ञान उसके कार्यरूपसे उत्पन्न हो—ऐसा ज्ञान और रागको भी कार्यकारणपना नहीं है।—ऐसी अकार्यकारणशक्ति आत्मामें है।

प्रश्न :—अकार्यकारणपना तो द्रव्यमें ही है न?

उत्तर :—द्रव्यमें अकार्यकारणशक्ति है—ऐसा माना किसने? —पर्यायने। जिस पर्यायने द्रव्योन्मुख होकर अकार्यकारणशक्तिको माना, वह पर्याय द्रव्यके साथ अभेद होकर स्वयं भी अकार्यकारण-रूप हो गई है; इस प्रकार पर्यायमें भी अकार्यकारणपना है। दूसरे प्रकारसे कहा जाये तो—ज्ञायकस्वभावोन्मुख होकर जो पर्याय अभेद हुई उस पर्यायमें रागका या परका कर्तृत्व नहीं है, यह तो ज्ञायक-भावरूप ही है।

(१४५) आत्मा परका उत्पादक नहीं है

देखो भाई! जिसे अपना आत्महित करनेकी गरज हुई हो —ऐसे जीवके लिये यह बात है। अन्तरकी लोकोत्तरदृष्टिको यह बात है; लौकिक बातके साथ इस बातका मेल नहीं जम सकता। लोक-व्यवहारमें तो आजकल ऐसी योजनायें चल रही हैं कि—"अनाजका उत्पादन बढ़ाओ और बस्तीका उत्पादन कम करो।" किन्तु यहाँ तो लोकोत्तरदृष्टिकी बात है कि भाई! तू परका उत्पादक नहीं है, तू तो ज्ञान है। "अरे! अभक्ष्य वस्तु खाकर भी अनाज बचाओ"—ऐसा कहनेवाले तो अनार्यदृष्टिवाले हैं;—ऐसोंकी बात तो दूर रही, किन्तु यहां तो कहते हैं कि आत्मा कर्ता होकर परको उत्पन्न करे या परका उत्पन्न होना रोके—ऐसा माननेवाले भी मूढ़ मिथ्यादृष्टि हैं। ज्ञानीको तो अन्तरमें रागका भी अकर्तृत्व है—यह बात तो अभी इससे भी सूक्ष्म है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(१४६) "सब मानें तो सच्चा"—यह बात झूठ है। (सच्चे साक्षी कौन ?)

प्रश्न :—सब लोग हाँ कहें तो आपकी बात सच्ची है !

उत्तर :—अरे भाई ! हमारे तो पंचपरमेष्ठी ही पंच हैं, इसलिये जो पंचपरमेष्ठी मानें वह सच है। दुनियाके अज्ञानी लोग भले ही कुछ और मानें।

जैसा प्रश्न यहां किया वैसा ही प्रश्न भैया भगवतीदासजीके उपादान-निमित्तके दोहेमें किया है; वहां निमित्त कहता है कि—

निमित्त कहै मोकों सबै जानत हैं जगलोय;
तेरो नांव न जानहि उपादानको होय ? ।। ४ ।।

—हे उपादान ! जगतमें घर-घर जाकर लोगोंसे पूछें तो सब मेरा ही नाम जानते हैं—अर्थात् निमित्तसे कार्य होता है—ऐसा सब मानते हैं, किन्तु उपादान क्या है उसका तो नाम भी नहीं जानते।

तब उसके उत्तरमें उपादान कहता है कि—

उपादान कहे रे निमित्त ! तू कहा करै गुमान ?
मोकों जानें जीव वे जो हैं सम्यक्वान ।। ५ ।।

—अरे निमित्त ! तू गुमान किसलिये करता है ? जगतके अज्ञानी लोग मुझे भले ही न जानें, किन्तु जो सम्यक्वंत ज्ञानी जीव हैं वे मुझे जानते हैं।

निमित्त कहता है कि जगतसे पूछें; उपादान कहता है कि ज्ञानीसे पूछें।

उसी प्रकार निमित्त फिरसे कहता है कि—

कहैं जीव सब जगतके जो निमित्त सोइ होय।
उपादानकी बातको पूछे नाहीं कोय ।। ६ ।।

—जैसा निमित्त हो वैसा कार्य होता है—ऐसा तो जगतके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सभी जीव कहते हैं, किन्तु उपादानकी बातको तो कोई पूछता भी नहीं है।

तब उसे उत्तर देते हुए उपादान कहता है कि—

उपादान बिन निमित्त तू कर न सके इक काज।
कहा भयौ जग ना लखे जानत हैं जिनराज ।। ८ ।।

—अरे निमित्त! उपादानके बिना एक भी कार्य नहीं हो सकता, अर्थात् उपादानसे ही कार्य होता है।–जगतके अज्ञानी जीव इसे न जानें उससे क्या हुआ?—जिनराज तो ऐसा जानते हैं।

उसी प्रकार यहां, "आत्माका ज्ञायकस्वभाव और उसके ज्ञेयरूपसे वस्तुकी क्रमबद्धपर्यायें"—यह बात दुनियाके अज्ञानी जीव न समझे और उसका स्वीकार न करे तो उससे क्या? किन्तु पंच-परमेष्ठीभगवन्त उसके साक्षी हैं; उन्होंने इसी प्रकार जाना है और इसी प्रकार कहा है; और जिस जीवको अपना हित करना हो–पंच-परमेष्ठीकी श्रेणीमें बैठना हो, उसे यह बात समझकर स्वीकार करना ही पड़ेगी।

(१४७) "गोशालाका मत ?"—या जैनशासनका मर्म ?

यह तो जैनशासनकी मूल बात है। इस बातको "गोशालाका मत" कहनेवाला जैनशासनको नहीं जानता। प्रथम तो "गोशाला" था ही कब? और यह बात तो अनेकों बार स्पष्ट कही जा चुकी है कि ज्ञायकस्वभावसन्मुखके पुरुषार्थ बिना एकान्त नियत माननेवाला इस क्रमबद्धपर्यायका रहस्य समझा ही नहीं है। सम्यक् पुरुषार्थ द्वारा जिसने ज्ञानस्वभावकी प्रतीतिकी और ज्ञाता हुआ, उसीको क्रमबद्धपर्यायका यथार्थ निर्णय है, और उसीने जैनशासनको जाना है।

(१४८) कर्ता–कर्मका अन्यसे निरपेक्षपना

उत्पाद्य वस्तु स्वयं ही अपनी योग्यतासे उत्पन्न होती है, अन्य कोई उत्पादक नहीं है; वस्तुमें ही वैसी क्रमबद्धपर्यायरूपसे स्वयं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परिणमित होनेकी शक्ति है—वैसी अवस्था की योग्यता है—वैसा ही स्वकाल है; तो उसमें दूसरा क्या करे ? और यदि वस्तुमें स्वयंमें वैसी शक्ति न हो—योग्यता न हो—स्वकाल न हो तो भी दूसरा उसमें क्या करे ? इसलिये अन्यसे निरपेक्षपनेसे ही कर्ता-कर्मपना है। पहले कर्ता-कर्म अधिकारमें आचार्यदेव यह बात कह गये हैं कि "स्वयं अपरिणमितको पर द्वारा परिणमित नहीं किया जा सकता; क्योंकि वस्तुमें जो शक्ति स्वयं न हो उसे अन्य कोई नहीं कर सकता। और स्वयं परिणमितको तो पर परिणमित करनेवाले की अपेक्षा नहीं होती; क्योंकि वस्तुकी शक्तियाँ परकी अपेक्षा नहीं रखती।" (देखो, गाथा ११६ से १२५)

(१४९) सर्वत्र उपादानका ही बल

पुनश्च, पं० बनारसीदासजी भी कहते हैं कि :—

उपादान बल जहां—तहां, नहि निमित्ताको दाव।
एक चक्रसों रथ चले, रविको यहै स्वभाव ।। ५ ।।

—जहाँ देखा वहां उपादानका ही बल है, अर्थात् योग्यतासे ही कार्य होता है, उसमें निमित्ताका कोई दाव-पेंच नहीं है; "निमित्तके कारण कार्य हुआ"—ऐसा निमित्तका दाव या बारी कभी आती ही नहीं; जहां देखो वहां उपादानका ही दाव है। "ऐसा क्यों ?" कहते हैं—उपादानकी वैसी ही योग्यता। "निमित्तके कारण हुआ ?"—कहते हैं नहीं।

(१५०) "–निमित्त बिना...??"

प्रश्न :—निमित्त कुछ नहीं करता यह सच, किन्तु क्या निमित्तके बिना होता है ?

उत्तर :—हां, भाई ! उपादानके कार्यमें तो निमित्तका अभाव है, इसलिये वास्तवमें निमित्तके बिना ही कार्य होता है। निमित्त है अवश्य, किन्तु वह निमित्तमें है, उपादानमें उसका अभाव ही है, उस अपेक्षासे निमित्त बिना ही होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

—ऐसी बात आये वहाँ उपादान-निमित्तका भेदज्ञान समझनेके बदलें कुछ विपरीत दृष्टिवाले जीव कहते हैं कि—"अरे! निमित्तका निषेध हो जाता है!" भाई रे!" इसमें निमित्तके अस्तित्वका निषेध नहीं होता, निमित्त तो निमित्तरूपसे ज्योंका त्यों रहता है। तू निमित्तको निमित्त रूपसे रख रख, उसे उपादानमें मत मिला। 'अज्ञानी निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्धको कर्ताकर्मरूपसे मानकर, उपादान-निमित्तकी एकता कर डालते हैं।

"—कार्य होता तो है उपादानसे, किन्तु कहीं निमित्तके बिना होता है?

—शरीरकी क्रिया होती शरीरसे है, किन्तु कहीं जीवके बिना होती है?

—विकार करता है जीव स्वयं, किन्तु कहीं कर्मके बिना होता है?

—ज्ञान होता है स्वयंसे, किन्तु कहीं गुरुके बिना होता है?

—मोक्ष होता है जीवके उपादानसे, किन्तु कहीं मनुष्यदेहके बिना होता है?"

—इस प्रकार कितने ही दलील करते हैं; किन्तु भाई! उपादानकी अपनी योग्यतासे ही कार्य होता है—ऐसा जो वास्तवमें जानता है उसे इसका भी ज्ञान होता है कि परनिमित्त कैसा होता है; इसलिये "निमित्तके बिना...." का प्रश्न उसे नहीं रहता। वह तो जानता है कि उपादानसे कार्य होता है, और वहाँ योग्य निमित्त होता ही है,—गतैः धर्मास्तिकायवत्।" (देखो श्री पूज्यपादाचार्य-देवकृत इष्टोपदेश गाथा-३५)

जो जीव स्व-पर दो वस्तुओंको मानता ही नहीं, निमित्तको जानता ही नहीं, ऐसे अन्यमतोको निमित्तका अस्तित्व सिद्ध करनेके लिये "निमित्तके बिना नहीं होता"—ऐसी दलीलसे समझाया जाता है; किन्तु जहां स्व-परके भेदज्ञानको बात चलती

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हो, उपादान-निमित्तकी स्वतंत्रताका वर्णन चलता हो, वहां बीचमें "निमित्त बिना नहीं होता"—यह दलील रखना तो निमित्ताधीनदृष्टि ही सूचित करता है। "निमित्त होता ही है" फिर "निमित्तके बिना नहीं होता"—इस दलीलका क्या काम है ?

प्रवचनसार गाथा १६० में आचार्यदेव कहते हैं कि वास्तवमें मैं शरीर, वाणी और मनका आधारभूत नहीं हूँ, उनका कारण मैं नहीं हूँ, उनका कर्ता, प्रयोजक या अनुमोदक भी मैं नहीं हूँ; मेरे बिना ही, अर्थात् मैं उन शरीरादिका आधार हुए बिना कारण हुए बिना, कर्ता हुए बिना, प्रयोजक या अनुमोदक हुए बिना, वे स्वयं अपने-अपनेसे ही होते हैं, इसलिये उन शरीरादिका पक्षपात छोड़कर अर्थात् मेरे निमित्त बिना वे नहीं हो सकते—ऐसा पक्षपात छोड़कर) अत्यंत मध्यस्थ-साक्षीस्वरूप-ज्ञायक हूँ।

(देखो, प्रवचनसार गाथा-१६०)

(१५१) इस उपदेशका तात्पर्य और उसका फल

यहां आचार्यदेव कहते हैं कि हे भाई ! सर्व द्रव्योंको दूसरेके साथ उत्पाद्य-उत्पादकभावका अभाव है इसलिये तू ज्ञाता ही रह। "मैं ज्ञान हूँ"—ऐसा निर्णय करके जो स्वसन्मुख ज्ञातापरिणामरूपसे उत्पन्न हुआ वह जीव अपने सम्यक्श्रद्धा-ज्ञान-आनन्दादि कार्यरूपसे उत्पन्न होता है इसलिये उसका उत्पादक है, किन्तु कर्मादि परका उत्पादक नहीं है।—इसप्रकार जीवको स्वभावसन्मुख दृष्टि करके निर्मल क्रमबद्धपर्यायरूपसे परिणमित होनेके लिये यह उपदेश है। ज्ञायकस्वभावसन्मुख दृष्टि करके परिणमित हुआ वहां—

ज्ञानगुण अपने निर्मल परिणामके साथ तद्रूप होकर परिणमित हुआ;

श्रद्धागुण अपने सम्यग्दर्शनपरिणामके साथ तद्रूप होकर परिणमित हुआ;

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आनन्दगुण अपने आनन्दपरिणामके साथ तद्रूप होकर परिणमित हुआ;

—इस प्रकार ज्ञायकस्वभावसन्मुख होकर परिणमित होनेसे श्रद्धा–ज्ञान–चारित्र–वीर्यादि समस्त गुणोंको निर्मल परिणमनधारा बढ़ने लगी।—यह है ज्ञायकस्वभावकी और क्रमबद्धपर्यायकी प्रतीति-का फल!

–: सातवाँ प्रवचन :–

[आश्विन शुक्ला ३, वीर सं० २४८०]

एक ओर अकेला ज्ञायकस्वभाव और दूसरी ओर क्रमबद्धपर्याय—इसका यथार्थ निर्णय करनेमें सब आ जाता है, वह मूल वस्तुधर्म है, वह केवली-भगवानका उदर है, सन्तोंका हार्द है, शास्त्रोंका मर्म है, विश्वका दर्शन है और मोक्षमार्गका कर्तव्य कैसे होता है उसकी यह रीति है।

अज्ञानी कहते हैं कि "छूतकी बीमारी" है तब यहां कहते हैं कि यह तो सर्वज्ञका हार्द है; जिसे यह बात बैठ गई उसके हृदयमें सर्वज्ञ बैठ गये,—वह अल्पज्ञ होने पर भी "मैं सर्वज्ञ जैसा ज्ञाता ही हूँ"—ऐसा उसे निर्णय हो गया।

(१५२) अधिकारका नाम

इस सर्वविशुद्धज्ञान अधिकारकी पहली चार गाथाओंकी वचनिका हो रही है। सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार कहो, ज्ञायकद्रव्यका अधिकार कहो, या क्रमबद्धपर्यायका अधिकार कहो; जहां ज्ञायकद्रव्य-को पकड़कर ज्ञान एकाग्र हुआ वहां वह ज्ञान सर्वविशुद्ध हो गया, और उस ज्ञानके विषयरूपसे सर्व द्रव्योंकी क्रमबद्धपर्याय है उसका भी उसे निर्णय हो गया।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(१५३) "क्रमबद्ध" और "कर्मबन्ध" !

देखो, यह क्रमबद्धपर्यायकी बात छह दिनसे चल रही है, और आज सातवाँ दिन है; बहुत-बहुत पक्षोंसे स्पष्टीकरण हो गया है; तथापि कुछ लोगोंको यह बात समझना कठिन मालूम होता है। कोई तो कहते हैं कि—"महाराज ! आप क्या कहते हो, "कर्मबन्ध" मानना यह सम्यग्दर्शन है—ऐसा आप कहते हो ?"—अरे भाई ! यह "क्रमबद्ध" अलग और "कर्मबन्ध" अलग ! दोनोंके बीच विशाल अन्तर है। कर्मबन्धरहित ज्ञायकस्वभाव कैसा है और वस्तुकी पर्यायमें क्रमबद्धता किस प्रकार है उसे पहिचाने तो सम्यग्दर्शन हो। इस "क्रमबद्ध" को समझ ले तो "कर्मबन्ध" का नाश हो, और जो "क्रमबद्ध" को न समझे उसे "कर्मबन्ध" होता है।

(१५४) "ज्ञायक" और "क्रमबद्ध" दोनोंका निर्णय एकसाथ

जीवमें या अजीवमें प्रतिसमय जो क्रमबद्धपर्याय होना है वही होती है; पहले होनेवाली पर्याय बादमें नहीं होती, और बादमें होनेवाली पर्याय पहले नहीं होती। अनादि-अनन्त काल प्रवाहके जितने समय हैं उतनी ही प्रत्येक द्रव्यकी पर्यायें हैं; उनमें जिस समय जिस पर्यायका नम्बर (क्रम) है उस समय वही पर्याय होती है। जिस प्रकार सात वारोंमें रविवारके बाद सोमवार और फिर मंगलवार-इसप्रकार ठीक क्रमबद्ध ही आते हैं उल्टे-सीधे नहीं आते; उसीप्रकार एक से सौ तकके नम्बरोंमें १ के बाद २, ५० के बाद ५१, ९९ के बाद १००, इसप्रकार सब क्रमबद्ध ही आते हैं; उसीप्रकार द्रव्यकी क्रमबद्धपर्यायोंमें जो ५१ वीं पर्याय होगी वह ५० वीं या ५२ वीं नहीं होती, और जो '५२' वीं हो वह ५१ वीं नहीं होती। अर्थात् पर्यायके क्रमबद्धपनेमें कोई भी पर्याय बीचसे हटकर आगे-पीछे नहीं होती। जिसप्रकार पदार्थकी पर्यायका ऐसा क्रमबद्धस्वरूप है, उसीप्रकार आत्माका ज्ञायकस्वरूप है। मैं सर्वविशुद्धज्ञानमात्र ज्ञायक हूँ—ऐसे ज्ञायकस्वरूपके निर्णयके साथ क्रमबद्धपर्यायका भी निर्णय हो जाता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। आत्माका ज्ञायकस्वरूप और पर्यायोंका क्रमबद्धस्वरूप—इन दोमेंसे एकको भी न माने तो ज्ञान और ज्ञेयका मेल नहीं रहता अर्थात् सम्यग्ज्ञान नहीं होता। ज्ञायकस्वभाव और क्रमबद्धपर्याय—इन दोनोंका निर्णय एकसाथ ही होता है।—कब होता है?—जब ज्ञान स्वभावकी ओर ढले तब।

(१५५) यह बात किसे परिणमित होती है?

अभी तो जिसने यथार्थ गुरुगमसे ऐसी बातका श्रवण भी नहीं किया है, वह उसका ग्रहण और धारण तो कहाँसे करेगा? और,सत्यका ग्रहण तथा धारण किये बिना ज्ञानस्वभावसन्मुख होकर उसकी रुचिका परिणमन कहाँसे होगा? यहाँ ऐसा कहना है कि अभी जो विपरीत बातका श्रवण और पोषण कर रहे हैं, उनके सत्यरुचिके परिणमनकी योग्यता नहीं है। जिसके अन्तरकी महान पात्रता और पुरुषार्थ हो उसीको यह बात परिणमित होती है।

(१५६) धर्मका पुरुषार्थ

उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्तं सत्, और सत् वह द्रव्यका लक्षण है; उसमें भी क्रमबद्धपर्यायकी बातका समावेश हो जाता है; क्रमबद्ध-पर्यायके बिना उत्पाद-व्यय नहीं हो सकते। प्रत्येक पर्यायका उत्पाद अपने-अपने कालमें एक समय पर्यन्त सत् है। अकेली पर्याय पर या राग पर दृष्टि रखकर इस क्रमबद्धपर्यायका निर्णय नहीं होता, किन्तु ध्रुव ज्ञायकस्वभाव पर दृष्टि रखकर ही क्रमबद्धपर्यायका यथार्थ निर्णय होता है। अनेक लोगोंको ऐसा प्रश्न उठता है कि—क्रमबद्धपर्यायमें धर्मका पुरुषार्थ करना कहाँ रहा? उनसे कहते हैं कि भाई! सम्यक्-श्रद्धा-ज्ञानके अन्तर्पुरुषार्थ बिना यह बात निश्चित ही नहीं होती। "मैं ज्ञायक हूँ"—ऐसी दृष्टिके बिना क्रमबद्धपर्यायका ज्ञान करेगा कौन? ज्ञानके निर्णय बिना ज्ञेयका निर्णय होता ही नहीं। ज्ञानके निर्णय सहित क्रमबद्धपर्यायका निर्णय करे तो अनन्त पदार्थोंमें कहीं भी फेरफार करनेका अनन्ता अहंकार दूर हो जाये और ज्ञातारूप ही

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रहे ।—इसीमें मिथ्यात्वके और अनन्तानुबन्धीकषायके नाशका पुरुषार्थ आ गया । यही धर्मके पुरुषार्थका स्वरूप है, अन्य कोई बाहरका पुरुषार्थ नहीं है ।

(१५७) "क्रमबद्ध" का निर्णय और उसका फल

क्रमबद्धपर्यायका निर्णय किसे होता है ? और उसका फल क्या ?

—जिसकी बुद्धि ज्ञायकभावमें एकाग्र हुई है और रागमें या परका फेरफार करनेकी मान्यतामें रुक नहीं गई है, उसीको क्रमबद्धपर्यायका यथार्थ निर्णय हुआ है, और उस निर्णयके साथ उसे पुरुषार्थादि पाँचों समवाय (पूर्वोक्त प्रकारसे) आ जाते हैं । और, स्वसन्मुख होकर वह निर्णय करते ही सम्यग्दर्शनादि निर्मल पर्यायोंका क्रमबद्धप्रवाह प्रारम्भ हो जाता है—यही उसका फल है । ज्ञायकस्वभाव-की दृष्टि कहो, क्रमबद्धपर्यायका निर्णय कहो, या मोक्षमार्गका पुरुषार्थ कहो,—तीनों एकसाथ ही हैं; उनमेंसे एक हो और दूसरे दो न हों ऐसा नहीं हो सकता ।

प्रत्येक पदार्थ सत् है, उसका जो अनादि अनन्त जीवन है उसमें तीनोंकालकी पर्यायें एकसाथ प्रगट नहीं हो जातीं, किन्तु एकके बाद एक प्रगट होती है, और प्रत्येक समयकी पर्याय व्यवस्थित क्रमबद्ध है । ऐसे वस्तुस्वरूपका निर्णय करनेवालेको सर्वज्ञके केवल-ज्ञानका निर्णय हुआ और अपने ज्ञानमें वैसा सर्वज्ञताका सामर्थ्य —उसका भी निर्णय हो गया । ज्ञानस्वभावकी सन्मुखतामें इन सबका निर्णय एकसाथ हो जाता है । अक्रम ऐसे ज्ञायकस्वभावी द्रव्यकी ओर उन्मुख होकर उसका निर्णय करनेसे पर्यायकी क्रमबद्धताका निर्णय भी हो जाता है; अक्रमरूप अखण्ड द्रव्यको दृष्टि बिना पर्यायकी क्रमबद्धताका यथार्थ ज्ञान नहीं होता ।

भगवान ! द्रव्य त्रिकाली सत् है, और पर्याय एक-एक समय-का सत् है; वह सत् जैसा है उसे वैसा ही जाननेका तेरा स्वभाव है;

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

किन्तु उसमें कहीं उल्टा-सीधा करनेका तेरा स्वभाव नहीं है। अरे, सत्में "ऐसा क्यों ?"—इसप्रकार विकल्प करनेका भी तेरा स्वभाव नहीं है।—ऐसे स्वभावकी प्रतीति करनेसे मोक्षमार्गका प्रारम्भ हो जाता है और उसमें मोक्षमार्गके पाँचों समवाय एकसाथ आ जाते हैं।

(१५८) यह है सन्तोंका हार्द

एक ओर अकेला ज्ञायकस्वभाव, और दूसरी ओर क्रमबद्ध-पर्याय,—इसका यथार्थ निर्णय करनेमें सब आ जाता है, वह मूल वस्तुधर्म है, वह केवलीभगवानका उदर है, संतोंका हार्द है, शास्त्रोंका मर्म है, विश्वका दर्शन है, और मोक्षमार्गका कर्तव्य कैसा होता है उसकी यह रीति है।

अज्ञानी कहते हैं कि यह "छूतकी बीमारी है" तब यहां कहते हैं कि यह सर्वज्ञका हार्द है; जिसे यह बात बैठ गई उसके हृदयमें सर्वज्ञ बैठ गये,—वह अल्पज्ञ होने पर भी "मैं सर्वज्ञ जैसा ज्ञाता हूँ"—ऐसा उसे निर्णय हो गया।

अभी जिन्होंने ऐसे वस्तुस्वरूपका निर्णय नहीं किया, अरे ! यह बात सुनी भी नहीं, और यों ही त्यागी या व्रतपना लेकर धर्म मान लिया है, उन्हें धर्म तो नहीं है, किन्तु धर्मकी रीति क्या है—इसकी भी उन्हें खबर नहीं है।

(१५९) जो यह बात समझ ले उसकी दृष्टि बदल जाती है

यहाँ ज्ञायकस्वभावकी दृष्टिकी बात है, इसलिये ज्ञानस्वभावका निर्णय क्या, पुरुषार्थ क्या, सम्यग्दर्शन क्या,—यह सब साथ ही आ जाता है, और इस दृष्टिमें तो गृहीत या अगृहीत दोनों मिथ्यात्वका नाश हो जाता है। जो ज्ञायकस्वभावकी दृष्टि नहीं करता, पुरुषार्थको नहीं मानता, सम्यग्दर्शन नहीं करता और "जो होना होगा वह होगा"—इसप्रकार एकान्त नियतको पकड़कर स्वच्छन्दी होता है, वह गृहीतमिथ्यादृष्टि है, ऐसे जीवकी यहां बात नहीं है। यह बात

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

समझ ले उसे ऐसा स्वच्छन्द रहता ही नहीं, उसकी तो दृष्टिका सारा परिणमन ही बदल जाता है।

(१६०) ज्ञायकस्वभावकी दृष्टिकी ही मुख्यता

द्रव्यदृष्टिके बिना क्रमबद्धपर्यायका निर्णय नहीं होता; क्योंकि क्रमबद्धपना समय-समयकी पर्यायमें है, और छद्मस्थका उपयोग असंख्य समयका है, उस असंख्य समयके उपयोगमें एक-एक समय की पर्याय पृथक् करके नहीं पकड़ी जा सकती, किन्तु ध्रुवज्ञायकस्वभावमें उपयोग एकाग्र हो सकता है। इसलिये समय-समयकी पर्यायका क्रमबद्धपना पकड़ते हुए उपयोग अन्तरोन्मुख होकर ध्रुवज्ञायकस्वभावमें एकाग्र होता है और ज्ञायककी प्रतीतिमें क्रमबद्धपर्यायको प्रतीति भी हो जाती है।—इसप्रकार इसमें ज्ञायकस्वभावकी दृष्टि ही मुख्य है।

(१६१) जैसा वस्तुस्वरूप, वैसा ही ज्ञान और वैसी ही वाणी

देखो, यह वस्तुस्वरूप! पदार्थका जैसा स्वरूप हो वैसा ही ज्ञान जाने, तो वह ज्ञान सच्चा हो। समस्त पदार्थोंकी तीनोंकालकी पर्यायें क्रमबद्ध हैं,—ऐसा ही वस्तुस्वरूप है; सर्वज्ञभगवानने केवलज्ञानमें प्रत्यक्ष इसप्रकार जाना है और वाणीमें भी वैसा ही कहा है; इसप्रकार पदार्थ, ज्ञान और वाणी तीनों समान हैं। पदार्थोंका जैसा स्वभाव है वैसा ही ज्ञानमें देखा, और जैसा ज्ञानमें देखा वैसा ही वाणीमें आया; —ऐसे वस्तुस्वरूपसे जो विपरीत मानता है—आत्मा कर्ता होकर परकी पर्याय बदल सकता है—ऐसा मानता है वह पदार्थके स्वभावको नहीं जानता; सर्वज्ञके केवलज्ञानको नहीं जानता और सर्वज्ञके कहे हुए आगमको भी वह नहीं जानता; इसलिये देव-गुरु-शास्त्रको उसने वास्तवमें नहीं माना है।

इस "क्रमबद्धपर्याय" के सम्बन्धमें आजकल अनेक जीवोंका कुछ निर्णय नहीं है, और बड़ी गड़बड़ी चल रही है, इसलिये यहाँ अनेकानेक प्रकारोंसे उसकी स्पष्टता की गई है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(१६२) स्वच्छन्दीके मनका मैल (१)

प्रश्नः—आप कहते हैं कि जैसा सर्वज्ञ भगवानने देखा होगा वैसा क्रमबद्ध होगा; तो फिर हमारी पर्यायमें मिथ्यात्व भी जैसा क्रमबद्ध होना होगा वैसा होगा ?

उत्तरः—अरे मूढ़ ! तुझे सर्वज्ञको मानना नहीं है और स्वच्छन्दका पोषण करना है ! —निकाल दे अपने मनका मैल !! सर्वज्ञका निर्णय करे और मिथ्यात्व भी रहे—यह कहांसे लाया ? तूने सर्वज्ञका निर्णय ही नहीं किया है। इसलिये अन्तरका मैल निकाल दे....गोटे निकाल दे और ज्ञानस्वभावके निर्णयका उद्यम कर। ज्ञानस्वभावके निर्णय बिना "क्रमबद्ध" की बात तू कहांसे लाया ? मात्र "क्रमबद्ध" शब्दको पकड़ रखनेसे नहीं चलेगा। ज्ञानस्वभावका निर्णय करके क्रमबद्धको माने तो अपनी पर्यायमें मिथ्यात्व रहनेका प्रश्न ही न उठे, क्योंकि उसकी पर्याय तो अन्तर्स्वभावोन्मुख हो गई है, उसे अब मिथ्यात्वका क्रम हो ही नहीं सकता, और सर्वज्ञभगवान भी ऐसा देख ही नहीं सकते।

जिसे ज्ञानस्वभावका भान नहीं है, सर्वज्ञदेवका निर्णय नहीं है और उस प्रकारका उद्यम भी नहीं करता, विकारकी रुचि नहीं छोड़ता और मात्र भाषामें "क्रमबद्धपर्याय" का नाम लेकर स्वच्छन्दी होता है, वैसा जीव तो अपने आत्माको ही ठगता है। अरे ! जो परम वीतरागताका कारण है उसकी ओट लेकर स्वच्छन्दका पोषण करता है यह तो महान विपरीतता है।

(१६३) स्वच्छन्दीके मनका मैल (२)

एक त्यागी-पंडितजीने विद्यार्थी पर खूब क्रोध किया; जब किसीने उनसे कहा तो वे बोले कि-"अरे भैया ! तुमने गोम्मटसार नहीं पढ़ा, गोम्मटसारमें ऐसा लिखा है कि जब क्रोधका उदय आता है तब क्रोध हो ही जाता है।" देखो, यह गोम्मटसार पढ़कर सार निकाला ! अरे भाई ! तू गोम्मटसारकी ओट न ले, तुझ जैसे स्वच्छन्दकी पुष्टि

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

करनेवालेके लिये वह कथन नहीं है। पहले तो क्रोधादिकषाय होनेका भय रहता था और अपने दोषोंकी निन्दा करता था, उसके बदले अब तो वह भी नहीं रहा ! भाई ! शास्त्रका उपदेश तो वीतरागताके लिये होता है या कषाय बढ़ानेके लिये ? अज्ञानदशामें जैसा कषाय था वैसे ही कषायमें खड़ा हो तो उसने शास्त्र पढ़े ही नहीं, भले ही वह गोम्मटसारका नाम ले, किन्तु वास्तवमें वह गोम्मटसारको नहीं मानता।

(१६४) स्वच्छन्दीके मनका मैल (३)

—इसी प्रकार अब इस क्रमबद्धपर्यायकी बातमें लो। कोई जीव रुचिपूर्वक तीव्र क्रोधादिभाव करे और फिर कहे कि—"क्या किया जाये भाई ! हमारी क्रमबद्धपर्याय ऐसी ही होना थी !" क्रम-बद्धपर्याय सुनकर ज्ञायकस्वभावोन्मुख होनेके बदले, यदि ऐसा सार निकाले तो वह स्वच्छन्दी है, वह क्रमबद्धपर्यायको समझा ही नहीं है। अरे भाई ! तू क्रमबद्धपर्यायकी ओट न ले, तुझ जैसे स्वच्छन्दका पोषण करनेवालेके लिये यह बात नहीं है। पहले तो क्रोधादि कषायका भय रहता था और अपने दोषोंकी निन्दा करता था, उसके बदले अब तो वह भी नहीं रहा। भाई रे ! यह क्रमबद्ध-पर्यायका उपदेश तो अपने ज्ञायकभावकी दृष्टि करनेके लिये है या विकारकी रुचिका पोषण करनेके लिये ? जो विकारकी रुचि छोड़कर ज्ञानस्वभावकी दृष्टि नहीं करता वह जीव क्रमबद्धपर्यायकी बात समझा ही नहीं है; भले ही क्रमबद्धपर्यायका नाम ले, किन्तु वास्तवमें वह क्रमबद्धपर्यायको मानता ही नहीं है।

इसलिये हे भाई ! अपने मनका मैल निकाल दे, स्वच्छन्दका बचाव छोड़ दे और विकारकी रुचि छोड़कर ज्ञानस्वभावकी प्रतीतिका उद्यम कर।

(१६५) सम्यक्त्वीकी अद्भुत दशा !

प्रश्न:—क्रमबद्धपर्यायकी सच्ची समझ कैसे होती है ?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उत्तर:—"मैं ज्ञायक हूँ"—इस प्रकार ज्ञाताकी ओर ढलकर, अपनी दृष्टिको ज्ञायकस्वभावकी ओर मोड़ दे उसीको क्रम-बद्धपर्यायकी सच्ची समझ होती है, इसके सिवा नहीं होती। इस प्रकार क्रमबद्धपर्याय माननेवालेकी दृष्टि क्रोध पर नहीं होती, किन्तु ज्ञायक पर ही होती है; और ज्ञायकदृष्टिके परिणमनमें क्रोधादि नहीं रहते। ज्ञायकस्वभावको दृष्टिका ऐसा परिणमन हुए बिना जीवको सच्चा सन्तोष और समाधान नहीं होता; और सम्यक्त्वीको ऐसी दृष्टिका परिणमन होनेसे उनके सब समाधान हो गये हैं, ज्ञायकपनेके परिणमनमें उन्हें किसीका अभिमान भी नहीं रहा, और अपनेमें प्रमाद भी नहीं रहा तथा आकुलता भी नहीं रही। ज्ञातापनेके परिणमनकी धारा चल रही है उसमें व्याकुलता भी कैसी? और प्रमाद भी कैसा?—ऐसी सम्यक्त्वीकी अद्भुत दशा है।

(१६६) ज्ञातापनेसे च्युत होकर अज्ञानी कर्ता होता है

एक ओर ज्ञाता-भगवान, और सामने पदार्थोंका क्रमबद्ध-परिणमन—उनका आत्मा ज्ञाता ही है, ऐसा मेल है; उसके बदले वह मेल तोड़कर (अर्थात् स्वयं अपने ज्ञातास्वभावसे च्युत होकर) जो जीव कर्ता होकर परके क्रमको बदलना चाहता है, वह जीव परके क्रमको तो नहीं बदल सकता किन्तु उसकी दृष्टिमें विषमता (मिथ्यात्व) होती है। ज्ञायकपनेका निर्मल प्रवाह चलना चाहिये उसके बदले विपरीतदृष्टिके कारण वह विकारके कर्तृत्वरूपसे परिणमित होता है।

(१६७) सम्यक्श्रद्धा-ज्ञान कब होते हैं?

जिसे अपना हित करना हो,—ऐसे जीवके लिये यह बात है। हित सत्यसे होता है किन्तु असत्यसे नहीं होता। सत्यके स्वीकार बिना सच्चा ज्ञान नहीं होता, और सम्यक्ज्ञानके बिना धर्म या हित नहीं होता। जिसे अपने ज्ञानमेंसे असत्यपना टालकर सत्यपना करना हो उसे क्या करना चाहिये?—उसकी यह बात है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जैसा पदार्थ है वैसी ही उसकी श्रद्धा करे, और जैसी श्रद्धा है वैसा ही पदार्थ हो, तो वह श्रद्धा सच्ची है; इसीप्रकार जैसा पदार्थ है वैसा ही उसका ज्ञान करे, और जैसा ज्ञान करे, वैसा ही पदार्थ हो—तो वह ज्ञान सच्चा है।

"आत्मा ज्ञायकस्वरूप है, ज्ञायकपना ही जीवतत्त्वका सच्चा स्वरूप है, और पदार्थ क्रमबद्धपर्यायसे स्वयं परिणमित होनेवाले हैं; यह "ज्ञायक" अपने ज्ञानसहित उनका ज्ञाता है, किन्तु वह किसीके क्रमको बदलकर आगे-पीछे करनेवाला नहीं है"—ऐसे वस्तुस्वरूपकी श्रद्धा और ज्ञान करे तो वे श्रद्धा-ज्ञान सच्चे हों, इसलिये हित और धर्म हो।

(१६८) मिथ्याश्रद्धा-ज्ञानका विषय जगतमें नहीं है

—किन्तु कोई ऐसा माने कि "मैं कर्ता होकर परकी अवस्थाको बदल दूँ अर्थात् मेरा परके साथ कार्यकारणपना है"—तो उसकी मान्यता मिथ्या है, क्योंकि उसकी मान्यतानुसार वस्तुस्वरूप जगतमें नहीं है। मिथ्याश्रद्धाका (और मिथ्याज्ञानका) विषय जगतमें नहीं है। जिस प्रकार जगतमें "गधेका सींग" कोई वस्तु ही नहीं है, इसलिये "गधेका सींग" ऐसी श्रद्धा या ज्ञान वह मिथ्या ही है। उसी प्रकार "परके साथ कार्यकारणपना हो"—ऐसी कोई वस्तु ही जगतमें नहीं है, तथापि "मैं परका करूँ"—इस प्रकार जो परके साथ कार्यकारणपना मानता है उसकी श्रद्धा और ज्ञान मिथ्या ही हैं; क्योंकि उसकी मान्यतानुसार कोई विषय जगतमें नहीं है। यहां ऐसा नहीं समझना चाहिये कि—जिस प्रकार "गधेका सींग" और परके साथ कार्यकारणपना जगतमें नहीं है उसी प्रकार मिथ्या श्रद्धा भी नहीं है। मिथ्या श्रद्धा-ज्ञान तो अज्ञानीको पर्यायमें हैं; किन्तु उसकी श्रद्धानुसार वस्तुस्वरूप जगतमें नहीं है। अज्ञानीको पर्यायमें मिथ्या श्रद्धा तो "सत्" है, किन्तु उसका विषय "असत्" है अर्थात् उसका कोई विषय जगतमें नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

देखो, यहां कहा है कि—"मिथ्याश्रद्धा सत् है" इसका क्या मतलब ?—कि जगतमें मिथ्याश्रद्धाका अस्तित्व (सत्पना) है, मिथ्याश्रद्धा है ही नहीं—ऐसा नहीं है; किन्तु उस मिथ्याश्रद्धाके अभिप्रायानुसार कोई वस्तु जगतमें नहीं है। यदि उस श्रद्धानुसार वस्तुका स्वरूप हो तो उसे मिथ्याश्रद्धा न कहा जाये।

(१६९) इसमें क्या करना आया ?

यहां एक बात चल रही है कि आत्माका ज्ञायकपना और सर्व वस्तुओंकी पर्यायोंका क्रमबद्धपना माने बिना श्रद्धा-ज्ञान सच्चे नहीं होते, और सच्चे श्रद्धा-ज्ञान बिना हित या धर्म नहीं होता।

कोई पूछे कि इसमें क्या करना आया ?—तो उसका उत्तर यह है कि—पहले परका कर्तृत्व मानकर विकारमें एकाग्र होता था, उसके बदले अब ज्ञानस्वभावमें एकाग्रता करके ज्ञाता-दृष्टा रहा। उस ज्ञाता-दृष्टापनेमें अतीन्द्रिय आनन्दका वेदन, स्वभावका पुरुषार्थ आदि भी साथ ही हैं।

(१७०) ज्ञायकसन्मुख दृष्टिका परिणमन ही सम्यक्त्वका पुरुषार्थ

ज्ञायकस्वभावका निर्णय करके जिसने क्रमबद्धपर्याय मानी उसके स्वसन्मुख पुरुषार्थ भी साथ ही आ गया है। ज्ञायकस्वभावसन्मुख जो परिणमन हुआ उसमें पुरुषार्थ कहीं अलग नहीं रह जाता; पुरुषार्थ भी साथ ही परिणमित होता है। ज्ञायकस्वभावकी दृष्टि, क्रमबद्धपर्याय-का निर्णय, स्वसन्मुख पुरुषार्थ, या सम्यग्दर्शन-यह सब कहीं पृथक्-पृथक् नहीं है किन्तु एक ही है। इसलिये कोई ऐसा कहे कि "हमने ज्ञायकका और क्रमबद्धका निर्णय तो कर लिया. किन्तु अभी सम्यग्दर्शन का पुरुषार्थ करना बाकी है," तो उसका निर्णय सच्चा नहीं है; क्योंकि यदि ज्ञायकस्वभावका और क्रमबद्धपर्यायका यथार्थ निर्णय हो तो सम्यग्दर्शनका पुरुषार्थ उसमें आ ही जाता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(१७१) ज्ञायकस्वभावके आश्रयसे ही निर्मलपर्यायका प्रवाह

स्वसन्मुखपुरुषार्थ द्वारा ज्ञायकस्वभावका आश्रय करनेसे सम्यग्दर्शन होता है तथापि वह क्रमबद्ध है।

ज्ञायकस्वभावका आश्रय करनेसे मुनिदशा होती है, तथापि वह क्रमबद्ध है।

ज्ञायकस्वभावका आश्रय करनेसे शुक्लध्यान होता है, तथापि वह क्रमबद्ध है।

ज्ञायकस्वभावका आश्रय करनेसे केवलज्ञान और मोक्षदशा होती है, तथापि वह भी क्रमबद्ध है।

इसप्रकार ज्ञायकस्वभावके आश्रयसे ही निर्मलपर्यायका प्रवाह चलता है। जो ज्ञायकस्वभावका आश्रय नहीं करता उसे क्रमबद्धपर्यायमें निर्मल प्रवाह प्रारम्भ नहीं होता, किन्तु मिथ्यात्व चालू ही रहता है। स्वसन्मुखपुरुषार्थ द्वारा ज्ञायकस्वभावका आश्रय किये बिना किसीको भी निर्मलपर्यायका क्रम प्रारम्भ हो जाये–ऐसा नहीं होता।

(१७२) अकेले ज्ञायक पर ही जोर

देखो, इसमें जोर कहाँ आया ? अकेले ज्ञायकस्वभावके अवलम्बन पर ही सारा जोर आया। कालप्रवाहकी ओर देखकर बैठा रहना नहीं आया किन्तु ज्ञायककी ओर देखकर उसमें एकाग्र होना आया। ज्ञानीकी दृष्टिका जोर निमित्त पर, राग पर या भेद पर नहीं है, किन्तु अक्रम ऐसे चैतन्यभाव पर ही उसकी दृष्टिका जोर है; और वही सच्चा पुरुषार्थ है। अन्तरमें अपने ज्ञायकस्वभावको ही स्वज्ञेय बनाकर ज्ञान एकाग्र हुआ, वही सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र और मोक्षका कारण है।

(१७३) तुझे ज्ञायक रहना है या परको बदलना है ?

ज्ञायकस्वभावसन्मुख होकर क्रमबद्धपर्यायका ज्ञाता हुआ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसका फल वीतरागता है, और वही जैनशासनका सार है। जिन्हें ज्ञानस्वभावकी खबर नहीं है, सर्वज्ञकी श्रद्धा नहीं है;—ऐसे लोग इस "क्रमबद्धपर्याय" के सम्बन्धमें ऐसी दलील करते हैं कि—"ईश्वरका कर्तृत्व माने वहाँ तो भक्ति आदिसे ईश्वरको संतुष्ट करके उसमें फेरफार भी कराया जा सकता है, किन्तु यह क्रमबद्धपर्यायका सिद्धांत तो इतना कठिन है कि ईश्वर भी इसमें फेरफार नहीं कर सकता!"—अरे भाई! तुझे अपनेमें ज्ञायकरूपसे रहना है या किसीमें फेरफार करने जाना है? क्या परमें कहीं फेरफार करके तुझे सर्वज्ञका ज्ञान मिथ्या सिद्ध करना है? तुझे आत्माके ज्ञानस्वभावको मानना है या नहीं? ज्ञानस्वभावी आत्माके पाससे ज्ञाता–दृष्टापनेके अतिरिक्त दूसरा कौनसा काम तुझे लेना है? ज्ञानस्वभावकी प्रतीति करके ज्ञायकस्वभावरूपसे परिणमित होनेमें सम्पूर्ण मोक्षमार्गका समावेश हो जाता है।

(१७४) ज्ञानी ज्ञाता ही रहते हैं, और उसमें पांचों समवाय आजाते हैं

एक बार ज्ञायकस्वभावका निर्णय करे तो ज्ञातापना हो जाये और परके कर्तृत्वका अभिमान उड़ जाये; इसलिये परके प्रति एकत्वबुद्धिके अनन्तानुबन्धी राग–द्वेष, हर्ष–शोकका तो भुक्का हो गया। रागका और परका संग छोड़कर, अन्तरमें ज्ञायकस्वभावका संग करे उसे ज्ञेयोंकी क्रमबद्धपर्यायका निर्णय हो जाता है इसलिये वह ज्ञाता ही रहता है; एकत्वबुद्धिपूर्वकके राग–द्वेष उसे कहीं होते ही नहीं। शिष्यकी ज्ञानादि पर्याय उसके अपनेसे क्रमबद्ध होती है, मैं उसका क्या करूँ?—मैं तो ज्ञाता ही हूँ;—ऐसा जाना वहाँ ज्ञानी को उसके प्रति एकत्वबुद्धिसे राग या द्वेष (–शिष्य होशियार हो तो राग, और वह न आये तो द्वेष) होता ही नहीं; और इसप्रकार ज्ञानीको कहीं भी एकत्वबुद्धिसे रागादि नहीं होते; उसके तो अपने ज्ञानस्वभावमें एकत्वबुद्धिसे निर्मल ज्ञानादिपरिणाम ही होते हैं।

ज्ञायकभावका जो परिणमन हुआ वही उसका स्वकाल है,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वही उसका नियत है, वही उसका स्वभाव है वही उसका पुरुषार्थ है, और उसमें कर्मका अभाव है। इसप्रकार ज्ञायकभावके परिणमनमें ज्ञानीके एक साथ पाँचों समवाय आ जाते हैं।

(१७५) यहां जीवको उसका ज्ञायकपना समझाते हैं

जीव क्रमबद्ध अपनी ज्ञानादि पर्यायरूपसे उत्पन्न होता है, इसलिये उसे अपनी पर्यायके साथ कार्य-कारणपना है, किन्तु परके साथ कारण-कार्यपना नहीं है। एक द्रव्यमें दूसरे द्रव्यके कारण-कार्यका अभाव है। इस द्रव्यमें अपनी क्रमबद्धपर्यायका कार्य-कारणपना प्रतिसमय हो रहा है, और उसी समय सामने जगतके अन्य द्रव्योंमें भी अपनी-अपनी पर्यायका कारण-कार्यपना बन ही रहा है, किन्तु सर्व द्रव्योंको अन्य द्रव्योंके साथ कारण-कार्यपनेका अभाव है। ऐसी वस्तुस्थिति समझे तो, मैं कारण होकर परका कुछ भी कर दूँ—ऐसा गर्व कहाँ रहता है? यह समझे तो भेदज्ञान होकर ज्ञायक-स्वभावोन्मुखता हो जाये। जीवको अपने ज्ञायकस्वभावकी ओर उन्मुख करनेके लिये यह बात समझाते हैं। जिसकी दृष्टि अपने ज्ञायकस्वभाव पर नहीं है, प्रत्येक वस्तु क्रमबद्धपर्यायरूपसे स्वयं ही उत्पन्न होती है,—उसको जिसे खबर नहीं है, और रागादि द्वारा परकी अवस्थामें फेरफार करना मानता है ऐसे जीवको समझाते हैं कि अरे जीव! तेरा स्वरूप तो ज्ञान है; जगतके पदार्थोंकी जो क्रमबद्ध अवस्था होती है उसका तू बदलनेवाला या करनेवाला नहीं है किंतु जाननेवाला है; इसलिये अपने ज्ञातास्वभावकी प्रतीति कर और ज्ञातारूपसे ही रह;—अर्थात् ज्ञानस्वभावमें ही एकाग्र हो; यही तेरा सच्चा कार्य है।

(१७६) जीवको अजीवके साथ कारण-कार्यपना नहीं है।

जगतके पदार्थोंमें स्वाधीनरूपसे जो क्रमबद्धअवस्था होती है वही उनकी व्यवस्था है, उस व्यवस्थाको आत्मा नहीं बदल सकता। जीव अपने ज्ञानरूपसे परिणमित होता हुआ, साथमें अजीवकी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अवस्थाको भी कर दे ऐसा नहीं होता। आत्मा और जड़ दोनोंमें प्रतिसमय अपना-अपना नया-नया कार्य उत्पन्न होता है, और वे स्वयं उसमें तद्रूप होनेसे उसका कारण हैं; इसप्रकार प्रत्येक वस्तुको अपनेमें समय-समय नया-नया कार्य-कारणपना बन ही रहा है; तथापि उन्हें एक-दूसरेके साथ कार्य-कारणपना नहीं है। जैसा ज्ञान हो वैसी भाषा निकलती हो अथवा जैसे शब्द हों वैसा ही ज्ञान होता हो तथापि ज्ञानको और शब्दको कारण-कार्यपना नहीं है। इच्छानुसार भाषा निकाले वहां अज्ञानी ऐसा मानता है कि मेरे कारण भाषा बोली गई; अथवा शब्दोंके कारण मुझे वैसा ज्ञान हुआ-ऐसा वह मानता है; किन्तु दोनोंके स्वाधीन परिणमनको वह नहीं जानता। प्रत्येक वस्तु प्रतिसमय नये-नये कारण-कार्यरूपसे परिणमित होती है और निमित्त भी नये-नये होते हैं तथापि उनको परस्पर कार्य-कारणपना नहीं है; अपने कार्य-कारण अपनेमें और निमित्तके कारण-कार्य निमित्तमें। भेदज्ञानसे ऐसा वस्तुस्वरूप जाने तो ज्ञानका विषय सच्चा हो, इसलिये सम्यग्ज्ञान हो जाये।

(१७७) भूले हुओंको मार्ग बतलाते हैं, रोगीका रोग मिटाते हैं

ज्ञायकस्वभाव क्रमबद्धपर्यायका ज्ञाता है, उसके बदले क्रमबद्धको एकान्त-नियत कहकर जो उसका निषेध करता है वह अपने ज्ञायकत्वका ही इन्कार करता है और केवलज्ञानको उड़ाता है। भाई! तू एकबार अपने ज्ञायकत्वका तो निर्णय कर....ज्ञायकका निर्णय करनेसे तुझे क्रमबद्धकी प्रतीति भी हो जायेगी, इसलिये अनादिकालीन विपरीत परिणमन छूटकर सीधा सम्यक् परिणमन प्रारम्भ हो जायेगा। इसप्रकार विपरीतमार्गसे छुड़ाकर स्वभावके सीधे मार्ग पर चढ़नेकी यह बात है। जिस प्रकार कोई लग्नमडपमें जानेके बदले श्मशानमें जा पहुँचे, उसीप्रकार अज्ञानी अपने ज्ञायक-स्वभावकी लगन लगाकर उसमें एकाग्र होनेके बदले, मार्ग भूलकर "मैं परका करूँ"—ऐसी विपरीतदृष्टिसे भवभ्रमणके मार्ग पर चढ़ गया है। यहां आचार्यदेव उसे ज्ञायकस्वभावका अकर्तृत्व बतलाकर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सीधे मार्ग (मोक्षमार्ग) पर चढ़ाते हैं। "मैं ज्ञायकस्वरूप हूँ"—ऐसी ज्ञायककी लगन छोड़कर मूढ़ अज्ञानी जीव परकी कर्ताबुद्धिसे, आत्माकी श्रद्धा जहाँ भस्म हो जाती है ऐसे मिथ्यात्वरूपी श्मशानमें जा पहुंचा है। आचार्यदेव उसे कहते हैं कि भाई ! तेरा ज्ञायकजीवन है, उसका विरोध करके बाह्यविषयोंमें एकत्वबुद्धिके कारण तुझे आत्माकी श्रद्धामें क्षयरोग लग गया है, यह तेरा क्षयरोग दूर करनेकी औषधि है; ज्ञायकस्वभावसन्मुख होकर क्रमबद्धपर्यायका निर्णय करे तो तेरी कर्ताबुद्धि दूर हो जाये और क्षयरोग मिटे अर्थात् मिथ्याश्रद्धा दूर होकर सम्यक्श्रद्धा हो। आजकल अनेक जीवोंको यह निर्णय करना कठिन होता है, किन्तु यह तो खास आवश्यक है; यह निर्णय किये बिना भवभ्रमणका अनादिकालीन रोग दूर नहीं हो सकता। मेरा ज्ञायकस्वभाव परका अकर्ता है मैं अपने ज्ञायकपनेके क्रममें रहकर, क्रमबद्धपर्यायका ज्ञाता हूँ—ऐसा निर्णय न करे उसे अनन्त संसारभ्रमणके कारणरूप मिथ्याश्रद्धा दूर नहीं होती।

(१७८) वस्तुका परिणमन व्यवस्थित होता है या अव्यवस्थित ?

भाई ! तू विचार तो कर कि वस्तुका परिणमन व्यवस्थित होता है या अव्यवस्थित ?

यदि अव्यवस्थित कहें तो ज्ञान ही सिद्ध नहीं हो सकता; अव्यवस्थित परिणमन हो तो केवलज्ञान तीनकालका ज्ञान कैसे करेगा ? मनःपर्यय, अवधिज्ञान भी अपने भूत-भविष्यके विषयोंको कैसे जानेंगे ? ज्योतिषी ज्योतिष काहेको देखेगा ? श्रुतज्ञान क्या निर्णय करेगा ? हजारों लाखों या असंख्य वर्षोंके बाद भविष्यकी चौवीसीमें यही चौवीस जीव तीर्थंकर होंगे—यह सब किस प्रकार निश्चित् होगा ? सात वारोंमें किस वारके बाद कौन-सा वार आयेगा और अट्ठाईस नक्षत्रोंमें किस नक्षत्रके बाद कौन-सा नक्षत्र आयेगा —यह भी कैसे निश्चित् हो सकता है ? यदि अव्यवस्थित परिणमन हो तो यह कुछ भी पहलेसे निश्चित् नहीं हो सकता, इसलिये उसका ज्ञान ही

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

किसीको नहीं होगा। किन्तु ऐसा ज्ञान तो होता है, इसलिये वस्तुका परिणमन व्यवस्थित–क्रमबद्ध–नियमबद्ध ही है।

—और व्यवस्थितपरिणमन ही प्रत्येक वस्तुमें है, तो फिर –आत्मा उसमें फेरफार कर दे—यह बात भी नहीं रहती मात्र ज्ञायकत्व ही रहता है। इसलिये तू अपने ज्ञायकपनेका निर्णय कर और परको बदलनेकी बुद्धि छोड़—ऐसा उपदेश है। परको अव्यवस्थित माननेसे तेरा ज्ञान ही अव्यवस्थित हो जाता है, अर्थात् तुझे अपने ज्ञानकी ही प्रतीति नहीं रहती। और जो ज्ञानकी प्रतीति करे उसे परको बदलनेकी बुद्धि नहीं रहती।

(१७९) ज्ञाताके परिणमनमें मुक्तिका मार्ग

ऐसे अपने ज्ञायकस्वभावका निर्णय करके, स्वसन्मुख ज्ञाता–भावरूपसे क्रमबद्धपरिणमित होनेवाले जीवको परके साथ (कर्मके साथ) कार्यकारणपना सिद्ध नहीं होता; वह कर्ता होकर अजीवका कार्य भी करे—ऐसा नहीं होता। इसप्रकार जीव अकर्ता है—ज्ञायक है—साक्षी है। ज्ञायकस्वभावसन्मुख होकर ऐसा ज्ञायकपनेका जो परिणमन हुआ उसमें सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र आ जाते हैं, और वही मोक्षका कारण है।

–: आठवाँ प्रवचन :–

[आश्विन शुक्ला ४, वीर सं० २४८०]

भाई ! यह बात समझकर तू स्वसन्मुख हो....अपने ज्ञायकस्वभावसन्मुख हो।—इसके सिवा अन्य कोई हितका मार्ग नहीं है। छुटकारेका मार्ग तुझमेंही विद्यमान है, अन्तरके ज्ञायकस्वरूपको पकड़कर उसमें एकता करेगा तो छुटकारेका मार्ग तेरे हाथमें ही है; इसके सिवा बाह्यमें लाखों उपाय करनेसे भी छुटकारा (मुक्तिका मार्ग) हाथ नहीं आ सकता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(१८०) हे जीव ! ज्ञायकरूप ही रह !

आत्मा ज्ञायक है; जड़-चेतनके क्रमबद्धपरिणाम होते रहते हैं, वहाँ उनका ज्ञायक न रहकर परमें कर्तृत्व मानता है वह जीव अज्ञानी है । यहाँ आचार्यदेव समझाते हैं कि—तुझे परके साथ कर्ताकर्मपना नहीं है; तू अजीवका कर्ता, अजीव तेरा कार्य—ऐसा नहीं है । जीव और अजीव क्रमबद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न होते हैं, जिस समय जो पर्याय होना है उस समय वही होगी, वह आगे-पीछे या कम-अधिक नहीं हो सकती; द्रव्य स्वयं अपनी क्रमबद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न होता है, तो दूसरा उसमें क्या करे ? उसमें दूसरेकी अपेक्षा क्या है ? इसलिये हे जीव ! तू ज्ञायकरूप ही रह । तू ज्ञायक है, परका अकर्ता है, तू अपने ज्ञातास्वभावमें अभेद होकर निर्विकल्प प्रतीति कर । स्व-सन्मुख होकर ज्ञाताभावरूप ही परिणमन कर; किन्तु मैं निमित्त होकर परका काम करदूँ—ऐसी दृष्टि छोड़ दे ।

(१८१) भाई, तू ज्ञायक पर दृष्टि कर, निमित्तकी दृष्टि छोड़ !

कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि "निमित्त होकर हम दूसरेका कार्य कर दें"—यह भी विपरीतदृष्टि है । भाई, वस्तुकी क्रमबद्धपर्याय जब स्वयं उससे होती है तब सामने दूसरी वस्तु निमित्तरूपसे होती है—इसका नाम निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध है; किन्तु अवस्था न होना हो और निमित्त आकर कर दे—ऐसा कोई निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध नहीं है । जड़ और चेतन समस्त द्रव्य स्वयं ही अपनी क्रमबद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न होते हैं इसलिये निमित्तसे कुछ होता है—यह बात ही उड़ जाती है । आत्मा अजीवका कर्ता नहीं है;—इसे समझनेका फल तो यह है कि तू परके ऊपरसे दृष्टि उठाकर, अपने अभेद ज्ञायकआत्मा पर दृष्टि रख; स्वसन्मुख होकर आत्माकी निर्विकल्प प्रतीति कर । "मैं कर्ता नहीं हूँ किन्तु निमित्त बनकर परका कार्य करूँ"—यह बात भी इसमें नहीं रहती, क्योंकि ज्ञायकोन्मुख जीव परकी ओर नहीं देखता,—ज्ञायककी दृष्टिमें परके साथके निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

का भी लक्ष छूट गया है; उसमें तो अकेले ज्ञायकभावका ही परिणमन है। अज्ञानी तो निमित्त–नैमित्तिकसम्बन्धके बहाने कर्ता–कर्मपना मान लेते हैं, उसकी बात तो दूर रही, किन्तु यहां तो कहते हैं कि एकबार परके साथके निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्धको भी दृष्टिमेंसे छोड़कर अकेले ज्ञायकस्वभावको ही दृष्टिमें ले, दृष्टिको अन्तरोन्मुख करके ज्ञायकमें एकाग्र कर तो सम्यग्दर्शन हो। ऐसी अन्तरकी सूक्ष्म बात है, उसमें "निमित्त आये तो होता है और निमित्त न आये तो नहीं होता"—ऐसी स्थूल बात तो कहीं दूर रह गई!—उसे अभी निमित्तको ढूँढ़ना है, किन्तु ज्ञायकको नहीं ढूँढ़ना है, अन्तरमें ज्ञायकोन्मुख नहीं होना है। जिसे अपने ज्ञायकपनेकी प्रतीति नहीं है वह जीव निमित्त बनकर परको बदलना चाहता है। भाई! परद्रव्य उनकी अपनी क्रमबद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न होते हैं और तू अपनी क्रमबद्धपर्यायसे उत्पन्न होता है;—फिर उसमें कोई किसीका निमित्त होकर उसके क्रममें कुछ फेरफार कर दे—यह बात कहां रही! क्रमबद्धपर्यायसे रहित ऐसा कौन–सा समय है कि दूसरा कोई आकर कुछ फेरफार करे? द्रव्यमें अपनी क्रमबद्धपर्यायसे रहित कोई समय नहीं है। इसलिये ज्ञायकोन्मुख होकर तू ज्ञाता रह जा। ज्ञायकस्वभावका निर्णय करे तो सर्व विपरीत मान्यताओंका नाश हो जाये।

(१८२) क्रमबद्ध परिणमित होनेवाले द्रव्योंका अकार्य-कारणपना

प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक जड़ अपने–अपने क्रमबद्धपरिणाम-रूपसे उत्पन्न होते हैं; इसप्रकार उत्पन्न होते हुए वे द्रव्य अपने परिणामके साथ तद्रूप हैं, किन्तु अन्यके साथ उन्हें कारणकार्यपना नहीं है। इसलिये जीव कर्ता होकर अजीवका कार्य करे—ऐसा नहीं होता, इसलिये जीव अकर्ता है। प्रत्येक द्रव्य अपनी उस–उस समयकी क्रमबद्धपर्यायके साथ अनन्य है; यदि दूसरा कोई आकर उसकी पर्यायमें हाथ डाले तो उसे परके साथ अनन्यपना हो जाये, इसलिये भेदज्ञान न रहकर दो द्रव्योंकी एकत्वबुद्धि हो जाये। भाई, क्रमबद्धपर्यायरूपसे द्रव्य स्वयं उत्पन्न होता है, तो दूसरा उसमें क्या करेगा?—

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ऐसी समझ वह भेदज्ञानका कारण है। वस्तुस्वभाव ही ऐसा है, उसमें दूसरा कुछ हो सके ऐसा नहीं है; दूसरे प्रकारसे माने तो मिथ्याज्ञान होता है।

(१८३) भेदज्ञानके बिना निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्धका ज्ञान नहीं होता।

देखो, यह इस शरीरकी उँगली ऊँची-नीची होती है वह अजीव परमाणुओंकी क्रमबद्धपर्याय है, और उस पर्यायमें तन्मयरूपसे अजीव उत्पन्न हुआ है, जीव उस पर्यायरूपसे उत्पन्न नहीं हुआ है, इसलिये आत्माने उँगलीकी पर्यायमें कुछ किया—यह बात झूठ है। और इसप्रकार छहों द्रव्य अपने-अपने स्वभावसे ही अपनी क्रमबद्ध-पर्यायरूपसे परिणमित होते हैं,—ऐसी स्वतन्त्रता जानकर भेदज्ञान करे तभी निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्धका यथार्थ ज्ञान होता है। दूसरी वस्तु आये तो कार्य होता है और न आये तो नहीं होता—ऐसा माने तो वहाँ निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध सिद्ध नहीं होता, किन्तु कर्ताकर्मपनेकी मिथ्यामान्यता हो जाती है। दूसरी वस्तु आये तो कार्य होता है —अर्थात् निमित्तसे कार्य होता है—ऐसा माननेवाले हैं वह जीवद्रव्यके क्रमबद्ध स्वतन्त्रपरिणमनको न जाननेवाले, ज्ञानस्वभावको न माननेवाले, और परमें कर्तृत्व माननेवाले मूढ़ हैं।

(१८४)—किन्तु व्यवहारसे तो कर्ता है न...!"

"व्यवहारसे तो निमित्त कर्ता है न?" ऐसा अज्ञानी कहते हैं; किन्तु भाई! "व्यवहारसे तो कर्तापना है"—ऐसा जोर देकर तू क्या सिद्ध करना चाहता है? व्यवहारके नामसे तुझे अपनी एकता-बुद्धि ही दृढ़ करना है? "किन्तु व्यवहारसे कर्ता" यानी वास्तवमें अकर्ता—ऐसा तू समझ। एक वस्तुको क्रमबद्धपर्यायके समय दूसरी वस्तु भी क्रमबद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न होती हुई निमित्तरूपसे भले हो, यहां जो पर्याय है, और उसी समय सामने जो निमित्त है, वे दोनों सुनिश्चित् ही हैं।—ऐसा व्यवस्थितपना जो जानता है उसे "निमित्त

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आये तो होता है, और न आये तो नहीं होता"—यह प्रश्न ही नहीं उठता।

(१८५) सम्यग्दर्शनकी सूक्ष्म बात

दूसरे–यहां तो इससे भी सूक्ष्म बात यह है कि, ज्ञायक पर दृष्टि करनेसे निमित्त–नैमित्तिकसम्बन्धकी दृष्टि भी छूट जाती है। निमित्त–नैमित्तिकसम्बन्ध पर ही जिसकी दृष्टि है उसकी दृष्टि परके ऊपर है; और जबतक परके ऊपर दृष्टि है तबतक निर्विकल्प प्रतीति–रूप सम्यक्त्व नहीं होता। अकेले ज्ञायकस्वभावको दृष्टिमें लेकर एकाग्र हो तभी सम्यग्दर्शन होता है और निर्विकल्प आनन्दका वेदन होता है।—ऐसी दशा बिना धर्मका प्रारम्भ नहीं होता।

(१८६) जिसे आत्महित करना है उसे बदलना ही पड़ेगा !

अहो ! आत्माके हितकी ऐसी श्रेष्ठ बात !! ऐसी बातको एकान्तवाद कहना या गृहीतमिथ्यादृष्टिके नियतवादके साथ इसकी तुलना करना वह तो जैनशासनका ही विरोध करने जैसा महान गजब है ! "स्याद्वाद नहीं है, एकान्त है, नियत है, छूतकी बीमारी है"—इत्यादि कहकर विरोध करने वाले सभीको बदलना पड़ेगा, यह बात तीनकालमें नहीं बदल सकती। इससे विरुद्ध कहनेवाले भले ही चाहे जैसे महान त्यागी या विद्वान माने जाते हों तथापि उन सबको बदलना पडेगा—अगर उन्हें आत्माका हित करना है तो।

(१८७) गम्भीर रहस्यका दोहन

आचार्य भगवानने इन चार गाथाओंमें (३०८ से ३११ में) पदार्थस्वभावका अलौकिक नियम रख दिया है, और श्री अमृतचन्द्राचार्यदेवने टीका भी ऐसी ही अद्भुत की है। कुन्दकुन्दाचार्यदेवने संक्षेपमें द्रव्यानुयोगको गंभीरता पूर्वक समा दिया है, और अमृतचन्द्राचार्यदेवने टीकामें उसका रहस्य खोल दिया है। जिसप्रकार भैंसके पेटमें जो दूध भरा हो वही दुहनेसे बाहर आता है, उसीप्रकार सूत्र–

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

में और टीकामें जो रहस्य भरा है उसीका यह दोहन हो रहा है; जो मूलमें है उसीका यह विस्तार है।

(१८८) संपूर्ण द्रव्यको साथ रखकर अपूर्व बात !

जीव अपने क्रमबद्ध परिणामोंसे उत्पन्न होता है, तथापि अजीवके साथ उसे कारण-कार्यपना नहीं है। यहाँ तो आचार्यदेव कहते हैं कि "दवियं जं उप्पज्जई"....अर्थात् प्रतिसमय अपने नये-नये परिणामरूपसे द्रव्य ही स्वयं उत्पन्न होता है। पहले समयमें कारण-कार्यरूपसे जो द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव हैं, वे चारों दूसरे समयमें कुलांट मारकर दूसरे समयके कारण-कार्यरूपसे परिणमित हो जाते हैं; अकेले परिणाम ही पलटते हैं और द्रव्य नहीं पलटता—ऐसा नहीं है; क्योंकि परिणामरूपसे द्रव्य स्वयं ही उत्पन्न होता है। चक्कीके दो पाटोंकी भांति द्रव्य और पर्यायमें भिन्नत्व नहीं है; इसलिये जिस प्रकार चक्कीमें ऊपरका पाट घूमता है और नीचेका बिलकुल स्थिर रहता है—ऐसा नहीं है। पर्यायरूपसे कौन परिणमित हुआ ? तो कहते हैं वस्तु स्वयं। आत्मा और उसके अनन्त गुण, प्रतिसमय नई-नई पर्यायरूपसे उत्पन्न होते हैं, उस पर्यायमें वे तद्रूप हैं। इसलिये पर्याय अपेक्षासे देखने पर द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव—चारों दूसरे समय पलट गये हैं। द्रव्य और गुणोंकी अपेक्षासे सदृशता ही है, तथापि पहले समयके जो द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव हैं वे पहले समयकी उस पर्यायरूपसे उत्पन्न (परिणमित) हुए हैं, और दूसरे समयमें वे द्रव्य-क्षेत्र-भाव तीनों पलटकर दूसरे समयकी उस पर्यायरूपसे उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार क्रम-बद्धपर्यायरूपसे द्रव्य स्वयं ही परिणमित होता है। दूसरे समयकी पर्याय "ज्योंकी त्यों" भले हो, किन्तु द्रव्यकी पहले समय जो तद्रूपता थी वह बदलकर दूसरे समयमें दूसरी पर्यायके साथ तद्रूपता हुई है। अहो, पर्याय-पर्यायमें सारे द्रव्यको साथ ही साथ लक्षमें रखा है। द्रव्यका यह स्वरूप समझे तो पर्याय-पर्यायमें द्रव्यका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अवलम्बन वर्तता ही रहे इसलिये द्रव्यकी दृष्टिमें निर्मल-निर्मल पर्यायोंकी धारा बहती रहे....ऐसी अपूर्व यह बात है।

(१८९) मुक्तिका मार्ग

पर्यायरूपसे उत्पन्न कौन हुआ ? तो कहते हैं द्रव्य। इसलिये अपनेको अपने ज्ञायकद्रव्यके सन्मुख ही देखना रहता है; दूसरा आकर इसका कुछ कर दे, अथवा यह किसी दूसरेका कुछ करने जाये यह बात कहां रहती है ? भाई ! यह बात समझकर तू स्वसन्मुख हो....अपने ज्ञायकस्वभावकी ओर देख।—इसके सिवा अन्य कोई हितका मार्ग नहीं है। छुटकारेका मार्ग तुझीमें विद्यमान है; अंतरके ज्ञायकस्वरूपको पकड़कर उसमें एकता कर तो छुटकारेका मार्ग तेरे हाथमें ही है; इसके सिवा बाह्यमें लाखों प्रयत्न करनेसे भी छुटकारा (मुक्तिका मार्ग) हाथ नहीं आ सकता।

(१९०) "ज्ञायक" ही ज्ञेयोंका ज्ञाता है

अपने क्रमबद्धपरिणामोंमें तद्रूप वर्तता हुआ द्रव्य प्रवाहक्रममें दौड़ता ही जाता है; आयतसामान्य अर्थात् दौड़ता-प्रवाह, उसमें तद्रूपतासे द्रव्य उत्पन्न होता है। द्रव्यके प्रदेश सब एकसाथ (विस्तार-सामान्य समुदायरूपसे) विद्यमान हैं, और पर्याय एकके बाद एक क्रमबद्धप्रवाहरूपसे वर्तती है। द्रव्यके क्रमबद्धपरिणमनकी धाराको रोकने, तोड़ने या बदलनेमें कोई समर्थ नहीं है। मैं ज्ञायक जगतके द्रव्य-गुण-पर्यायोंको जिस प्रकार वे सत् हैं उसी प्रकार जानने-वाला हूँ;—इसप्रकार अपने ज्ञायकस्वभावका निर्णय करनेकी यह बात है। जो ज्ञायकका निर्णय करे वही ज्ञेयोंको यथार्थरूपसे जानता है।

(१९१) यह है, ज्ञायकस्वभावका अकर्तृत्व

द्रव्य-क्षेत्र और भाव, पहले समयकी उस पर्यायमें तद्रूप हैं; वह पर्याय बदलकर दूसरी हुई, तब दूसरे समयकी उस पर्यायमें तद्रूप हैं।—इस प्रकार वस्तुके द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव चारों

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रति समय पलटकर नई-नई अवस्थारूपसे उत्पन्न होते हैं, इसलिये उसी पर्यायके साथ उन्हें कारण-कार्यपना है, किन्तु दूसरीके साथ कारण-कार्यपना नहीं है। देखो, यह ज्ञायकस्वभावका अकर्तृत्व !

(१) ज्ञायकभाव परसे तो भिन्न,
(२) रागादिक भावोंसे भी भिन्न,
(३) एक पर्याय, आगे-पीछेकी दूसरी अनंत पर्यायोंसे भिन्न
(४) एक गुण दूसरे अनन्त गुणोंसे भिन्न, और
(५) द्रव्य-गुणकी पहले समयमें जिस पर्यायके साथ तद्रूपता थी वह तद्रूपता दूसरे समय नहीं रही, किन्तु दूसरे समय दूसरी पर्यायके साथ तद्रूपता हुई है।

—देखो यह सत्यका श्रद्धान होनेकी रीति ! यह बात लक्षमें लेनेसे सम्पूर्ण ज्ञायकद्रव्य दृष्टिके समक्ष आ जाता है।

(१९२) "जीवंत वस्तुव्यवस्था और ज्ञायकका जीवन"—उसे जो नहीं जानता वह मूढ़ "मरे हुएको जीवित, और जीवितको मरा हुआ मानता है।"

जिस प्रकार कोई अज्ञानी प्राणी मुर्देको जीवित मानकर उसे जिलाना चाहे—खिलाना-पिलाना चाहे, तो कोई मुर्दा जीवित नहीं हो सकता और उसका दुःख दूर नहीं हो सकता; (यहां रामचन्द्रजीका उदाहरण नहीं देते, क्योंकि रामचन्द्रजी तो ज्ञानी सम्यक्त्वी थे) किन्तु मुर्देको मुर्दारूपसे जाने तो उसकी भ्रमणाका दुःख दूर हो। उसी प्रकार परवस्तुके साथ कर्ता-कर्मपनेका अत्यन्त अभाव ही है, (मुर्देकी भाँति), तथापि जो ऐसा मानता है कि—परका भी करता हूँ; वह अभावको अभावरूप न मानकर, परका अपनेमें सद्भाव मानता है; उस विपरीत मान्यतासे वह दुःखी ही है।

अथवा, जिस प्रकार कोई जीवितको मरा हुआ माने तो वह

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मूढ़ है; उसी प्रकार आत्मा ज्ञायकस्वभावसे जीवित है, ज्ञायकपना ही उसका जीवन है; उसके बदले जो उसे परका कर्ता मानता है वह ज्ञायकजीवनका घात करता है इसलिये वह महान हिंसक है। और, परवस्तु भी जीवित (स्वयं परिणमित) है; उसके बदले मैं उसे परिणमित करता हूँ—ऐसा जिसने माना उसने परवस्तुको जीवित नहीं माना, किन्तु मरा हुआ अर्थात् परिणमनरहित माना है। स्वतन्त्र परिणमित वस्तुका जो परके साथ कर्ता-कर्मपना मानता है वह जीवंत वस्तुव्यवस्थाको नहीं जानता। समयसार गाथा ३५६ से ३६५ की टीकामें भी कहा है कि—"जिसका जो हो वह वही होता है; जैसे कि—ज्ञान आत्माका होनेसे ज्ञान आत्मा ही है"—ऐसा तात्त्विकसम्बन्ध जीवंत है।" देखो, यह जीवंत सम्बंन्ध! आत्माका अपने ज्ञानादिके साथ एकताका सम्बन्ध जीवंत है, किन्तु परके साथ कर्ताकर्मपनेका सम्बन्ध किंचित् भी जीवंत नहीं है। यदि परद्रव्य आत्माका कार्य हो अर्थात् आत्मा परका कार्य करे, तो वह परद्रव्य आत्मा हो हो जाये; क्योंकि जो जिसका कार्य हो वह उससे पृथक् नहीं होता। किंतु ज्ञायक आत्माका परके साथ ऐसा कोई सम्बन्ध नहीं है। तथापि जो परके साथ कर्ताकर्मका सम्बन्ध मानता है वह ज्ञायकजीवनका घात कर देता है और मुर्देको जीवित करना चाहता है, वह मूढ़-मिथ्यादृष्टि है। सभी द्रव्य स्वयं परिणमित होकर अपनी क्रमसर पर्यायोंमें तद्रूपतापूर्वक वर्तते हैं—ऐसी जीवंत वस्तुव्यवस्था है; उसके बदले दूसरेके द्वारा उसमें कुछ फेरफार होना माने, तो उससे कहीं वस्तुव्यवस्था तो नहीं बदल जायेगी किंतु वैसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि होगा।

चारों ओरसे एक ही धाराकी बात है; किंतु जो पात्र होकर समझना चाहे उसकी समझमें आती है। द्रव्यके क्रमबद्ध-प्रवाहको कोई दूसरा बीचमें आकर बदल दे-ऐसा जीवंत वस्तुमें नहीं है, इसलिये स्वभावसन्मुख होकर ज्ञायकभावरूप परिणमित हुआ, उसे ज्ञायकभावकी परिणमनधारामें बीचमें रागका कर्तृत्व आ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जाये—ऐसा ज्ञायकके जीवनमें नहीं है; तथापि ज्ञायकको रागका कर्ता माने तो वह जीवंत वस्तुको नहीं जानता—ज्ञायकके जीवनको नहीं जानता।

ज्ञायक जीवको अपने निर्मल ज्ञानपरिणामका कर्तापना हो—ऐसा सम्बन्ध जीवित है, किन्तु ज्ञायक जीवको अजीवका कर्तृत्व हो—ऐसा सम्बन्ध जीवित नहीं है। ज्ञानीको ज्ञायकभावके साथका सम्बन्ध जीवित है और मोहके साथका सम्बन्ध मर गया है;—ऐसा ज्ञाताका जीवन है!

(१९३) कर्ताकर्मपना अन्यसे निरपेक्ष है, इसलिये जीव अकर्ता है, ज्ञायक है

आचार्यदेव कहते हैं कि जीव-कर्ता और अजीव उसका कर्म—ऐसा किसी प्रकार सिद्ध नहीं होता, क्योंकि कर्ता-कर्मकी अन्यसे निरपेक्षतया सिद्धि है; एक वस्तुके कर्ता-कर्ममें बीचमें दूसरेकी अपेक्षा नहीं है। क्रमबद्धअवस्थारूपसे उत्पन्न होनेवाला द्रव्य ही कर्ता होकर अपने पर्यायरूप कर्मको करता है; वहाँ "यह हो तो ऐसा हो"—इस प्रकार अन्य द्रव्यकी अपेक्षा नहीं है। परकी अपेक्षाके बिना अकेले स्वद्रव्यमें ही कर्ता-कर्मकी सिद्धि हो जाती है यह निश्चय है।—ऐसी निश्चय वस्तुस्थितिका ज्ञान हो गया, तब दूसरे निमित्तको जानना वह व्यवहार है। वहाँ भी, इस वस्तुका कार्य तो उस निमित्तसे निरपेक्ष ही है—निमित्तके कारण इस कार्यमें कुछ हुआ—ऐसा नहीं है। व्यवहारसे निमित्तको कर्ता कहा जाता है, किन्तु उसका अर्थ यह नहीं है कि उसने कार्यमें कुछ भी कर दिया! "व्यवहार-कर्ता"का अर्थ ही "वास्तवके अकर्ता" है। कर्ता-कर्म अन्यसे निरपेक्ष हैं, इसलिये निमित्तसे भी निरपेक्ष हैं; अन्य किसीकी अपेक्षा बिना ही पदार्थको अपनी पर्यायके साथ कर्ता-कर्मपना है। प्रत्येक द्रव्यके छहों कारक (कर्ता-कर्म-करणादि) अन्य द्रव्योंसे-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निरपेक्ष हैं, और अपने स्वद्रव्यमें ही उनकी सिद्धि होती है। कर्ता–कर्म–करण–संप्रदान–अपादान और अधिकरण,—यह छहों कारक जीवके जीवमें हैं और अजीवके अजीवमें हैं।—ऐसा होनेसे जीव और अजीवका कर्तापना किसी प्रकार सिद्ध नहीं होता, किन्तु जीव अकर्ता ही है—ज्ञायक ही है—ऐसा बारबार सिद्ध होता है। इस प्रकार आचार्यदेवने जीवका अकर्तृत्व सिद्ध किया है।

(१९४) यह "क्रमबद्धपर्यायके पारायणका सप्ताह" आज पूरा होता है...

(१९५) यह समझ ले उसे क्या करना चाहिये ? –सारे उपदेशका निचोड़ !

प्रश्नः—लेकिन यह बात समझनेके बाद क्या ?

उत्तरः—भीतर ज्ञायकमें स्थिर होना इसके सिवा और क्या करना है ? क्या तुझे बाह्यमें उछल–कूद करना है ? या परका कुछ कर देना है ? यह ज्ञायकस्वरूप समझनेसे स्वयं ज्ञायकसन्मुख होकर ज्ञातारूपसे रहा, और रागके कर्तारूप नहीं हुआ—यही इस समझका फल है। "मैं ज्ञायक हूँ" ऐसा समझा, वहां ज्ञायक क्या करेगा ? ज्ञायक तो ज्ञातादृष्टापनेका ही कार्य करता है। ज्ञायकको परका या रागका काम करनेका जो मानता है वह ज्ञायकस्वभावको समझा ही नहीं है और न क्रमबद्धपर्यायको समझा है। भाई ! ज्ञायकस्वभावोन्मुख होकर उसमें एकाग्र होनेसे सम्यग्दर्शनसे लेकर केवलज्ञान तककी क्रमबद्धपर्याय विकसित होती जाती है,—और यही सभी उपदेशका निचोड़ है। सर्वविशुद्धज्ञान–अधिकारकी इन चारों गाथाओंमें आचार्यदेवने सारा निचोड़ भर दिया है। "सर्वविशुद्धज्ञान" अर्थात् ज्ञायकमात्र शुद्ध आत्मा ! उसकी प्रतीति कर, और क्रमबद्धपर्यायको यथावत् जान।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(१९६) ज्ञायक भगवान जागृत हुआ...वह क्या करता है ?

इस ज्ञायककी प्रतीति की वहां उस ज्ञायकभूमिमें ही पर्याय उछलती है,—ज्ञायकका ही आश्रय करके निर्मलरूपसे उत्पन्न होती है, किंतु रागादिका आश्रय करके उत्पन्न नहीं होती। ज्ञायकस्वभावकी सन्मुखता हुई वहां पर्याय उछलती है—अर्थात् निर्मल-निर्मलरूपसे बढ़ती ही जाती है। अथवा द्रव्य उछलकर अपनी निर्मल क्रम-बद्धपर्यायमें कूदता है,—उस पर्यायरूपसे स्वयं उत्पन्न होता है, किन्तु कहीं बाह्यमें नहीं कूदता। पहले ज्ञायकके भान बिना मिथ्यात्वदशामें सोता था, उसके बदले अब स्वसन्मुख होकर ज्ञायकभगवान जागृत हुआ वहां वह अपनी निर्मल पर्यायमें उछलने लगा; अब बढ़ती हुई निर्मल पर्यायमें कूदते-कूदते वह केवलज्ञान प्राप्त करेगा।

(१९७) "क्रमबद्ध" के ज्ञाताको मिथ्यात्वका क्रम नहीं होता

प्रश्न:—क्रमबद्धपर्याय अज्ञानीको भी है न ?

उत्तर:—भाई, इस प्रश्नका उत्तर यह कि ज्ञायकस्वभावकी दृष्टिसे क्रमबद्धपर्यायका स्वरूप जो समझे उसे अपनेमें अज्ञान रहता ही नहीं। वह ऐसा जानता है कि ज्ञानीको, अज्ञानीको या जड़को,—सभीको क्रमबद्धपर्याय है; किन्तु उसमें:—

—ज्ञानीको अपने ज्ञायकस्वभावकी दृष्टिसे निर्मल-निर्मल क्रमबद्धपर्याय होती है,

—अज्ञानीको विपरीत दृष्टिमें मलिन क्रमबद्धपर्याय होती है, और

—जड़की क्रमबद्धपर्याय जड़रूप होती है।

—ऐसा जाननेवाले ज्ञानीको अपनेमें तो मिथ्यात्वादि मलिन पर्यायका क्रम रहता ही नहीं है, क्योंकि उसका पुरुषार्थ तो अपने ज्ञायकस्वभावकी ओर ढल गया है, इसलिये उसे तो सम्यग्दर्शनादि

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निर्मल पर्यायका क्रम प्रारम्भ हो गया है। यदि ऐसी दशा न हो तो वह वास्तवमें क्रमबद्धपर्यायका रहस्य नहीं समझा है—मात्र बातें करता है।

(१९८) "चैतन्यचमत्कारी हीरा"

यहां आचार्यभगवानने जीवको उसका ज्ञायकपना समझाया है—भाई! तेरा आत्मा ज्ञायक है...."चैतन्यचमत्कारी हीरा" है; तेरा आत्मा प्रतिसमय ज्ञाता-दृष्टापनेको क्रमबद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न होकर जाने—ऐसा ही तेरा स्वभाव है। किन्हीं पर पदार्थोंकी अवस्थाको बदलनेका स्वभाव नहीं है; इसलिये परकी कर्ताबुद्धि छोड़ और अपने ज्ञायकस्वभावसन्मुख होकर ज्ञायकरूप ही रह।

(१९९) चैतन्यराजाको ज्ञायकभावकी राजगद्दी पर बिठाकर सम्यक्त्वका तिलक होता है वहां विरोध करके परको बदलना चाहता है, उसके दिन फिरे हैं!

अहो, ऐसी परम सत्य बात समझाकर आचार्यदेव आत्माको उसके ज्ञायकस्वभावकी राजगद्दी पर बिठाते हैं....आत्मामें सम्यक्त्वका तिलक करते हैं....किन्तु विपरीतदृष्टिवाले मूढ़ जीव ऐसी सत्य बातका विरोध करते हैं; उन्हें ज्ञायकरूपसे नहीं रहना है किन्तु परके कर्तृत्वका अभिमान करके अभी संसारमें भटकना है। राजा नवघणको एकबार एक सुन्दर चारण युवती तिलक करने आई। उस समय उस सुन्दरीका रूप देखकर राजाकी दृष्टि बिगड़ी; इसलिये जब वह युवती तिलक करने लगी कि राजाने अपना मुँह दूसरी दिशामें फेर लिया। युवती दूसरी दिशामें गई तो राजाने तीसरी दिशामें मुँह कर लिया। अन्तमें उस युवतीने अपनी साससे कहा कि—माताजी, "राय तो फिरते हैं।" उसकी सास राजाका हृदय समझ गई, इसलिये उसने उत्तर दिया कि—"बेटा! राय नहीं फिरते ...रायके दिन फिरते हैं।"

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसीप्रकार यहाँ श्रीगुरु जीवको उसके ज्ञायकस्वभावके सिंहासन पर बिठाकर, तीनलोकके ज्ञानसाम्राज्यका राजतिलक करते हैं....“अरे जीव ! अंतरमें ज्ञायकभगवानकी प्रतीति करके राजगद्दी पर बैठनेका (उत्कृष्ट स्वभावमें एकाग्र होनेका) अवसर आया है; सम्यग्दर्शनरूपी राजतिलक करनेका सुअवसर आया है....अरे चैतन्य-राजा ! बैठ अपने ज्ञायक स्वभावकी गद्दी पर....यह तुझे राजतिलक होता है ।”

वहाँ जिन्हें विकारकी रुचि है—ऐसे विपरीत दृष्टिवाले मूढ़ जीव (राज नवघणकी भांति मुँह फेरकर) कहते हैं कि—अरे ! ऐसा नहीं....ऐसा नहीं....हम तो परको बदल देंगे....” यानी उन्हें ज्ञायकरूपसे नहीं रहना है किन्तु विकारीदृष्टि रखकर परको बदलना है । किंतु अरे मूढ़ जीवो ! तुम किसीकी पर्याय नहीं बदल सकते, तुम ज्ञायकसन्मुख नहीं होते और परकी ओर मुंह फेरते हो इसलिये तुम्हारे दिन फिरे हैं—तुम्हारी दृष्टि विपरीत हुई है । ज्ञायकस्वभावकी राजगद्दी पर बैठकर सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्ररूपी तिलक करनेका अवसर आया, उस समय ज्ञायकस्वभावकी प्रतीति करके स्वसन्मुख होनेके बदले अज्ञानी जीव उसे विपरीत मानते हैं और “एकांत है रे ! एकान्त है....” ऐसा कहकर विरोध करते हैं । अरे ! उनके दिन फिरे हैं; ज्ञायकोन्मुख होकर निर्मल परिणामरूप होना चाहिये उसके बदले वे मिथ्यात्वका पोषण करते हैं इसलिये उनके दिन फिरे हैं ।

(२००) “केवलीके नन्दन” बतलाते हैं—केवलज्ञानका पन्थ

भगवान ! तेरा आत्मा तो ज्ञायकस्वरूप है; वह ज्ञायक रागादि भावोंका अकर्ता है । ज्ञायकोन्मुख होनेसे जो ज्ञानभाव प्रगट हुआ तथा अतीन्द्रिय आनन्दका वेदन प्रगट हुआ उसका कर्ता–भोक्ता आत्मा है, किंतु रागादि या कर्मका कर्ता–भोक्तापना उसमें नहीं है । ऐसे चैतन्यमूर्ति ज्ञायकस्वभावका निर्णय करके ज्ञातादृष्टारूप रहना और उसमें स्थिर होना--यही करना है । ज्ञायकस्वभावकी दृष्टिसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञाता होकर अपनेमें स्थिर हुआ वहां जीव रागादिका अकर्ता ही है और कर्मका भी अकर्ता है, वह कर्मबंधनका निमित्तकर्ता भी नहीं है इसलिये उसे बंधन होता ही नहीं;—अब ज्ञायकस्वभावसन्मुख रहकर ज्ञाता–दृष्टापनेके निर्मल–निर्मल परिणामोंरूप परिणमित होनेसे उसके रागादि सर्वथा दूर हो जायेंगे और केवलज्ञान प्रगट हो जायेगा।—यही केवलज्ञानका पंथ है।

जय हो

ज्ञायकस्वभावके सन्मुख ले जाकर 'सर्वज्ञशक्ति' की....और 'क्रमबद्धपर्याय' की प्रतीति करानेवाले केवलीप्रभुके लघुनन्दन श्री कहानगुरुदेवकी

जय हो.....

ज्ञायकमूर्तिकी जय हो.....

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञानस्वभाव और ज्ञेयस्वभाव

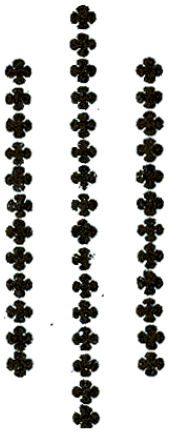

(भाग दूसरा)

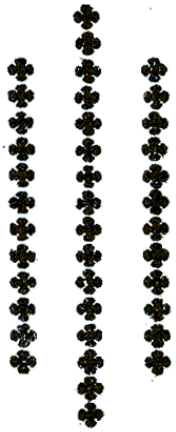

समयसार गाथा ३०८ से ३११ तथा उनकी टीका पर

पूज्य गुरुदेवके प्रवचन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मा ज्ञायक है

क्रमबद्धपर्यायका विस्तारसे स्पष्टीकरण

—: और :—

अनेकप्रकारकी विपरीत कल्पनाओंका निराकरण

आत्माके अतीन्द्रिय सुखका स्पर्श करके बाहर निकलनेवाली, भेदज्ञानकी झनझनाहट करती हुई और मुमुक्षुओंके हृदयको हिलाती हुई पूज्य गुरुदेवकी पावनकारी वाणीमें, "ज्ञायकसन्मुख ले जानेवाले क्रमबद्धपर्यायके प्रवचनों" की जो अद्भुत अमृतधारा एक सप्ताह तक प्रवाहित हुई थी वह प्रथम भागमें प्रकाशित कर चुके हैं। तत्पश्चात् मुमुक्षुओंके विशेष सद्भाग्यसे दूसरी बार आश्विन शुक्ला सप्तमीसे एकादशी तक ऐसी ही अमृतधारा पांच दिन तक पुनः प्रवाहित हुई। नित्य नवीनताको धारण करती हुई वह अमृतधारा यहां दी जाती है।

"मैं ज्ञाता हूँ"—इसप्रकार ज्ञानसन्मुख होकर परिणमन न करके, रागादिका कर्ता होकर परिणमित होता है वह जीव क्रमबद्ध-पर्यायका ज्ञाता नहीं है। क्रमबद्धपर्यायका ज्ञाता तो ज्ञायकसन्मुख रहकर रागादिको भी जानता ही है। उसे स्वभावसन्मुख परिणमनमें शुद्धपर्याय ही होती जाती है।

आत्माका ज्ञानस्वभाव है, उसे लक्षमें लेकर तू विचार कर कि—इस ओर मैं ज्ञायक हूँ, मेरा सर्वज्ञस्वभाव है,—तो सामने ज्ञेयवस्तुकी पर्याय क्रमबद्ध ही होगी या अक्रमबद्ध ? अपने ज्ञानस्वभावको सामने रखकर विचार करे तो यह क्रमबद्धपर्यायकी बात एकदम जम जाये ऐसी है; किन्तु ज्ञायकस्वभावको भूलकर विचार करे तो एक भी वस्तुका निर्णय नहीं हो सकता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

-: पहला प्रवचन :-

[आश्विन शुक्ला ७, वीर सं० २४८०]

(१) अलौकिक अधिकारकी पुनः वचनिका

यह अलौकिक अचिंत्य अधिकार है, इसलिये पुनः वचनिका होती है। यह मोक्षअधिकारकी चूलिका है। समयसारमें नवतत्त्वोंका वर्णन करनेके पश्चात् आचार्यदेवने यह "सर्वविशुद्धज्ञान" का वर्णन किया है। "सर्वविशुद्धज्ञान" अर्थात् आत्माका ज्ञायकस्वभाव; उस स्वभावमें ढलकर अभेद हुआ ज्ञान रागादिका भी अकर्ता ही है।

यहाँ सिद्ध करना है जीवका अकर्तृत्व! किन्तु उसमें क्रमबद्धपर्यायकी बात करके आचार्यदेवने अलौकिक रीतिसे अकर्तृत्व सिद्ध किया है।

(२) ज्ञायकस्वभावकी दृष्टि करानेका प्रयोजन है

"प्रथम तो जीव क्रमबद्ध ऐसे अपने परिणामोंसे उत्पन्न होता हुआ जीव ही है।" एकसाथ ज्ञान, आनन्द, श्रद्धादि अनन्त गुणोंकी क्रमबद्धपर्यायरूपसे जीव द्रव्य उत्पन्न होता है। "जीव" किसे कहा जाये उसका वर्णन पहले (गाथा २, आदिमें) करते आये हैं। वहां कहा था कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी अपनी निर्मल पर्यायमें स्थित होकर जो उत्पन्न होता है वही वास्तवमें जीव है; जो रागादि भावोंमें स्थित है वह वास्तवमें जीव नहीं है। जीव ज्ञायकस्वभाव है, वह ज्ञायकस्वभाव वास्तवमें रागरूपसे उत्पन्न नहीं होता—इसलिये ज्ञायकसन्मुख हुआ जीव रागका कर्ता नहीं होता; ज्ञायककी दृष्टिमें उसे रागकी अधिकता नहीं होती, इसलिये वह रागादिका अकर्ता ही है। ऐसा ज्ञायकस्वभावका अकर्तृत्व बतलाकर यहाँ उस ज्ञायकस्वभाव-की दृष्टि करानेका प्रयोजन है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(३) ज्ञायकस्वभावी जीव रागका भी अकर्ता है

आत्मा ज्ञायक है; अनादिसे उसके ज्ञायकभावका स्व-पर-प्रकाशक स्वभाव है; ज्ञान तो स्व-परको जाननेका ही काम करता है; किन्तु ऐसे ज्ञायकभावकी प्रतीति न करके अज्ञानी जीव रागके कर्तारूपसे परिणमित होता है अर्थात् मिथ्यात्वरूपसे उत्पन्न होता है। यहाँ आचार्यदेव उस अज्ञानीको उसका ज्ञायकस्वभाव समझाते हैं—आत्मा तो स्व-परप्रकाशक ज्ञायकस्वभावी है, उसका ज्ञायकभाव उत्पन्न होकर रागको उत्पन्न करे या मिथ्यात्वादि कर्मोंके बन्धमें निमित्त हो—ऐसा नहीं है; और उन कर्मोंको निमित्त बनाकर उनके आश्रयसे स्वयं विकाररूप उत्पन्न हो—ऐसा भी उसका स्वभाव नहीं है; किन्तु ज्ञायकके अवलम्बनसे क्रमबद्ध ज्ञायकभावरूप ही उत्पन्न हो -ऐसा आत्माका स्वभाव है। स्वयं निमित्तरूप होकर दूसरेको न उत्पन्न करता हुआ, तथा दूसरेके निमित्तसे स्वयं न उत्पन्न होता हुआ ऐसा ज्ञायकस्वभाव वह जीव है। स्वसन्मुख रहकर स्वयं स्व-परप्रकाशक ज्ञानरूप क्रमबद्ध उत्पन्न होता हुआ रागको भी ज्ञेय बनाता है। अज्ञानी रागको ज्ञेय न बनाकर, उस रागके साथ ही ज्ञानकी एकता मानकर मिथ्यादृष्टि होता है, और ज्ञानी तो ज्ञानस्वभावमें ही ज्ञानकी एकता रखकर रागको पृथक्रूपसे ज्ञेय बनाता है, इसलिये ज्ञानी तो ज्ञायक ही है, वह रागका भी कर्ता नहीं है।

(४) ज्ञानीकी बात अज्ञानीको समझाते हैं

—यह बात किसे समझाते हैं ?

यह बात है ज्ञानीकी, किन्तु समझाते हैं अज्ञानीको। अन्तरमें जिसे ज्ञानस्वभाव और रागकी भिन्नताका भान नहीं है ऐसे अज्ञानीको समझाते हैं कि—तू ज्ञायक है; ज्ञायकभाव स्व-परका प्रकाशक है किन्तु रागादिका उत्पादक नहीं है। भाई ! ज्ञायकभाव कर्ता होकर ज्ञानको उत्पन्न करेगा या रागको ? ज्ञायकभाव तो ज्ञान-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

को ही उत्पन्न करता है। इसलिये, ज्ञायकभाव रागका कर्ता नहीं है—ऐसा तू समझ और ज्ञायकसन्मुख हो।

(५) किस दृष्टिसे क्रमबद्धपर्यायका निर्णय होता है ?

यहां क्रमबद्धपर्याय बतलाकर ज्ञायकस्वभाव पर जोर देना है; क्रमबद्धके वर्णनमें ज्ञायककी ही मुख्यता है, रागादिकी मुख्यता नहीं है। जीव अपनी क्रमबद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न होता है, उसमें ज्ञान, श्रद्धा आदि समस्त गुणोंका परिणमन साथ ही है। उस परिणामरूपसे कौन उत्पन्न होता है ?—जीव उत्पन्न होता है। वह जीव कैसा ?—ज्ञायकस्वभावी। ऐसा निर्णय करनेवाला अपने ज्ञायकस्वभावके अवलम्बनसे ज्ञानभावरूप ही (श्रद्धा, ज्ञान, आनन्दादि गुणोंके निर्मल अंशरूप ही) उत्पन्न होता है; रागरूप उत्पन्न नहीं होता। श्रद्धा, ज्ञान, आनन्दादिकी क्रमबद्धपर्यायरूपसे "राग" उत्पन्न नहीं होता किन्तु ज्ञायकस्वभावी "जीव" उत्पन्न होता है। इसलिये ज्ञायकस्वभाव पर जिसकी दृष्टि है उसको क्रमबद्धपर्यायका सच्चा निर्णय है, और उसकी क्रमबद्धपर्यायें होती जाती हैं।

(६) "स्वसमय" अर्थात् रागादिका अकर्ता

समयसारकी पहली गाथा "वंदित्तु सव्व सिद्धे ...." में सर्व सिद्धभगवन्तोंको नमस्कार करके, दूसरी गाथामें जीवके स्वरूपका वर्णन करते हुए आचार्यदेवने कहा है कि:—

"जीवो चरित्तदंसणणाणट्ठिउ तं हि ससमयं जाण।
पुग्गलकम्मपदेसट्ठियं च तं जाण परसमयं ।।"

अर्थात् स्वसन्मुख होकर अपने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप निर्मल पर्यायमें जो आत्मा स्थित है उसे स्वसमय जान। वह तो जीवका स्वरूप है, किन्तु निमित्तमें और रागमें एकत्वबुद्धि करके उसीमें जो स्थित है वह परसमय है; वह वास्तवमें जीवका स्वरूप नहीं है। वहां जिसे "स्वसमय" कहा उसीको यहाँ "अकर्ता" कहकर वर्णन किया है। ज्ञायकस्वभावसन्मुख होकर अपने सम्यक्श्रद्धा-ज्ञान और

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वीतरागभावकी पर्यायरूपसे जो उत्पन्न हुआ वह "स्वसमय" है और वह रागादिका "अकर्ता" है।

(७) "निमित्तका प्रभाव" माननेवाले बाह्यदृष्टिमें अटके हैं

आजकल तो इस मूलभूत अन्तरकी बातको भूलकर अनेक लोग निमित्त और व्यवहारके झगड़ेमें फँसे हैं। निमित्तोंका आत्मा पर प्रभाव पड़ता है—ऐसा मानकर जो निमित्ताधीन दृष्टिमें ही अटक गये हैं उन्हें तो ज्ञायकस्वभावोन्मुख होनेका अवकाश नहीं है। निमित्तका प्रभाव पड़ता है—यानी कुम्हारका घड़े पर, कर्मका आत्मा पर प्रभाव पड़ता है—ऐसा जो मानते हैं उन्हें तो अभी मिथ्यात्वरूपी मदिराका प्रभाव लेकर मिथ्यादृष्टि ही रहना है। ज्ञायकस्वभावोन्मुख होनेसे मेरी पर्यायमें ज्ञायकभावका प्रभाव पड़ता है—ऐसा न मानकर, निमित्तका प्रभाव मानता है, तो हे भाई! निमित्तोन्मुखताको छोड़कर तू स्वभावकी ओर कब ढलेगा? निमित्तकी ओर ही न देखकर ज्ञायकस्वभावोन्मुख हो तो कर्मका निमित्तपना नहीं रहता। अज्ञानीको उसके अपने गुणोंकी विपरीततामें कर्मका निमित्त भले हो, किन्तु वह तो परज्ञेयमें जाता है; यहां तो ज्ञानीकी बात है कि—ज्ञानी स्वयं ज्ञायकको ओर ढला है इसलिये वह ज्ञातारूप ही उत्पन्न हुआ है—रागरूप, आस्रव या बन्धरूप वह उत्पन्न नहीं होता, इसलिये उसे कर्मका निमित्तपना भी नहीं है। इसप्रकार, क्रमबद्धपर्यायकी प्रतीति करके ज्ञायकोन्मुख जीव, क्रमबद्धपर्यायमें रागरूपसे उत्पन्न नहीं होता किन्तु ज्ञानरूपसे ही उत्पन्न होता है और यही क्रमबद्धकी यथार्थ प्रतीतिका फल है।

(८) ज्ञाताके क्रममें ज्ञानकी वृद्धि और रागकी हानि

प्रश्न:—यदि पर्याय क्रमबद्ध है—हीनाधिक नहीं होती, तो फिर अल्प ज्ञानको बढ़ाया नहीं जा सकता और रागको कम नहीं किया जा सकता?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उत्तरः—अरे भाई! अभी तू यह बात नहीं समझा; तेरा झुकाव ज्ञायककी ओर नहीं हुआ। भाई, ज्ञानको बढ़ाने और रागको कम करनेका उपाय कहीं बाह्यमें है या अंतरंग ज्ञानस्वभावके अवलम्बनमें? "मैं ज्ञायक हूँ और मेरे ज्ञायककी पर्याय तो क्रमबद्ध स्व-परप्रकाशक ही होती है"—ऐसा निर्णय करके ज्ञायकका अवलम्बन लिया है, वहां पर्याय-पर्यायमें ज्ञानकी विशुद्धता बढ़ती ही जाती है और राग कम होता जाता है। मैं ज्ञानको बढ़ाऊँ और रागको कम करूँ—इस प्रकार पर्यायकी ओर ही लक्ष रखे, किन्तु अन्तरमें ज्ञायकस्वभावका अवलम्बन न ले तो उसे ज्ञान बढ़ाने और राग कम करनेके सच्चे उपायकी खबर नहीं है। साधकको जो राग होता है वह तो स्व-परप्रकाशक ज्ञानके ज्ञेयरूप है, किन्तु ज्ञानके कार्यरूप नहीं है, इसलिये ज्ञानी उसका ज्ञाता ही है, किन्तु वह रागका कर्ता या उसे बदलनेवाला नहीं है। रागके समय भी ज्ञानी तो उस रागके ज्ञानरूप ही उत्पन्न हुआ है। यदि रागको इधर-उधर बदलनेकी बुद्धि करे तो रागका कर्तृत्व हो जाता है इसलिये ज्ञातापनेका क्रम न रहकर मिथ्यात्व हो जाता है। सामने जिस समय रागका काल है उसी समय ज्ञानीको अपनेमें तो ज्ञातापनेका ही काल है, ज्ञायकोन्मुख होकर वह तो ज्ञानरूप ही उत्पन्न होता है—रागरूप उत्पन्न नहीं होता।

(६) अन्तर्मुख ज्ञानके साथ आनन्द, श्रद्धा आदिका परिणमन और वही धर्म

जीवको ऐसा स्व-परप्रकाशक ज्ञान विकसित होने पर वह अपने आनन्दादि गुणोंकी निर्मलताको भी जानता है। ज्ञानके साथ आनन्द, श्रद्धादि अन्य अनंत गुण भी उसी समय अपनी-अपनी क्रमबद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न होते हैं और ज्ञान उन्हें जानता है। ज्ञानमें ऐसी ही स्व-परप्रकाशकपनेकी शक्ति विकसित हुई है, और उससमय अन्यमें नहीं किन्तु उन गुणोंमें ही ऐसा क्रम है। यहां ज्ञानमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वसन्मुख होनेसे निर्मल स्व-परप्रकाशकशक्ति विकसित हुई और उसी समय श्रद्धा, आनन्दादि दूसरे गुणोंमें निर्मल परिणमन न हो—ऐसा कभी नहीं होता। शुद्ध द्रव्यकी दृष्टिमें द्रव्यके ज्ञान-आनन्दादि गुणोंमें एकसाथ निर्मल परिणमनका प्रवाह प्रारम्भ हो जाता है। सम्यक्श्रद्धाके साथ सम्यक्चारित्र, आनन्दादिका अंश भी साथ ही है। देखो, इसका नाम धर्म है। अन्तरमें ऐसा परिणमन हो वह धर्म है, इसके सिवा बाहरके किसी स्थानमें या शरीरादिकी क्रियामें धर्म नहीं है; पापके या पुण्यके भावमें धर्म नहीं है। अकेले शास्त्रोंके शब्दोंको जान लेनेमें भी धर्म नहीं है। अन्तर्मुख होकर ज्ञायकस्वभावका अवलम्बन लेनेसे, श्रद्धा-ज्ञानादि गुणोंका निर्मल परिणमन प्रारम्भ हो जाये उसका नाम धर्म है। इसप्रकार ज्ञायकमूर्ति आत्माके अवलम्बनमें धर्म है। ज्ञायकका अवलंबन लेकर ज्ञानभावरूपसे उत्पन्न हुआ वही ज्ञानीका धर्म है।

(१०) जैसा वस्तुस्वरूप वैसा ही ज्ञान, और वैसी ही वाणी

"जीवस्साजीवस्स दु जे परिणामा दु देसिया सुत्ते।
त जीवमजीवं वा तेहिमणण्णं वियाणाहि" ॥३०९॥

अर्थात् सूत्रमें जीव या अजीवके जो परिणाम दर्शाये हैं, उनके साथ उस जीव या अजीवको अनन्य-एकमेक जान। प्रत्येक द्रव्यकी अपने परिणामोंके साथ अभेदता है, किन्तु परसे भिन्नता है....

—ऐसा सर्वज्ञदेव और सन्तोंने जाना है;
—सर्वज्ञके आगममें—सूत्रमें भी ऐसा कहा है;
—और वस्तुस्वरूप भी ऐसा ही है;

इसप्रकार ज्ञान, शब्द और अर्थ—इन तीनोंकी संधि है। प्रतिसमय क्रमबद्ध उत्पन्न होनेवाले अपने परिणामोंके साथ द्रव्य तन्मय है—ऐसा वस्तुका स्वरूप है; ऐसा ही सर्वज्ञ और सन्तोंका ज्ञान जानता है और ऐसा ही सूत्र बतलाता है। इससे विपरीत बतलायें, अर्थात् एक द्रव्यके परिणामका कर्ता दूसरा द्रव्य है ऐसा बतलायें, तो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वे देव, गुरु या शास्त्र सच्चे नहीं हैं और वस्तुका स्वरूप भी ऐसा नहीं है।

(११) ज्ञायकस्वभावकी दृष्टि ही मूल तात्पर्य

यहाँ क्रमबद्धपर्यायमें द्रव्यकी अनन्यता बतलाकर द्रव्यदृष्टि करानेका ही तात्पर्य है।

(१) "णवि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणओ दु जो भावो।
एवं भणंति सुद्धं णाओ जो सो उ सो चेव ॥"

—ऐसा कहकर वहां छठवीं गाथामें पर्यायके भेदोंका अवलम्बन छुड़ाकर एकरूप ज्ञायकभावकी दृष्टि कराई है।

तत्पश्चात्—

(२) "ववहारोऽभूयत्थो भूयत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूयत्थमस्सिदो खलु सम्माइट्ठी हवइ जीवो॥"

—भूतार्थस्वभावके आश्रयसे ही सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा कहकर वहाँ ग्यारहवीं गाथामें भी एकरूप ज्ञायकस्वभावका ही अनुभव कराया है।

(३) और, संवर अधिकारमें "उवओगे उवओगो....उपयोग-में उपयोग है"—ऐसा कहकर, संवरकी जो निर्मल दशा प्रगट हुई उसके साथ आत्माकी अभेदता बतलाई, अर्थात् ज्ञायकस्वभावमें अभेदतासे ही संवर दशा प्रगट होती है—ऐसा बतलाया है।

इसप्रकार आचार्य भगवान पहलेसे ही ज्ञायकस्वभावके अवलम्बनकी बात कहते हैं। यहाँ भी क्रमबद्धपर्यायमें द्रव्यकी अनन्यता बतलाकर, दूसरे ढंगसे ज्ञायकस्वभावकी ही दृष्टि कराई है। "दवियं जं उप्पज्जइ गुणेहिं तं तेहिं जाणसु अणण्णं"—ऐसा कहकर, पर्याय-पर्यायमें (-प्रत्येक समयकी पर्यायमें) अभेदरूपसे तेरा ज्ञायकभाव ही परिणमित हो रहा है—ऐसा बतलाया है। (इस संबंधी विस्तारके लिये प्रथम भागमें प्रवचन आठवाँ देखें।)

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(१२) अन्तरमें परिणमित करने जैसी मुख्य बात

देखो, ऐसा "ज्ञा...य....क....भा....व" जीवका सिर है;—वह मुख्य बात है इसलिये उसे सिर कहा है। यह बात मुख्य प्रयोजनभूत होनेसे बारम्बार रटने जैसी है, अन्तरमें निर्णय करके परिणमित करने जैसी है।

(१३) जीवतत्त्व

सात तत्त्वोंमेंसे जीवतत्त्व कैसा है उसकी यह बात है। जीवतत्त्वका ज्ञायकस्वभाव है; उसके सन्मुख होकर ज्ञायकभावरूपसे उत्पन्न हुआ और उस परिणाममें अभेद हुआ वही वास्तवमें जीव है; रागमें अभेद होकर उत्पन्न हुआ वह वास्तवमें जीवतत्त्व नहीं है, वह तो आस्रवतत्त्व है। ज्ञानीके परिणमनमें रागकी मुख्यता नहीं है, उनके तो एक ज्ञायककी ही मुख्यता है, रागके वे ज्ञाता हैं। ज्ञायकोन्मुख होकर उसे "निश्चयज्ञेय" बनाया वहाँ अस्थिरताका अल्पराग "व्यवहारज्ञेय" हो जाता है।

(१४) जीवनका सच्चा कर्तव्य

जीवनमें यह मुख्य करने जैसा है,—इस समझसे ही जीवनकी सफलता है....अरे! जीवनमें ऐसी अपूर्व समझ बिना जीवनकी घड़ियां व्यर्थ जाती हैं—ऐसी जिसे चिन्ता भी न हो—समझनेकी दरकार भी न हो, वह जीव समझनेका प्रयत्न कहांसे करेगा? सच्ची समझका मूल्य भासित होना चाहिए कि जीवनमें सत्समागमसे सच्ची समझ करना ही एक करनेयोग्य सच्चा कार्य है। इस समझके बिना "जगतमें बाह्य कार्य मैंने किये"—ऐसा मानकर जो व्यर्थ ही परका अभिमान करता है, वह तो साँडकी भांति घूरे तितर-बितर करता है (जैसे कूडे-कचरेके ढेरको सांड ऊँचा-नीचा करता है, वैसे व्यर्थ अहंकारमें समय गँवाता है) उसमें आत्माका किंचित् हित नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(१५) प्रभु ! अपने ज्ञायकको लक्षमें ले

भगवान ! तेरा आत्मा अनादि-अनन्त चैतन्यपिण्ड विद्यमान है, उसे तो एक बार लक्षमें ले ! अनादिसे बाहर देखा है, किन्तु भीतर मैं कौन हूँ—यह कभी नहीं देखा.....सिद्धपरमात्मा जैसा अपना आत्मा है उसे कभी लक्षमें नहीं लिया। तेरा आत्मा ज्ञायक है। प्रभु ! ज्ञायक उत्पन्न होकर ज्ञायकभावकी रचना करेगा या राग-की ? सुवर्ण उत्पन्न होकर सुवर्ण अवस्थाकी रचना करेगा, कहीं लोहेकी दशा नहीं रचेगा। उसी प्रकार आत्माका ज्ञायकस्वभाव है वह तो ज्ञायकभावका ही रचयिता है—ज्ञायकके अवलम्बनसे ज्ञायकभावकी ही रचना (-उत्पत्ति) होती है, किन्तु अज्ञानी अपने ज्ञायकस्वभावको भूलकर रागकी रचना करता है—रागादिका कर्ता बनता है। यहां ज्ञायकस्वभाव बतलाकर आचार्यदेव उस रागका कर्तृत्व छुड़ाते हैं।

(१६) निर्मल पर्यायको ज्ञायकस्वभावका ही अवलम्बन

ज्ञानी अपने ज्ञायकस्वभावमें एकाग्रतासे ज्ञायकभावरूप ही क्रमबद्ध उत्पन्न होता है; अपने ज्ञायकपरिणामके साथ अभेद होकर उत्पन्न होता हुआ जीव ही है, अजीव नहीं है। वह किसी अन्यके अवलम्बन द्वारा, निमित्तके कारण, रागके कारण या पूर्व पर्यायके कारण उत्पन्न नहीं होता, तथा भविष्यकी पर्यायमें केवलज्ञान होना है उसके कारण इस समय सम्यग्दर्शनादि पर्याय होती है—ऐसा भी नहीं है; वर्तमानमें जीव स्वयं ज्ञायकस्वभावोन्मुख होकर ज्ञायक-भावरूप (सम्यग्दर्शनादिरूप) उत्पन्न हुआ है, स्वोन्मुख हुई वर्तमान पर्यायका क्रम ही ऐसा निर्मल है। इसप्रकार अन्तरोन्मुख होकर ज्ञायकस्वभावको पकड़ा वहाँ निर्मल पर्याय उत्पन्न हुई; वर्तमान स्वभावका अवलम्बन ही उसका कारण है, इसके सिवा पूर्व-पश्चात्का कोई कारण नहीं है तथा निमित्त या व्यवहारका अवलम्बन नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(१७) "पुरुष प्रमाणे वचन प्रमाण" यह कब लागू होता है ?

प्रश्नः—ऐसा सूक्ष्म समझनेमें बड़ी मेहनत होती है इसकी अपेक्षा "पुरुषकी प्रमाणतासे वचन प्रमाण"—ऐसी धारणा करके यह बात मान लें तो ?

उत्तरः—भाई, यह तो अकेला पर-प्रकाशक हुआ, स्व-प्रकाशकके बिना पर-प्रकाशकपना कहांसे सच्चा होगा ? पुरुष प्रमाण है या नहीं, उसका निर्णय ज्ञानके बिना कौन करेगा ? ज्ञानका निर्णय करके सम्यग्ज्ञान हुए बिना पुरुषकी प्रमाणताकी परीक्षा कौन करेगा ? आप्तमीमांसा (-देवागमस्तोत्र) में स्वामी समन्तभद्राचार्य कहते हैं कि—हे नाथ ! हम तो परीक्षा द्वारा आपकी सर्वज्ञताका निर्णय करके आपको मानते हैं। प्रयोजनरूप मूलभूत तत्त्वोंकी तो परीक्षा करके अपने ज्ञानमें निर्णय करे, और फिर दूसरे अप्रयोजनरूप तत्त्वोंमें न पहुँच सके तो उसे "पुरुष प्रमाणे वचन प्रमाण" करके मान लेना ठीक है; किन्तु एकान्त "पुरुष प्रमाणे वचन प्रमाण" कहकर रुक जाये और अपने ज्ञानमें मूलभूत तत्त्वोंके निर्णयका भी उद्यम न करे उसे सम्यग्ज्ञान नहीं होता। पुरुषकी प्रमाणताका (सर्वज्ञका) निर्णय करने जाये तो उसमें भी ज्ञानस्वभावका ही निर्णय करना आता है। पुरुषकी प्रमाणता तो उसमें है, किन्तु वह किस प्रकार है—यह तेरे ज्ञानमें तो भासित नहीं हुआ है; पुरुषकी प्रमाणताका निर्णय तेरे ज्ञानमें तो आया नहीं है, इसलिये "पुरुष प्रमाणे वचन प्रमाण"—यह बात तेरे लिये लागू नहीं होती।

(१८) क्रमबद्धकी या केवलीकी बात कौन कह सकता है ?

इसीप्रकार अकेले परकी या रागकी ओट लेकर कोई अज्ञानी ऐसा कहे कि "विकार क्रमबद्धपर्यायमें होना था इसलिये हुआ, अथवा केवलीभगवानने वैसा देखा था इसलिये हुआ"—तो वह स्वच्छन्दी है; भाई रे ! अपने ज्ञानस्वभावकी प्रतीतिके बिना तू क्रमबद्धपर्यायकी या केवलीकी बात कहांसे लाया ? तू अकेले रागकी ओट लेकर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बात करता है किन्तु ज्ञानस्वभावकी प्रतीति नहीं करता, तो तूने वास्तवमें केवलीभगवानको या क्रमबद्धपर्यायको माना ही नहीं है। केवलीभगवानको या क्रमबद्धपर्यायको यथार्थरूपसे पहिचाननेवाले जीवकी दृष्टि तो अन्तरमें अपने ज्ञायकस्वभावकी ओर ढली होती है; उसके तो ज्ञानकी ही अधिकता होती है, रागकी अधिकता उसके होती ही नहीं। ज्ञानस्वभावकी ओर ढले बिना धर्ममें एक डग भी नहीं चल सकता।

(१९) ज्ञानके निर्णय बिना सब मिथ्या है। ज्ञायकभावरूपी तलवारसे सम्यक्त्वीने संसारको छेद डाला है

प्रश्नः—तो क्या अभी तक हमारा किया हुआ सब झूठा है?

उत्तरः—हा, भाई! सब मिथ्या है। अन्तरमें "मैं ज्ञान हूँ" ऐसा लक्ष और प्रतीति न करे तबतक शास्त्रोंकी पढ़ाई या त्यागादि सब झूठे हैं, उनसे संसारका नाश नहीं होता। आत्माका ज्ञान-स्वभाव सर्वज्ञता और पदार्थोंकी क्रमबद्धपर्याय—इन सबका निर्णय करके जहां ज्ञायककी ओर ढला, वहां ज्ञायकभावरूपी ऐसी तलवार हाथमें ली है जो एक क्षणमें संसारकी जड़को छेद डाले!

(२०) सम्यग्दृष्टि मुक्त; मिथ्यादृष्टिको ही संसार

अब अगली गाथाओंमें कहेंगे कि—ज्ञायकस्वभावकी दृष्टिमें सम्यक्त्वीको संसार ही नहीं है; जिसकी दृष्टि कर्म पर है ऐसे मिथ्यादृष्टिको ही संसार है। सम्यक्त्वी तो ज्ञानानन्दस्वभावकी दृष्टिसे अपने शुद्ध स्वभावमें निश्चल होनेसे वास्तवमें मुक्त ही है;—"शुद्धस्वभावनियतः स हि मुक्त एव।" (देखो, कलश १९८)

ज्ञायकस्वभावकी दृष्टिवाले ज्ञानीका अकर्तृत्व सिद्ध करके, अब (३१२-३१३) दो गाथाओंमें आचार्यदेव कहेंगे कि जिसे ज्ञायकस्वभावकी दृष्टि नहीं है ऐसे मिथ्यादृष्टिको ही निमित्त-नैमित्तिकभावसे संसार है।

कर्मके निमित्तका जीव पर प्रभाव पड़ता है, अथवा जैसा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निमित्त आये वैसा कार्य होता है, कर्मके उदयानुसार विकार होता है—ऐसी अज्ञानीकी मान्यता तो दूर रही, किन्तु जीव स्वयं मिथ्यात्वादि करे तब कर्मको निमित्त कहा जाता है, और जीव निमित्त होकर मिथ्यात्वादि कर्मोंका बन्ध करता है—यह बात भी मिथ्यादृष्टिको लागू होती है। कर्मका निमित्तकर्ता मिथ्यादृष्टि है, ज्ञानी तो अकर्ता ही है; ज्ञानीको कर्मके साथ निमित्त–नैमित्तिकपना नहीं है, उसे ज्ञायकके साथ संधि हुई है और कर्मके साथकी संधि टूट गई है।

(२१) सम्यग्दर्शनके विषयरूप जीवतत्त्व कैसा है ?

ज्ञानी अपने ज्ञायकस्वभावके अवलम्बनसे क्रमबद्ध ज्ञाता–भावरूप ही उत्पन्न होता है, किन्तु रागके कर्तारूपसे उत्पन्न नहीं होता। "रागका कर्ता जीव" सम्यग्दर्शनका विषय नहीं है, किन्तु "ज्ञायकभावरूपसे उत्पन्न होनेवाला जीव" सम्यग्दर्शनका विषय है। ऐसे जीवतत्त्वकी प्रतीति करना सो सम्यग्दर्शन है।

(१) "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।

२) तत्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्। और

(३) जीवाजीवास्रवबंधसंवर निर्जरामोक्षास्तत्वम्।

—ऐसा मोक्षशास्त्रमें उमास्वामी महाराजने कहा है; वहां ऐसे ज्ञायकभावरूपसे उत्पन्न होनेवाले जीवद्रव्यको पहिचाने तो जीवतत्त्वकी सच्ची प्रतीति है। ऐसे जीवतत्त्वकी प्रतीतिके बिना तत्त्वार्थश्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन या मोक्षमार्गका प्रारम्भ नहीं होता।

(२२) निमित्त अकिंचित्कर है, तथापि सत्में सत् निमित्त ही होता है

अभी तो सात तत्त्वोंमेंसे जीवतत्त्व कैसा है उसकी यह बात है। ऐसे जीवको पहिचाने तो सच्ची श्रद्धा होती है और पश्चात् ही श्रावकत्व या मुनित्व होता है। वस्तुका स्वरूप तो ऐसा है; उसमें दूसरा कुछ नहीं हो सकता। स्वयं अन्तरमें पात्र होकर समझे तो पकड़में आ सकता है; दूसरा कोई दे जाये या समझा दे—ऐसा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं है। यदि कोई दूसरा दे दे, तो कोई तीसरा आकर लूट भी ले! किन्तु ऐसा नहीं होता। ऐसा होने पर भी—अर्थात् निमित्त अकिंचित्कर है फिर भी, सम्यग्ज्ञान प्राप्त करनेवालेको निमित्त कैसा होता है वह जानना चाहिये। आत्माका अपूर्व ज्ञान प्राप्त करनेवाले जीवको सामने निमित्तरूपसे भी ज्ञानी ही होते हैं। वहां सम्यग्ज्ञानरूप परिणमित सामनेवाले ज्ञानीका आत्मा "अन्तरंग निमित्त" है और उन ज्ञानीकी वाणी बाह्यनिमित्त है। इस प्रकार सम्यग्ज्ञान प्राप्त करनेमें ज्ञानी ही निमित्त होते हैं, अज्ञानी निमित्त नहीं होते; और अकेली जड़ वाणी भी निमित्त नहीं होती।—यह बात नियमसारकी ५३ वीं गाथाके व्याख्यानमें अत्यन्त स्पष्टरूपसे कही जा चुकी है। (देखो, आत्मधर्म हिन्दी वर्ष ७ वां, अङ्क–९ वां) सत् समझनेमें कैसा निमित्त होता है वह न पहचाने तो अज्ञानी–मूढ़ है; और निमित्त कुछ कर दे ऐसा माने तो वह भी मूढ़–मिथ्यादृष्टि है।

(२३) आत्महितके लिए भेदज्ञानकी सीधी–सादी बात

देखो, यह तो सीधी–सादी बात है कि प्रत्येक द्रव्य स्वयं ही अपनी क्रमबद्धपर्यायरूपसे परिणमित होता है, तो दूसरा उसमें क्या करे? तदुपरान्त यहां तो समझना है कि भगवान आत्मा ज्ञायक है, वह क्रमबद्ध अपने ज्ञायकभावरूपसे उत्पन्न होता हुआ ज्ञायकभावकी ही रचना करता है; रागरूपसे उत्पन्न हो या रागकी रचना करे—ऐसा जीव तत्त्वका सच्चा स्वरूप नहीं है, वह तो आस्रव और बंधतत्त्वमें जाता है। अन्तरमें राग और जीवका भी भेदज्ञान करनेकी यह बात है। निमित्त कुछ करता है—ऐसा माननेवालेको तो अभी बाहरका भेदज्ञान भी नहीं है—परसे भिन्नताका ज्ञान भी नहीं है; तब फिर "ज्ञायकभाव रागका कर्ता नहीं है"—ऐसा अन्तरका (ज्ञान और रागके बीचका) भेदज्ञान तो उसे कहांसे होगा? किन्तु जिसे धर्म करना हो—आत्माका कुछ भी हित करना हो उसे दूसरा सब एक ओर रखकर यह बात समझना पड़ेगी। भाई! तेरे चैतन्यका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रकाशक स्वभाव है; वह नई-नई क्रमबद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न होता हुआ, ज्ञायकस्वभावके भानपूर्वक रागादिको या निमित्तोंको भी ज्ञातारूपसे जानता ही है; ज्ञातारूपसें उत्पन्न होता है किन्तु रागके कर्तारूपसे उत्पन्न नहीं होता।

जीव रागके कर्तारूपसे उत्पन्न नहीं होता, तो क्या वह कूटस्थ है?—नहीं; वह अपने ज्ञातारूपसे उत्पन्न होता है इसलिये कूटस्थ नहीं है। यहाँ तो कहा है कि "जीव उत्पन्न होता है"—अर्थात् द्रव्य स्वयं परिणमित होता हुआ अपनी पर्यायको द्रवित करता है, द्रव्य स्वयं अपनी क्रमबद्धपर्यायरूपसे परिणमित होता है; वह कूटस्थ नहीं है, तथा दूसरा उसका परिणमन करानेवाला नहीं है।

(२४) हे ज्ञायक चिदानन्दप्रभु! अपने ज्ञायकतत्त्वको लक्षमें ले!

सर्वज्ञदेव, कुन्दकुन्दाचार्य—अमृतचन्द्राचार्य आदि संत और शास्त्र ऐसा कहते हैं कि ज्ञायकस्वरूपी जीव रागादिका अकर्ता है। अरे भाई! तू ऐसे जीवतत्त्वको मानता है या नहीं?—या फिर निमित्तको और रागको ही मानता है? निमित्तको और रागको पृथक् रखकर ज्ञायकतत्त्वको लक्षमें ले, निमित्तको उत्पन्न करनेवाला या रागरूप उत्पन्न होनेवाला मैं नहीं हूँ, मैं तो ज्ञायकरूपसे ही उत्पन्न होता हूँ इसलिये मैं ज्ञायक ही हूँ—ऐसा अनुभव कर, तो तुझे सात तत्त्वोंमेंसे जीवतत्त्वकी सच्ची प्रतीति हुई कहलाये, और तभी तू देव-गुरु-शास्त्रको वास्तवमें माना कहा जाये।

हे ज्ञायक चिदानन्दप्रभु! स्व-सन्मुख होकर प्रतिसमय ज्ञाताभावरूपसे उत्पन्न होना वह तेरा स्वरूप है; ऐसा अपने ज्ञायक-तत्त्वको लक्षमें ले।

(२५) अरे! एकान्तकी बात एक ओर रखकर यह समझ!

यह बात सुनते ही, "अरे! एकान्त हो जाता है.....रे..... एकान्त हो जाता है!"—ऐसा कई अज्ञानी पुकारते हैं। किन्तु अरे तेरी वह बात एक ओर रखकर यह समझ! यह समझनेसे, राग और

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञान एकमेक है ऐसा तेरा अनादिकालीन मिथ्याएकांत दूर हो जायेगा और ज्ञायकके साथ ज्ञानकी एकतारूप सम्यक्एकांत होगा; उस ज्ञानके साथ सम्यक्श्रद्धा, आनन्द पुरुषार्थ आदि अनन्त गुणोंका परिणमन भी साथ ही है, इसलिये अनेकांत है।

(२६) सम्यक्त्वीके राग है या नहीं ?

अंतर्स्वभावके अवलम्बनसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान हुए उसके साथ चारित्रका अंश भी विकसित हुआ है—स्वरूपाचरण-चारित्र प्रगट हो गया है। किसीको ऐसी शंका हो कि "सम्यग्दर्शन होने पर उसके साथ पूर्ण चारित्र क्यों न हुआ ?"—तो उसे ज्ञान, चारित्र आदिके भिन्न-भिन्न क्रमबद्धपरिणमनकी खबर नहीं है। क्रमबद्धपरिणमनमें कहीं ऐसा नियम नहीं है कि सम्यक्श्रद्धा-ज्ञान होने पर उसी क्षण पूर्ण चारित्र भी प्रगट हो ही जाये। अरे, क्षायिक-सम्यग्दर्शन होनेके पश्चात् लाखों-करोड़ों वर्षों तक श्रावकत्व या मुनित्व (पांचवां या छठवां-सातवां गुणस्थान) नहीं आता, और किसीको सम्यग्दर्शन होने पर अन्तर्मुहूर्तमें ही मुनिदशा—क्षपकश्रेणी और केवलज्ञान हो जाता है। तथापि, सम्यक्त्वी चौथे गुणस्थानमें भी रागके ज्ञाता ही हैं; यहां अपने स्व-परप्रकाशक ज्ञानका वैसा ही सामर्थ्य है;—इस प्रकार ज्ञानसामर्थ्यकी प्रतीतिके बलसे ज्ञानी उस-उस समयके रागको भी ज्ञेय बना देते हैं। ज्ञायकस्वभावकी अधिकता उनकी दृष्टिमेंसे एक क्षण भी नहीं हटती; ज्ञायककी दृष्टिमें वे ज्ञाताभावरूप ही उत्पन्न होते हैं; रागमें तन्मयरूपसे उत्पन्न नहीं होते।—इस प्रकार क्रमबद्धपर्यायमें ज्ञानीको रागकी प्रधानता नहीं है—ज्ञातृत्वकी ही प्रधानता है। रागके समय, "मैं इस रागरूप उत्पन्न होता हूँ"—ऐसी जिसकी दृष्टि है और ज्ञायककी दृष्टि नहीं है वह वास्तवमें क्रमबद्धपर्यायका सच्चा स्वरूप समझा ही नहीं है।

(२७) क्रमबद्धपर्यायका सच्चा निर्णय कब होता है ?

"क्रमबद्धपर्यायमें मुझे मिथ्यात्व आना होगा तो ?"—ऐसी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शंका करनेवालेका सच्चा निर्णय हुआ ही नहीं है। सुन रे सुन मूढ़ ! तूने क्रमबद्धपर्याय किसके सन्मुख देखकर मानी ? अपने ज्ञायकद्रव्यकी ओर देखकर मानी है या पर की ओर देखकर ? जिसने ज्ञायक-द्रव्यसन्मुख होकर क्रमबद्धकी प्रतीति की, उसके तो मिथ्यात्व होता ही नहीं। और यदि अकेले परकी ओर देखकर तू क्रमबद्धकी बात करता हो तो तेरा क्रमबद्धका निर्णय ही मिथ्या है। तेरी क्रमबद्ध-पर्यायरूपसे कौन उत्पन्न होता है ?—जीव; जीव कैसा ?–ज्ञायक-स्वभावी; तो ऐसे जीवतत्त्वको तूने लक्षमें लिया है ? यदि ऐसे ज्ञायकस्वभावी जीवतत्त्वको जानकर क्रमबद्धपर्याय माने तब तो ज्ञातापनेकी ही क्रमबद्धपर्याय हो और मिथ्यात्व होता ही नहीं; मिथ्यात्वरूपसे उत्पन्न हो ऐसा ज्ञायकका स्वभाव नहीं है।

(२८) ज्ञानी रागके अकर्ता हैं; "जिसकी मुख्यता उसीका कर्ता"

प्रश्नः—ज्ञायकस्वभावकी दृष्टि होनेके पश्चात् भी ज्ञानीको राग तो होता है ?

उत्तरः—वह राग ज्ञाताका कार्य नहीं है, किन्तु ज्ञाताका ज्ञेय है। ज्ञायकस्वभाव परमार्थज्ञेय है और राग व्यवहारज्ञेय। ज्ञाताके परिणाममें तो ज्ञानकी ही मुख्यता है, रागकी मुख्यता नहीं है। और जिसकी मुख्यता है उसीका कर्ता–भोक्ता है। पुनश्च, "व्यवहार है इसलिये परमार्थ है"—ऐसा भी नहीं है, राग है इसलिये उसका ज्ञान होता है—ऐसा नहीं है। ज्ञायकके अवलम्बनसे ही ऐसे स्व-परप्रकाशक ज्ञानका परिणमन हुआ है; राग कहीं ज्ञायकके अवलम्बनमेंसे नहीं हुआ है, इसलिये ज्ञानी उसका अकर्ता है।

(२९) क्रमबद्धपर्याय समझने जितनी पात्रता कब...?

प्रश्नः—आप कहते हैं ऐसे ज्ञायकस्वरूप जीवको तथा क्रमबद्धपर्यायको हम मानें, और साथ ही साथ कुदेव–कुगुरु–कुशास्त्रको भी मानें, तो क्या हर्ज ?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उत्तर:—अरे ! कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्रके पास इस बातकी गंध भी नहीं है, तो उनके पास जो नहीं है वह बात तुझमें कहांसे आई ? किसीके पास धारणा करके—चोरी करके—इस बातके नामसे तुझे अपने मानको पुष्टि करना है, यह बड़ा स्वच्छन्द है ! जिसको ज्ञायकस्वभाव और क्रमबद्धपर्याय समझने जितनी पात्रता हुई हो उस जीवको कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्रका सेवन होता ही नहीं। किसीके शब्द लेकर रट ले, तो ऐसा नहीं चल सकता। सर्व प्रकारकी पात्रता हो तो यह बात समझमें आ सकती है।

(३०) भगवान ! तू कौन और तेरे परिणाम कौन ?

ज्ञानी अपनी ज्ञायकभावकी क्रमबद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न होता हुआ जीव ही है; अजीव नहीं है। ज्ञायकभावके सिवा राग भी वास्तवमें जीव नहीं है; ज्ञानी उस रागरूपसे उत्पन्न नहीं होता। कर्म जीव नहीं है शरीर जीव नहीं है; इसलिये ज्ञायकरूपसे उत्पन्न होनेवाला जीव कर्म, शरीरादिका निमित्तकर्ता भी नहीं है; ज्ञायक तो ज्ञायक ही है; ज्ञायकभावरूप ही वह उत्पन्न होता है।—ऐसा जीवका स्वरूप है।

❀ भगवान ! तू कौन और तेरे परिणाम कौन ? उन्हें पहिचान।

❀ तू जीव ! ज्ञायक ! और ज्ञायकके आश्रयसे दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी जो निर्मल पर्याय उत्पन्न हुई वे तेरे परिणाम !

—ऐसे निर्मल क्रमबद्धपरिणामरूपसे उत्पन्न होनेका तेरा स्वभाव है; किन्तु विकारका कर्ता होकर परको उत्पन्न करे या पर-निमित्तसे स्वयं उत्पन्न हो—ऐसा तेरा स्वभाव नहीं है। एक बार अपनी पर्यायको अन्तरोन्मुख कर, तो ज्ञायकके आश्रयसे तेरी क्रमबद्धपर्यायमें निर्मल परिणमन हो।

(३१) ज्ञानीकी दशा

ज्ञायकस्वभावसन्मुख होकर जो क्रमबद्धपर्यायका ज्ञाता हुआ है—ऐसे ज्ञानको प्रमाद भी नहीं होता और आकुलता भी नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होतो; क्योंकि (१) ज्ञायकस्वभावकी सन्मुखता किसी भी समय दूर नहीं होती इसलिये प्रमाद नहीं होता; दृष्टिके बलसे स्वभावके अवलम्बनका प्रयत्न चालू ही है; और (२) क्रम बदलनेकी बुद्धि नहीं है इसलिये उतावली भी नहीं है—पर्यायबुद्धिकी आकुलता नहीं है, किन्तु धैर्य है। ज्ञायकस्वभावका ही अवलम्बन करके परिणमित होते हैं, उसमें प्रमाद भी कैसा और आकुलता भी कैसी ?

(३२) "अकिंचित्कर हो तो, निमित्तकी उपयोगिता क्या ?"

अज्ञानीका प्रश्न

जिसे ज्ञायककी दृष्टि नहीं है और क्रम बदलनेकी बुद्धि है वह भी मिथ्यादृष्टि है; तो फिर निमित्त आकर पर्याय बदल दे—यह मान्यता तो कहां रही ?

प्रश्न:—यदि निमित्त कुछ न करता हो, तो उसकी उपयोगिता क्या है ?

उत्तर:—भाई ! आत्मामें परकी उपयोगिता है ही कहां ? उपयोगिता तो उपयोगस्वरूप आत्माकी ही है। निमित्तकी उपयोगिता निमित्तमें है, किन्तु आत्मामें उसकी उपयोगिता नहीं है। "आत्मामें निमित्तकी उपयोगिता नहीं है"—ऐसा माननेसे कहीं जगतमेंसे निमित्तके अस्तित्वका लोप नहीं हो जाता; वह ज्ञानका ज्ञेय है। जगतमें ज्ञेयरूपसे तो तीनों काल तीनों लोक हैं, उससे कहीं आत्मामें उनकी उपयोगिता हो गई ? अज्ञानी ऐसा कहते हैं कि—"निमित्तकी उपयोगिता मानों, अर्थात् निमित्त कुछ कर देता है ऐसा मानो तो तुमने निमित्तको माना ऐसा कहा जायेगा।" किन्तु भाई ! निमित्तको निमित्तमें ही रख; आत्मामें निमित्तकी उपयोगिता नहीं है—ऐसा माननेमें ही निमित्तका निमित्तपना रहता है। किन्तु निमित्त उपयोगी होकर आत्मामें कुछ कर देता है—ऐसा माननेसे निमित्त निमित्तरूपसे नहीं रहता, किन्तु उपादान-निमित्तकी एकता हो जाती है अर्थात् मिथ्यात्व हो जाता है। इसलिये निमित्तका अस्तित्व जैसा है वैसा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जानना चाहिये। किन्तु, जिन्हें शुद्ध उपादानरूप ज्ञायकस्वभावकी दृष्टि नहीं है और अकेले निमित्तको जानने जाते हैं उन्हें निमित्तका यथार्थ ज्ञान नहीं होता, क्योंकि स्व-परप्रकाशक सम्यक्ज्ञान ही उनके विकसित नहीं हुआ है।

-: दूसरा प्रवचन :-

[आश्विन शुक्ला ८, वीर सं० २४८०]

(३३) "जीव" अजीवका कर्ता नहीं है—क्यों नहीं है ?

इस सर्वविशुद्धज्ञान अधिकारमें क्रमबद्धपर्यायका वर्णन करके आचार्यदेवने आत्माका अकर्तृत्व बतलाया है। प्रत्येक द्रव्य अपनी क्रमबद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न होता है और उसीमें तन्मय है, किन्तु दूसरे द्रव्यकी पर्यायरूपसे कोई उत्पन्न नहीं होता, अर्थात् कोई द्रव्य दूसरे द्रव्यका, दूसरे द्रव्यकी अवस्थाका कर्ता नहीं है। तदुपरान्त, ज्ञायकस्वभावकी दृष्टिमें क्रमबद्ध उत्पन्न होनेवाला जीव रागका या कर्मका कर्ता निमित्तरूपसे भी नहीं है—यह बात यहाँ बतलाई है।

जीव अजीवका कर्ता नहीं है;—क्यों नहीं है ?—कहते हैं कि अजीव भी अपने क्रमबद्धपरिणामरूपसे उत्पन्न होता हुआ उसमें तद्रूप है, और जीव अपने ज्ञायकस्वभावकी क्रमबद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न होता हुआ ज्ञायक ही है; इसलिये वह रागादिका कर्ता नहीं है तथा अजीव कर्मोंका भी कर्ता नहीं है।

यहां जीवको समझाना है कि जीव ! तू ज्ञायक है; तेरी क्रमबद्धपर्याय ज्ञाता-दृष्टारूप ही होना चाहिए; उसके बदले तू रागके कर्तारूप परिणमित होता है वह तेरा अज्ञान है।

(३४) कर्मके साथका निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध तोड़ दिया उसने संसार तोड़ दिया

जीव दूसरेको परिणमित करता है और दूसरा निमित्त होकर जीवको परिणमित करता है—ऐसा अज्ञानी मानते हैं। और

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कोई भाषा बदलकर ऐसा कहते हैं कि–"दूसरा इस जीवको परिणमित तो नहीं करता, किन्तु जैसा निमित्त आये वैसे निमित्तका अनुसरण करके जीव स्वतः परिणमित हो जाता है; नहीं तो निमित्त–नैमित्तिक–सम्बन्ध उड़ जाता है !"—ऐसा माननेवाले भी अज्ञानी हैं; उन्हें; अभी निमित्तका अनुसरण करना है और उसके साथ सम्बन्ध रखना है, किन्तु ज्ञायकस्वभावका अनुसरण नहीं करना है।—ऐसे जीवोंके लिये आचार्यदेव अगली गाथाओंमें कहेंगे कि—अज्ञानीको कर्मके साथ निमित्त–नैमित्तिकभावके कारण ही संसार है। ज्ञानी तो ज्ञायकस्वभावकी दृष्टिमें निमित्तका अनुसरण ही नहीं करते; ज्ञायकका ही अनुसरण करते हैं; ज्ञायकस्वभावमें एकता करके निमित्तके साथका सम्बन्ध उन्होंने तोड़ डाला है, इसलिये दृष्टि अपेक्षासे उनके संसार है ही नहीं।

(३५) "ईश्वर जगत्कर्ता," और "आत्मा परका कर्ता" —ऐसी मान्यतावाले दोनों समान हैं

निमित्त पाकर जीवकी पर्याय होती है अथवा तो जीव निमित्त होकर दूसरे जीवको बचा देता है—ऐसा कर्तृत्व माननेवाले भले ही जैन नाम धारण किए हों तथापि, ईश्वरको जगत्कर्ता माननेवाले लौकिकजनोंकी भाँति, वे मिथ्यादृष्टि ही हैं।—यह बात भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेवने ३२१–२२–२३ वीं गाथामें कही है।

(३६) ज्ञानीकी दृष्टि और ज्ञान

अपनी क्रमबद्धपर्यायरूपसे द्रव्य स्वयं ही प्रतिसमय उत्पन्न होता है, उसमें अन्य कर्ताकी अपेक्षा नहीं है; दूसरेसे निरपेक्षरूपसे द्रव्यमें कर्ता–कर्मपना है। द्रव्य अपनी पर्यायको करे, वहां भूमिकानुसार निमित्त–नैमित्तिकसम्बन्धका मेल सहज ही भले हो, किन्तु ज्ञानीकी दृष्टि तो ज्ञायकस्वभाव पर ही है; निमित्तसन्मुख ज्ञानीकी दृष्टि नहीं है। ज्ञानीके जो स्व–परप्रकाशक ज्ञान विकसित हुआ है उसमें निमित्तका भी ज्ञान आ जाता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(३७) द्रव्यको लक्षमें रखकर क्रमबद्धपर्यायकी बात

द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावरूप वस्तु स्वयं परिणमित होकर प्रतिसमय नई-नई 'क्रमबद्ध अवस्थारूपसे उत्पन्न होती है; वस्तुमें प्रतिसमय आन्दोलन हो रहा है; पहले समयके द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव दूसरे समय सर्वथा ज्योंके त्यों नहीं रहते, किन्तु दूसरे समयमें पलटकर दूसरी अवस्थारूपसे उत्पन्न होते हैं। इसलिये पर्यायके बदलनेसे द्रव्य भी परिणमित होकर उस-उस समयकी पर्यायके साथ तन्मयरूपसे वर्तता है!—इसप्रकार द्रव्यको लक्षमें रखकर क्रमबद्धपर्यायकी बात है। पहली बारके आठ प्रवचनोंमें यह बात अच्छी तरह विस्तारपूर्वक आ गई है।

(—देखो प्रथम भाग, प्रवचन ८ वाँ, पेरा नं० १८८)

(३८) परमार्थतः सभी जीव ज्ञायकस्वभावी हैं;—किन्तु ऐसा कौन जानता है ?

सभी जीव अनादि-अनन्त स्व-परप्रकाशक ज्ञायकस्वभावरूप ही हैं। जीवके एकेन्द्रियसे लेकर पंचेन्द्रियादि जो भेद हैं वे तो पर्याय-अपेक्षासे तथा शरीरादि निमित्तोंकी अपेक्षासे हैं; किन्तु स्वभावसे तो सब जीव ज्ञायक ही हैं।—ऐसा कौन जानता है ?—जिसने अपनेमें ज्ञायकस्वभावकी दृष्टि की हो वह दूसरे जीवोंको भी वैसे स्वभाव-वाला जानता है। व्यवहारसे जीवके अनेक भेद हैं, किन्तु परमार्थसे सभी जीवोंका ज्ञायकस्वभाव है,—ऐसा जो जान ले उसको व्यवहारके भेदोंका ज्ञान सच्चा होता है। अज्ञानी तो व्यवहारको जानते हुए उसीको जीवका स्वरूप मान लेता है; इसलिये उस पर्यायबुद्धिसे अनन्तानुबन्धी राग-द्वेष होता है, धर्मीको ऐसा राग-द्वेष नहीं होता।

(३९) "क्रमबद्धपर्याय" और उनके चार दृष्टान्त

यहां आचार्यभगवान कहते हैं कि जीवकी क्रमबद्धपर्यायरूपसे जीव स्वयं उत्पन्न होता है और अजीवकी क्रमबद्धपर्यायरूपसे अजीव स्वयं उत्पन्न होता है, कोई किसीका कर्ता या बदलनेवाला नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। पर्यायका लक्षण क्रमवर्तीपना है। क्रमवर्ती कहो या क्रमबद्ध कहो, या नियमबद्ध कहो; प्रत्येक द्रव्य अपनी व्यवस्थित क्रमबद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न होता है; आत्मा अपने ज्ञायकप्रवाहके क्रममें रहकर उसका ज्ञाता ही है।

(१) पर्याय क्रमवर्ती है, उस क्रमवर्तीपनेका अर्थ "पादविक्षेप" करते हुए पंचाध्यायीकी १६७ वीं गाथामें कहते हैं कि—

"अस्त्यत्र यः प्रसिद्धः क्रम इति धातुश्च पादविक्षेपे।
क्रमति क्रम इति रूपस्तस्य स्वार्थानतिक्रमादेषः॥"

'क्रम' धातु है वह 'पादविक्षेप' ऐसे अर्थमें प्रसिद्ध है, और अपने अर्थ अनुसार 'क्रमति इति क्रमः'—ऐसा उसका रूप है।

'पादविक्षेप' अर्थात्—जब मनुष्य चलता है तब उसका दायाँ और बाँया पैर एकके बाद एक क्रमशः उठता है; दायेंके बाद बायाँ और बायेंके बाद दायाँ,—ऐसा जो चलनेका पादक्रम है वह उल्टा-सीधा नहीं होता; उसीप्रकार जीव-अजीव द्रव्योंका परिणमन भी क्रमबद्ध होता है; उनकी पर्यायोंका क्रम उल्टा-सीधा नहीं होता। इसप्रकार "क्रमबद्धपर्याय" के लिये एक दृष्टान्त तो 'पादविक्षेप' का अर्थात् चलनेके प्राकृतिक क्रमका है।

(२) दूसरा दृष्टान्त नक्षत्रोंका है, वह प्रकृतिका है। प्रमेयकमलमार्तण्ड (३-१८) में 'क्रमभाव' के लिये नक्षत्रोंका दृष्टान्त दिया है। जिसप्रकार कृतिका, रोहिणी मृगशीर्ष...आदि सभी नक्षत्र क्रमबद्ध ही हैं; वर्तमानमें 'रोहिणी' नक्षत्र उदयरूप हो तो, उसके पहले 'कृतिका' नक्षत्र ही था, और अब "मृगशीर्ष" नक्षत्र ही आयेगा, -ऐसा निर्णय हो सकता है। यदि नक्षत्र निश्चित्—क्रमबद्ध ही न हों तो, पहले कौन-सा नक्षत्र था और अब कौन-सा नक्षत्र आयेगा उसका निर्णय हो ही नहीं सकता। उसीप्रकार प्रत्येक द्रव्यमें उसकी तीनोंकालकी पर्यायें निश्चित् क्रमबद्ध ही हैं; यदि द्रव्यकी क्रमबद्धपर्यायें निश्चित्

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

न हों तो ज्ञान तीनकालका किस प्रकार जानेगा ? आत्माका ज्ञानस्वभाव है, और ज्ञानमें सर्वज्ञताकी शक्ति है—ऐसा निर्णय करे तो उसमें क्रमबद्धपर्यायकी स्वीकृति आ ही जाती है। जो क्रमबद्धपर्यायको स्वीकार नहीं करता उसे ज्ञानस्वभावका या सर्वज्ञका यथार्थ निर्णय नहीं हुआ।

(३) क्रमबद्धपर्यायके लिये तीसरा दृष्टान्त नक्षत्रोंकी भाँति 'सात वारों' का है। जिस प्रकार सात वारोंमें रविके बाद सोम, और उसके बाद मंगल....बुध....गुरु....शुक्र....शनि—इसप्रकार क्रमानुसार ही आते हैं रविके बाद सीधा बुध और बुधके बाद शनि कभी नहीं आता। भिन्न-भिन्न देशों या भिन्न-भिन्न भाषाओंमें सात वारोंके नाम भले ही अलग-अलग बोले जाते हों, किन्तु सात वारोंका जो क्रम है वह तो सर्वत्र एक-सा ही है; सब देशोंमें रविके बाद सोमवार ही आता है, और सोमवारके पश्चात् मंगलवार ही आता है। रविवारके बाद बीचमें सोमवार आये बिना सीधा मंगलवार आ जाये—ऐसा कभी किसी देशमें नहीं होता। उसीप्रकार द्रव्यकी जो क्रमबद्धपर्याय है वह कभी किसी द्रव्यमें उल्टी-सीधी नहीं होती। सात वारोंमें जिस वारके पश्चात् जिस वारका क्रम होता है वही वार आता है; उसीप्रकार द्रव्यमें जिस पर्यायके पश्चात् जिस पर्यायका क्रम (स्वकाल) होता है वही पर्याय होती है। यह ज्ञायकजीव अपने ज्ञायकपनेको भूलकर उसमें फेरफार करना चाहे तो मिथ्यादृष्टि है; क्योंकि वह परमें कर्तृत्व मानकर उसे बदलना चाहता है। मैं ज्ञाता हूँ—इसप्रकार ज्ञायकसन्मुख परिणमित न होकर रागादिका कर्ता होकर परिणमित होता है; वह जीव क्रमबद्धपर्यायका ज्ञाता नहीं है। क्रमबद्धपर्यायका ज्ञाता तो ज्ञायकसन्मुख रहकर रागादिको भी जानता ही है। उसे स्वभावसन्मुख परिणमनमें शुद्ध पर्याय ही होती जाती है।

(४) "क्रमबद्धपर्याय" का चौथा दृष्टान्त है—मालाके मोतीका। जिसप्रकार १०८ मोतियोंकी मालामें प्रत्येक मोतीका क्रम नियमित है; किसी मोतीका क्रम इधर-उधर नहीं होता; उसीप्रकार

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

द्रव्यकी अनादि-अनन्त पर्यायमाला—पर्यायोंकी पंक्ति—है, उसमें प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध है; कोई पर्याय इधर-उधर नहीं होती। (देखो, प्रवचनसार गाथा ९९ टीका)

देखो, यह वस्तुस्वरूप !

(४०) हे जीव ! तू ज्ञायकको लक्षमें लेकर विचार कर

भाई, यह समझनेके लिये कहीं बड़े-बड़े न्यायशास्त्रोंका अध्ययन करना पड़े ऐसा नहीं है। आत्माका ज्ञानस्वभाव है उसे लक्षमें लेकर तू विचार कर कि इस ओर मैं ज्ञायक हूँ—मेरा सर्वज्ञस्वभाव है,—तो सामने ज्ञेयवस्तुकी पर्याय क्रमबद्ध ही होगी या अक्रमबद्ध ? अपने ज्ञानस्वभावको सामने रखकर विचार करे तो यह क्रमबद्धपर्यायकी बात सीधी जम जाये ऐसी है; किन्तु ज्ञायकस्वभावको भूलकर विचार करे तो एक भी वस्तुका निर्णय नहीं हो सकता। निर्णय करनेवाला तो ज्ञायक है, उस ज्ञायकके ही निर्णय बिना परका या क्रमबद्धपर्यायका निर्णय करेगा कौन ? "मैं ज्ञायक हूँ"—इसप्रकार स्वभावमें एकता करके साधकजीव ज्ञायकस्वभावरूप ही उत्पन्न होता है। जिसकी मुख्यता है उसीका कर्ता-भोक्ता है। ज्ञानीको रागकी मुख्यता नहीं है इसलिये उसका कर्ता-भोक्ता नहीं है। रागको गौण करके, व्यवहार मानकर अभूतार्थ कहा इसलिये ज्ञानी रागरूपसे उत्पन्न होता ही नहीं। इसप्रकार अभेदकी बात है;—ज्ञायकमें अभेद हुआ वह ज्ञान-आनन्द-श्रद्धादिरूप ही उत्पन्न होता है; रागमें अभेद नहीं है इसलिये वह रागरूपसे उत्पन्न ही नहीं होता। श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र-आनन्दादिके निर्मल क्रमबद्धपरिणामरूप ही ज्ञानी उत्पन्न होता है।

(४१) क्रमबद्धपना किस प्रकार है ?

यहां "क्रमबद्धपरिणाम" कहा जाता है, उसका क्या अर्थ ? पहले एक गुण परिणमित होता है, फिर दूसरा और उसके बाद तीसरा, —ऐसा क्रमबद्धपरिणामका अर्थ नहीं है। अनन्त गुण हैं वे कहीं एकके बाद एक परिणमित नहीं होते। गुण तो सब एकसाथ ही परिणमित

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होते हैं इसलिये अनन्त गुणोंके अनन्त परिणाम एकसाथ हैं; किन्तु यहां तो गुणोंके परिणाम एकके बाद एक (ऊर्ध्वक्रमसे) उत्पन्न होते हैं उसकी बात है। गुण सहभावरूप—एकसाथ—हैं; किन्तु पर्यायें क्रमभावरूप—एकके बाद एक—हैं। एकके बाद एक होनेके उपरांत वह प्रत्येक पर्याय स्वकालमें नियमित—व्यवस्थित है।—यह बात लोगोंको जमती नहीं है और फेरफार करना-परका कर्तृत्व-मानते हैं। आचार्यप्रभु समझाते हैं कि भाई! ज्ञायकस्वभाव तो सबको जानता है या किसीको बदल देता है? अपने ज्ञानस्वभावकी प्रतीति करके तू स्वोन्मुख हो जा और परको बदलनेकी मिथ्याबुद्धि छोड़ दे।

(४२) * ज्ञान और ज्ञेयकी परिणमनधारा; * केवली भगवानके दृष्टान्तसे साधकदशा की समझ

केवलज्ञानी भगवानको परिपूर्ण स्व-परप्रकाशकभाव परिणमित हो रहा है और सामने सम्पूर्ण ज्ञेय ज्ञात हो गया है। सारे ज्ञेय क्रमबद्ध परिणमित हो रहे हैं और यहाँ पूर्ण ज्ञान तथा उसके साथ पूर्ण आनन्द, वीर्यादि क्रमबद्ध परिणमित हो रहे हैं। ज्ञान और ज्ञेय दोनों व्यवस्थित-क्रमबद्ध परिणमित हो रहे हैं। तथापि कोई किसीको बदलता नहीं है, किसीके कारण कोई नहीं है।

ज्ञेयोंमें पहले समय जो वर्तमानरूप है वह दूसरे समय भूतरूप हो जाता है, और भविष्य उस वर्तमानरूप हो जाता है, इसप्रकार ज्ञानकी पर्यायें भी बदलती हैं; परन्तु ज्ञान तो भूत भविष्य और वर्तमान तीनोंको एकसाथ जानता है, वह कहीं क्रमसे नहीं जानता। यहाँ पूरा ज्ञायकभाव और सामने सब ज्ञेय—इसप्रकार ज्ञान और ज्ञेयकी परिणमनधारा चली जाती है, उसमें बीचमें भगवानको रागादि नहीं आते। यहाँ केवलीभगवानका उदाहरण देकर ऐसा समझाना है कि—जिसप्रकार भगवान अकेले ज्ञायकभावरूप ही परिणमित होते हैं उसीप्रकार साधक ज्ञानी भी अपने ज्ञायकस्वभावके अवलम्बनसे ज्ञायकभावरूप ही परिणमित होते हैं; उनका ज्ञान रागको ज्ञेयरूप

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

से जानता है किन्तु रागके अवलम्बनसे प्रवर्तित नहीं होता। "भगवानका केवलज्ञान लोकालोकका अवलम्बन लेकर प्रवर्तित होता है"—ऐसा कहा जाता है, किन्तु वह तो ज्ञानके परिपूर्ण सामर्थ्यकी विशालता बतलानेके लिये कहा है; केवलज्ञानमें कहीं परका अवलम्बन नहीं है। उसी प्रकार साधकके ज्ञानमें अपने ज्ञायकस्वभावके सिवा अन्य किसीका अवलम्बन नहीं है।

केवलीभगवानको रागादिरूप व्यवहार रहा ही नहीं है; साधकको भूमिकानुसार अल्प रागादि हैं वे व्यवहारज्ञेयरूपसे हैं; इसलिये कहा है कि "व्यवहार जाना हुआ उस कालमें प्रयोजनवान है" किन्तु साधकको उस व्यवहारका अवलम्बन नहीं है; अवलम्बन तो अन्तरके परमार्थभूत ज्ञायकस्वभावका ही है। स्व-परप्रकाशक ज्ञानसामर्थ्यमें उस-उस कालका व्यवहार और निमित्त ज्ञेयरूपसे हैं।

(४३) "जीव" कैसा ? और जीवकी प्रभुता काहेमें ?

यहां स्वभावके साथ अभेद होकर जो परिणाम उत्पन्न हुए उन्हींको जीव कहा है; रागादिमें अभेद होकर वास्तवमें ज्ञानी जीव उत्पन्न नहीं होता। ज्ञायकस्वभावके अवलम्बनसे जो निर्मल परिणाम उत्पन्न हुए वे जीवके साथ अभेद हैं, इसलिये वे जीव हैं, उनमें रागका या अजीवका अवलम्बन नहीं है इसलिये वे अजीव नहीं हैं।

देखो, यह जीवकी प्रभुता ! प्रभो ! अपनी प्रभुतामें तू है,—रागमें या अजीवमें तू नहीं है। तेरी प्रभुता तेरे ज्ञायकस्वभावके अवलम्बनमें है, अजीवके अवलम्बनमें तेरी प्रभुता नहीं है; अपने ज्ञायकभावके परिणमनमें तेरी प्रभुता है, रागके परिणमनमें तेरी प्रभुता नहीं है। कोई भगवान जगतके नियामक हैं—यह बात तो झूठ है, किन्तु तेरा ज्ञानस्वभाव स्व-परका निश्चायक है-निश्चय करनेवाला है—ज्ञाता है। ज्ञेयकी क्रमबद्ध अवस्थाके कारण यहाँ वैसा परिणमन होता है-ऐसा भी नहीं है। और ज्ञानके कारण ज्ञेयोंका क्रमबद्ध परिणमन होता है—ऐसा नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(४४) "पर्याय-पर्यायमें ज्ञायकपनेका ही काम"

देखो, ग्रामका स्टेशन बाजारसे बिलकुल निकट है। दो मिनटमें स्टेशन पहुंचा जा सके—इतने निकट है। कभी गाड़ीमें जाना हो, और घर भोजन करने बैठे हों वहां गाड़ीकी सीटी सुनाई दे। पहले धीरे-धीरे भोजन कर रहे हों और गाड़ी आनेकी सूचना मिलते ही जल्दी खानेकी इच्छा हो जाये तथा कौर भी जल्दीसे उठने लगें; तथापि सब क्रमबद्ध अपने-अपने कारण ही है।

—गाड़ी आई इसलिये ज्ञान हुआ—ऐसा नहीं है, और

—ज्ञानके कारण गाड़ी नहीं आई है।

—गाड़ी आनेका ज्ञान हुआ इसलिये उस ज्ञानके कारण जल्दी खानेकी इच्छा हुई ऐसा भी नहीं है;

—ज्ञानके कारण या इच्छाके कारण खानेकी क्रियामें शीघ्रता आई—ऐसा भी नहीं है।

—प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्ररूपसे अपनी-अपनी क्रमबद्ध योग्यतानुसार परिणमित होता है,—ऐसा समझे तो ज्ञायकत्व हुए बिना न रहे।

इसी प्रकार, कोई मनुष्य घूमने जाये और धीरे-धीरे चल रहा हो, किन्तु जहां पानी बरसना प्रारम्भ हो कि एकदम तेजीसे पैर उठने लगते हैं;—इसमें भी उपरोक्त दृष्टान्तकी भांति जीव-अजीवके परिणमनकी स्वतंत्रता समझ लेना चाहिये और इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिये। लोकमें कहावत है कि—"दाने-दाने पर खानेवालेका नाम;" उसीप्रकार यहां "पर्याय-पर्यायमें स्वकालका नाम" है; और आत्मामें "पर्याय-पर्यायमें ज्ञायकपनेका ही काम" हो रहा है। किन्तु मूढ़ जीव विपरीतदृष्टिसे परका कर्तृत्व मानता है।

(४५) मूढ़ जीव मुँह आये वैसा बकता है

शरीरकी बात आये वहां अज्ञानी कहता है कि—"जीवके बिना कहीं शरीरकी क्रिया हो सकती है? जीव हो तभी शरीरकी क्रिया होती है।" इसका अर्थ यह हुआ कि जीव हो तो अजीवके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परिणाम होते हैं, यानी अजीवमें तो मानों कुछ शक्ति ही न हो !—ऐसा मूढ़ मानता है।

और जहाँ कर्मकी बात आये वहां वह अज्ञानी ऐसा कहता है कि—"भाई ! कर्मका जोर है, कर्म जीवको विकार कराते हैं और कर्म ही उसको भटकाते हैं !"—अरे भाई ! अजीवमें बल तो नहीं था, फिर कहांसे आ गया ? कर्म जीवको बलात् परिणमित कराते हैं;—यानी जीवमें स्वाधीन परिणमन करनेकी तो मानो कोई शक्ति ही न हो—ऐसा वह मूढ़ मानता है। जीव-अजीवकी स्वतंत्रताके भान बिना अज्ञानी क्षणमें इधर और क्षणमें उधर, जैसा मुँह आये वैसा बकते हैं।

(४६) अज्ञानीकी बिलकुल विपरीत बात; ज्ञानीकी अपूर्वदृष्टि

पुनश्च, थर्मामीटरका दृष्टान्त देकर कोई ऐसा कहते हैं कि—जितना बुखार हो उतना ही थर्मामीटरमें आता है; उसीप्रकार जितना उदय हो तदनुसार ही विकार होता है।—यह बात भी झूठी है। भाई, तेरी दृष्टि विपरीत है और तेरा दृष्टान्त भी उलटा है। किसी समय १०५ डिग्री बुखार हो, तथापि थर्मामीटरमें उतना नहीं आता। उसी प्रकार उदयानुसार ही जीवको विकार हो—ऐसा कभी होता ही नहीं।

"उदयानुसार ही विकार होता है"—यह बात तो महान स्थूल-विपरीत है। किन्तु, जीव स्वयं विकार करके उदयको निमित्त बनाये—यह बात भी यहां नहीं है। जो अज्ञानी जीव विकारका कर्ता होता है उसीको कर्मके साथ सम्बन्ध है, किन्तु ज्ञानी तो ज्ञायकभावरूप ही परिणमित होते हैं, ज्ञायकभावमें कर्मके साथ सम्बन्ध ही नहीं है—ऐसी ज्ञायकस्वभावकी दृष्टि करके स्वसन्मुख ज्ञातारूपसे परिणमित होना ही अपूर्व धर्म है, और वह जीव वास्तवमें अकर्ता है। अकर्तापने-रूप अपना जो ज्ञायकभाव है उसका वह कर्ता है, किन्तु रागका या कर्मका कर्ता नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(४७) "मूर्ख..."

देखो, शास्त्रमें ऐसा आता है कि—"कत्थवि बलिओ जीवो, कत्थवि कम्माइ हुंति बलियाइ.....अर्थात् कभी जीव बलवान होता है और कभी कर्म बलवान हो जाते हैं";—किन्तु अज्ञानी उसका आशय नहीं समझते और विपरीत मानते हैं। जीवने पुरुषार्थ नहीं किया तब निमित्तसे कर्मको बलवान कहा। परन्तु कर्मका उदय ही जीवको जबरन् राग-द्वेषरूप परिणमित करता है—ऐसा जो मानता है उसे तो पं० बनारसीदासजी नाटक समयसारमें 'मूर्ख' कहते हैं—

कोऊ मूरख यों कहै, राग दोष परिनाम।
पुग्गलकी जोरावरी बरतै आतमराम ॥६२॥

(४८) विपरीत मान्यताका जोर! (उसके चार उदाहरण)

(१) विपरीत दृष्टि ही जीवको सीधा नहीं समझने देती। देखो, "उदयानुसार विकार होता है"—ऐसा माननेवालेको भी उदयानुसार तो विकार होता ही नहीं; उसके शास्त्रस्वाध्यायादिमें (भले ही विपरीत दृष्टिपूर्वक) मंदराग तो वर्तता है; ज्ञानमें भी इसी प्रकार आता है; कर्मके उदयानुसार विकार होता है—ऐसा कहीं उसके ज्ञानमें तो ज्ञात नहीं होता, तथापि उसकी विपरीत दृष्टिका बल उसे ऐसा मनाता है कि "उदयानुसार विकार होता है।" उसकी विपरीत मान्यतामें मिथ्यात्वका इतना जोर पड़ा है कि अनन्ता उदय आये तो मुझे वैसा होना पड़ेगा—ऐसा उसका अभिप्राय वर्तता है; इसलिये उसमें तीव्र मिथ्यात्व सहित निगोददशाकी ही आराधनाका जोर पड़ा है।

(२) इसी प्रकार, विपरीत दृष्टिका दूसरा उदाहरण:—स्थानकवासीके तेरापन्थी लोग असंयमीके प्रति दया-दानादि भावोंको भी पाप मानते हैं। किसी जीवके बचानेका या दानादिका भाव हो तब उसे अपनेको कोमल परिणामरूप शुभभाव है; उस समय उसके ज्ञानमें भी ऐसा ही ख्याल आता है कि यह कुछ शुभपरिणाम

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है; उस समय ज्ञानमें कहीं ऐसा ख्याल नहीं आता कि "यह पाप-परिणाम है," किन्तु विपरीत श्रद्धाका जोर ऐसा है कि अपनेको शुभभाव होने पर भी उसे पाप मनाती है। दया-दानको पाप माननेवाले तेरापंथीको भी दया-दानके समय कहीं पापभाव नहीं है; तथापि विपरीत दृष्टिके कारण वह उसे पाप मानता है।

(३) इसी प्रकार तीसरा उदाहरण:—जिन-प्रतिमाके दर्शन-पूजन-भक्ति आदिमें शुभभाव है; तथापि स्थानकवासी उसे पाप मानते हैं; जिन-प्रतिमाके दर्शनादिमें शुभभाव होते हैं तथापि, और ज्ञानमें भी उस समय "यह शुभ है"—ऐसा आने पर भी, विपरीत मान्यताका जोर उस शुभको भी पाप मनाता है।

(४) एक चौथा उदाहरण यह है कि-दया, पूजा या व्रतादिका भाव शुभराग है, वह कहीं धर्म नहीं है; तथापि मिथ्यादृष्टिकी विपरीत मान्यता उसे धर्म मानती है। उस शुभरागके समय अज्ञानीको भी ज्ञानमें तो ऐसा आया है कि—"यह राग हुआ," किन्तु धर्म हुआ—ऐसा कहीं ज्ञानमें नहीं आया है; अर्थात् रागके समय उस रागका ही ज्ञान हुआ है; तथापि विपरीत दृष्टिके कारण वह रागको धर्म मानता है। रागसे धर्म माननेवालेको स्वयं भी रागसे कहीं धर्म नहीं हो जाता तथापि विपरीत मान्यताका जोर उसे इस प्रकार मनाता है।

—वह विपरीत मान्यता कैसे दूर हो ?—यह बात आचार्यदेव समझाते हैं।

(४९) ज्ञायक सन्मुख हो !—यही जैनमार्ग है

हे भाई ! एक बार तू स्वसन्मुख हो और ज्ञायकस्वभावको प्रतीतिमें लेकर श्रद्धा-ज्ञानको सच्चा बना, तो तुझे सब सीधा-सच्चा भासित होगा और तेरी विपरीत मान्यता दूर हो जायगी। उपयोगको अन्तरोन्मुख करके "मैं ज्ञायक हूँ" ऐसा जब तक वेदन न हो तब तक सम्यग्दर्शन नहीं होता और विपरीत मान्यता भी नहीं टलती। बस ! ज्ञानको अन्तरोन्मुख करके आत्मामें एकाग्र किया उसमें सम्पूर्ण मार्गका समावेश हो गया, सारा जैनशासन उसमें आ गया।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

-: तीसरा प्रवचन :-

[आश्विन शुक्ला ९, वीर सं० २४८०]

(५०) सम्यग्दृष्टि-ज्ञाता क्या करता है ?

"सर्वविशुद्धज्ञान" कहो या अभेदरूपसे ज्ञानात्मक शुद्ध द्रव्य कहो--उसका यह अधिकार है। शुद्ध ज्ञायकद्रव्यकी दृष्टिसे सम्यग्ज्ञानीको ज्ञानमें क्या क्या होता है उसका यह वर्णन है। सम्यग्दर्शन अर्थात् शुद्ध आत्माका ज्ञान होने पर जीव क्या करता है ?—अथवा सम्यग्दृष्टि ज्ञानीका क्या कार्य है ? वह यहां समझाते हैं।

तत्त्वार्थश्रद्धान वह सम्यग्दर्शन है; सात तत्त्वोंमें जीवतत्त्व ज्ञायकस्वरूप है। मैं ज्ञायकस्वरूप जीव हूँ—ऐसा जाननेवाला सम्यक्त्वी पर्याय-पर्यायमें ज्ञाताभावरूप ही उत्पन्न होता है इसलिये ज्ञातृत्वका ही कार्य करता है। ज्ञाता स्वयं प्रतिक्षण अपनेको जानता हुआ उत्पन्न होता है। ज्ञायकस्वभावकी दृष्टिसे उत्पन्न होनेवाला ज्ञायक ज्ञाता-दृष्टापनेका ही कार्य करता है; उस क्षण वर्तते हुए रागका वह ज्ञायक है किन्तु उसका कर्ता नहीं है। ज्ञाता उस काल वर्तते हुए रागादिको-व्यवहारको जानता है, वह रागके कारण नहीं किन्तु उस समयके अपने ज्ञानके कारण वह रागको भी जानता है। इसप्रकार ज्ञानी जीव अपने क्रमबद्ध ज्ञानपरिणामरूपसे उत्पन्न होता है।

(५१) निमित्तका अस्तित्व कार्यकी पराधीनता सूचित नहीं करता

अजीव भी अपनी क्रमबद्धपर्यायसे स्वयं उत्पन्न होता है; कोई दूसरा उसका उत्पन्न करनेवाला नहीं है। देखो, घड़ा होता है, वहां मिट्टीके परमाणु स्वयं उस पर्यायरूपसे उत्पन्न होते हैं; कुम्हार उन्हें उत्पन्न नहीं करता। कुम्हारने घड़ा बनाया—ऐसा कहना तो मात्र निमित्तके संयोगका कथन है। "निमित्त" कहीं नैमित्तिककार्यकी पराधीनता नहीं बतलाता। एक वस्तुके कार्यके समय निमित्तरूप

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

से दूसरी वस्तुका अस्तित्व हो, वह कहीं कार्यकी पराधीनता नहीं बतलाता, किन्तु ज्ञानका स्व-परप्रकाशक सामर्थ्य बतलाता है।

(५२) श्री रामचन्द्रजीके दृष्टान्त द्वारा धर्मात्माके कार्यकी समझ

जिस समय श्री राम-लक्ष्मण-सीता वनमें थे, तब वे हाथसे मिट्टीके बर्तन बनाकर उनमें भोजन बनाते थे। रामचन्द्रजी बलदेव थे और लक्ष्मण वासुदेव। वे महान चतुर, बहत्तर कलाके ज्ञाता श्लाका पुरुष थे। जंगलमें हाथसे मिट्टीके बर्तन बनाकर उनमें भोजन बनाते थे। "रामने बर्तन बनाये"—ऐसा कहा जाता है, किन्तु वास्तवमें तो मिट्टीके परमाणु स्वयं उन बर्तनोंकी अवस्थारूपसे उत्पन्न हुए हैं। रामचन्द्रजी तो आत्मज्ञानी थे, और उस समय भी वे अपने ज्ञायकस्वभावकी दृष्टिसे ज्ञाताभावरूप ही उत्पन्न होते थे; मिट्टीकी पर्यायको मैं उत्पन्न करता हूँ—ऐसा वे नहीं मानते थे; स्व-परप्रकाशक ज्ञानरूपसे क्रमबद्ध उत्पन्न होते हुए उस समयके विकल्पको और बर्तन बनानेकी क्रियाको जानते थे। ज्ञातारूपसे ही उत्पन्न होते थे किन्तु रागके या जड़की क्रियाके कर्तारूपसे उत्पन्न नहीं होते थे। देखो, यह धर्मीका कार्य! ऐसी धर्मीकी दशा है; इससे विपरीत माने तो वह अज्ञानी है, उसे धर्मके स्वरूपकी खबर नहीं है।

(५३) आहारदान प्रसंगके दृष्टान्तसे ज्ञानीके कार्यकी समझ

सुगुप्ति और गुप्ति नामके मुनिओंका ऐसा अभिग्रह था कि राजकुमार हो, वनमें हो और अपने ही हाथसे बनाये हुए बर्तनमें विधिपूर्वक आहार दे तो वे आहार लेंगे। ठीक उसी समय राम-लक्ष्मण-सीता वनमें थे; हाथसे बनाये हुए बर्तनमें आहार बनाया था और ऐसी भावना कर रहे थे कि कोई मुनिराज पधारें तो उन्हें आहार दें; वहीं संयोगवशात् वे मुनिवर पधारे और उन्हें विधिपूर्वक पड़गाहन करके नवधाभक्तिपूर्वक आहारदान दिया। इसप्रकार मुनिओंके अभिग्रहका प्राकृतिक संयोग मिल गया। ऐसा संयोग अपने आप हो जाता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

किन्तु ज्ञानी जानते हैं कि मैं तो ज्ञायक हूँ; यह आहार देने-लेनेकी क्रिया हुई वह मेरा कार्य नहीं है; मुनिवरोंके प्रति भक्तिका शुभभाव हुआ वह भी वास्तवमें ज्ञाताका कार्य नहीं है। रामचन्द्रजी ज्ञानी थे उन्हें इस सबकी खबर थी। आहारदानकी बाह्यक्रियाके या उस ओरके विकल्पके, परमार्थसे ज्ञानी कर्ता नहीं हैं; उस समय अन्तरमें ज्ञायकस्वभावके अवलम्बनसे प्रतिक्षण ज्ञान-श्रद्धा-आनन्दादिकी पर्यायका स्वयं अपनेको दान देता है; उस दानमें स्वयं ही दान देनेवाला है और स्वयं ही लेनेवाला। निर्मल पर्यायरूपसे उत्पन्न हुआ उसका कर्ता भी स्वयं, और सम्प्रदान भी स्वयं। ज्ञान-आनन्दकी पंक्तिके सिवा रागादिका या परकी पर्यायका आत्मा ज्ञाता है किन्तु कर्ता नहीं है; अपनी निर्मल ज्ञान-आनन्ददशाका ही ज्ञानी कर्ता है।

छठवें-सातवें गुणस्थानमें झूलते हुए सन्त—मुनिवरोंको देखकर ज्ञानी कहें कि—"हे नाथ! पधारो....पधारो!! मनशुद्धि-वचनशुद्धि-कायशुद्धि-आहारशुद्धि....हे प्रभो! हमारे आंगनको पावन कीजिये! हमारे आँगनमें आज कल्पवृक्ष फले, हमें जंगलमें मंगल हुआ।"—तथापि उससमय ज्ञानी उस भाषाके और रागके कर्तारूपसे परिणमित नहीं होते किन्तु ज्ञायकपनेकी ही क्रमबद्धपर्यायके कर्ता-रूपसे परिणमित होते हैं। अज्ञानियोंको यह बात बैठना कठिन होता है।

(५४) रामचन्द्रजीके वनवासके दृष्टान्त द्वारा ज्ञानीके कार्यकी समझ

राजगद्दीके बदले रामचन्द्रजीको वनवास हुआ,—तो क्या वह अक्रमबद्ध हुआ? अथवा राजगद्दीका क्रम था, किन्तु कैकेयी माताके कारण वह बदल गया—ऐसा है?—नहीं; माता-पिताके या किसी ओरके कारण वनवासकी अवस्था हुई ऐसा नहीं है; तथा अवस्थाका क्रम बदल गया ऐसा भी नहीं है। रामचन्द्रजी जानते थे कि मैं तो ज्ञान हूँ; इस समय ऐसा ही क्षेत्र मेरे ज्ञानके ज्ञेयरूपसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होगा;—ऐसी ही स्वपरप्रकाशकशक्तिरूपसे मेरी ज्ञानपर्याय उत्पन्न हुई है। राजभवनमें होऊँ या वनमें होऊँ किन्तु मैं तो स्व-परप्रकाशक ज्ञायकरूपसे ही उत्पन्न होता हूँ। राजमहल भी ज्ञेय है और यह वन भी मेरे ज्ञानका ज्ञेय है; इस समय इस वनको जाने ऐसी ही मेरे ज्ञानकी स्व-परप्रकाशकशक्ति विकसित हुई है। इस प्रकार ज्ञानीको ज्ञायकदृष्टि नहीं छूटती; ज्ञायकदृष्टिमें वे निर्मल ज्ञानपर्यायरूप ही उत्पन्न होते हैं।

(५५) ज्ञानी ज्ञाता रहता है; अज्ञानी रागका कर्ता होता है और परको बदलना चाहता है

मैं ज्ञायक हूँ—ऐसी दृष्टि करके ज्ञातारूपसे न रहकर अज्ञानी रागादिका कर्ता होकर परके क्रमको बदलने जाता है। उसे अभी राग करना है और परको बदलना है; किन्तु ज्ञातारूपसे नहीं रहना है; उसे ज्ञातृत्व नहीं जमता इसलिये उसे ज्ञानके प्रति क्रोध है; तथा परके क्रमबद्धपरिणमन पर (वस्तुके स्वभाव पर) द्वेष है इसलिये उसके क्रमको बदलना चाहता है;—इसप्रकार यह मिथ्यादृष्टिके अनन्त राग-द्वेष हैं। अमुक समय अमुक प्रकारका राग बदलकर उसके बदले ऐसा ही राग करूँ—इस प्रकार जो हठ करके रागको बदलना चाहता है उसे भी रागके साथ एकत्वबुद्धिसे मिथ्यात्व होता है। भूमिका अनुसार जो राग होता है उसे साधक जानते हैं; उस रागको ज्ञानका ज्ञेय बना देते हैं, किन्तु उसे ज्ञानका कार्य नहीं बनाते और राग होने पर ज्ञानमें शंका भी नहीं पड़ती। हठपूर्वक रागको बदलने जाये तो उसे उस समयके (रागको भी जाननेवाले) स्व-परप्रकाशक ज्ञानकी प्रतीति नहीं है इसलिये ज्ञान पर ही द्वेष है। ज्ञानी तो ज्ञायकदृष्टिके बलमें ज्ञातारूपसे ही उत्पन्न होते हैं, रागरूपसे उत्पन्न नहीं होते; रागके भी ज्ञातारूपसे उत्पन्न होते हैं किन्तु उसके कर्तारूपसे उत्पन्न नहीं होते। सम्यग्दृष्टिका ऐसा कार्य है; अज्ञानी तो ज्ञायकस्वभावकी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रतीति न रखकर, पर्यायमूढ़ होकर पर्यायको बदलना चाहता है; अथवा पर ज्ञेयोंके कारण ज्ञान मानता है; इसलिये वह ज्ञेयोंको जानते हुए उन्हींमें राग-द्वेष करके अटक जाता है, किन्तु इधर ज्ञायकस्वभावकी ओर नहीं ढलता।

(५६) जैनके वेषमें बौद्ध

❀ बौद्धमती ऐसा कहते हैं कि-"ज्ञेयोंके कारण ज्ञान होता है; सामने घड़ा हो तो यहाँ घड़ेका ही ज्ञान होता है। घड़ेके समय घड़ेका ही ज्ञान होता है किन्तु "यह हाथी है"—ऐसा ज्ञान नहीं होता, इसलिये ज्ञेयके कारण ही ज्ञान होता है।" किन्तु उनकी यह बात मिथ्या है। ज्ञेयोंके कारण ज्ञान नहीं होता किन्तु सामान्य-ज्ञान स्वयं ही विशेष ज्ञानरूप परिणमित होकर जानता है इसलिये ज्ञानकी अपनी ही वैसी योग्यतांसे घड़े आदिका ज्ञान होता है; उस ज्ञानके समय घड़ा आदि ज्ञेय तो मात्र निमित्त हैं।—ऐसा युक्तिपूर्वक सिद्ध करके, अकलंकदेव आचार्यादि महान संतोंने, "ज्ञेयोंके कारण ज्ञान होता है"—यह बात उड़ा दी है। उसके बदले आज जैन नाम धारण करनेवाले कुछ विद्वान भी ऐसा मानते हैं कि "निमित्तके कारण ज्ञान होता है, निमित्तके कारण कार्य होता है"—तो वे भी बौद्धमती जैसे मिथ्यादृष्टि सिद्ध हुए; बौद्धके और उनके अभिप्रायमें कोई अन्तर न रहा।

❀ पुनश्च, जिस प्रकार ज्ञेयके कारण ज्ञान नहीं है, उसी प्रकार ज्ञानके कारण ज्ञेयकी अवस्था हो—ऐसा भी नहीं है, जिस प्रकार ज्ञेयके कारण ज्ञान होना बौद्ध कहते हैं, उसी प्रकार जैनमें भी यदि कोई ऐसा माने कि—"ज्ञानके कारण ज्ञेयकी अवस्था होती है,—जीव है इसलिये घड़ा होता है, जीव है इसलिये शरीर चलता है, जीव है इसलिये भाषा बोली जाती है"—तो यह मान्यता भी मिथ्या है। ज्ञान और ज्ञेय दोनोंकी अवस्था क्रमबद्ध स्वतंत्ररूपसे अपने-अपने कारण ही हो रही है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

❀ और, राग भी व्यवहारसे ज्ञाताका ज्ञेय है। जिस प्रकार ज्ञेयके कारण ज्ञान, या ज्ञानके कारण ज्ञेय नहीं है, उसी प्रकार रागके कारण ज्ञान या ज्ञानके कारण राग भी नहीं है। राग हो वहां ज्ञानमें भी राग ही ज्ञात होता है, वहां अज्ञानीको ऐसा भ्रम हो जाता है कि यह राग है इसलिये उसके कारण रागका ज्ञान होता है; इसलिये रागसे पृथक्—रागके अवलम्बनसे रहित—ऐसा ज्ञान उसे भासित नहीं होता। मैं ज्ञायक हूँ और मेरे ज्ञायकस्वभावमें यह ज्ञानका प्रवाह आता है—ऐसी प्रतीतिमें ज्ञानी रागका भी ज्ञाता ही रहता है।

(५७) सच्चा समझनेवाले जीवका विवेक कैसा होता है ?

प्रश्न:—प्रत्येक वस्तुकी क्रमबद्धपर्याय स्वयं अपनेसे ही होती है—ऐसी क्रमबद्धपर्यायकी बात सुनेंगे तो लोग देव-गुरु-शास्त्रका बहुमान छोड देंगे; और जिन-मन्दिरादि नहीं बनवायेंगे।

उत्तर:—अरे भाई ! जो यह बात समझेगा उसीको समझानेवालेका सच्चा बहुमान आयेगा। निश्चयसे अपने ज्ञायकस्वभावको जाना तब क्रमबद्धपर्यायका ज्ञान सच्चा हुआ। ज्ञायकस्वभावके सन्मुख होकर क्रमबद्धपर्यायको अपूर्व बात जो समझा, उसे वह बात समझानेवाले वीतरागी देव-गुरु-शास्त्रके प्रति भक्तिका भाव आये बिना नहीं रहेगा। "मैं ज्ञायक हूँ"—इस प्रकार ज्ञायककी श्रद्धा करके जो क्रमबद्धपर्यायको जानेगा वह अपनी भूमिकाके रागको भी जानेगा। किस भूमिकामें कैसा राग होता है और कैसे निमित्त होते हैं उनका भी वह विवेक करेगा। यह बात तो जागृतमार्ग है यह कहीं अंधमार्ग नहीं है। साधकदशामें राग होता है, किन्तु उस रागकी वृत्ति कुदेवादिके प्रति नहीं जाती, किन्तु सच्चे देव-गुरुके बहुमानकी ओर वृत्ति जाती है। जो सच्चा समझे वह स्वच्छन्दी हो ही नहीं सकता, सच्ची समझका फल तो वीतरागता है। वीतरागी देव-गुरुका बहुमान आनेसे बाह्यमें जिनमन्दिर बनवाने आदिके भाव

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आते हैं; किन्तु बाह्यमें तो उसके अपने कालमें जैसा होने योग्य हो वैसा होता है। इसी प्रकार अष्ट द्रव्योंसे भगवानकी पूजादिमें भी समझ लेना चाहिये। उस काल वैसा राग होता है और उस समय ज्ञान भी वैसा ही जानता है; तथापि उस ज्ञानके या रागके कारण बाह्यक्रिया नहीं होती। उस समय भी ज्ञानी जीव तो अपने ज्ञानभावका ही कर्ता है।

ज्ञानभाव जीवतत्त्व है;

राग आस्रवतत्त्व है; और

बाह्य शरीरादिकी क्रिया अजीवतत्त्व है।

उसमें किसीके कारण कोई नहीं है। इसप्रकार प्रत्येक तत्त्वका भिन्न-भिन्न स्वरूप पहिचानना चाहिये, तभी सच्ची तत्त्वार्थ-श्रद्धा होती है।

(५८) अपनी पर्यायमें ही अपना प्र-भाव है

कोई कहता है कि—आपके प्रभावसे यह सब रचना हुई!—यह सब तो विनयकी भाषा है। वास्तवमें "प्रभाव" किसीका किसी पर नहीं है। सबकी पर्यायमें अपना-अपना ही प्र-भाव (विशेष प्रकारसे भवन) है। आत्मा अपने ज्ञानरूप विशेषभावसे परिणमित हो उसीमें उसका प्रभाव है; स्वयं अपने जिस निर्मल भावरूपसे परिणमित हो उसीमें अपना प्रभाव है। किन्तु जीवका प्रभाव अजीव पर या अजीवका प्रभाव जीव पर नहीं है; प्रत्येक तत्त्व भिन्न-भिन्न है; एकका दूसरेमें अभाव है; इसलिये किसीका प्रभाव दूसरे पर नहीं पड़ता। एक पर दूसरेका प्रभाव कहना, मात्र निमित्तका कथन है। (विशेषके लिये देखो, प्रथम भाग, प्रवचन चौथा नं० १०८)

(५९) क्रमबद्धके नाम पर मूढ़ जीवकी गड़बड़ी

कुछ मूढ़ लोग ऐसी गड़बड़ी करते हैं कि—"पर्याय क्रमबद्ध जब होना हो तब हो जाती है; इसलिये चाहे जिस वेषमें और चाहे जिस दशामें मुनिपना आ जाता है।" किन्तु चाहे जैसे मिथ्या सम्प्रदाय

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

को मानता हो और चाहे जैसे निमित्तमें विद्यमान हो, तथापि क्रमबद्धमें मुनिपना या सम्यग्दर्शन आ जाये—ऐसा कभी होता ही नहीं। अरे भाई! क्रमबद्धपर्याय क्या वस्तु है उसकी तुझे खबर नहीं है; सम्यग्दर्शन और मुनिपनेकी दशा कैसी होती है उसकी भी तुझे खबर नहीं है। अन्तरंग ज्ञायकभावमें लीन होकर मुनिदशा हुई वहां निमित्तरूपसे जड़ शरीरकी दशा नग्न ही होती है। अब यह बात प्रसिद्धिमें आनेसे कुछ स्वच्छन्दी लोग क्रमबद्धके शब्द पकड़कर बात करना सीखे हैं। किन्तु यदि क्रमबद्धपर्यायको यथार्थ समझें तब तो निमित्त आदि चारों पक्षोंका मेल बराबर मिलना चाहिये।

(६०) ज्ञायक और क्रमबद्धका निर्णय करके स्वाश्रयका परिणमन हुआ, उसमें व्रत-प्रतिक्रमण आदि सारा जैनशासन आ जाता है

प्रश्नः—इस क्रमबद्धपर्यायमें व्रत-समिति-गुप्ति-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान-प्रायश्चित आदि कहाँ आये?

उत्तरः—जिसका ज्ञान परसे हटकर ज्ञायकमें एकाग्र हुआ है, उसीको क्रमबद्धपर्यायका निर्णय है, और ज्ञायकमें एकाग्र होकर परिणमित हुआ उसमें व्रत-समिति आदि सब कुछ आ जाता है। ज्ञायकस्वभावमें ज्ञानकी एकाग्रता-वह ध्यान है और उस ध्यानमें निश्चय व्रत-तप-प्रत्याख्यानादि सबका समावेश हो जाता है। नियमसारकी ११९ वीं गाथामें कहा है कि—

आत्मस्वरूपालम्बनभावेन तु सर्वभाव परिहारम्।
शक्नोति कर्तुं जीवस्तस्माद् ध्यानं भवेत् सर्वम् ॥११९॥

निज आत्माका आश्रय करके ज्ञान एकाग्र हुआ वह निश्चय धर्मध्यान है, और वह निश्चय धर्मध्यान ही सर्व परभावोंका अभाव करनेमें समर्थ है; "तम्हा झाण हवे सव्वं"-इसलिये ध्यान सर्वस्व है; शुद्ध आत्माके ध्यानमें सर्व निश्चय आचारों (पंचाचार) का समावेश हो जाता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जो आत्माके ज्ञायकस्वभावका और क्रमबद्धपर्यायका निर्णय नहीं करता, उसे कभी धर्मध्यान नहीं होता। ध्यान अर्थात् ज्ञानकी एकाग्रता। ज्ञायककी ओर ढले क्रमबद्धपर्यायको न जाने और परमें फेरफार करना माने—ऐसे जीवका ज्ञान परसन्मुखतासे हटकर स्वमें एकाग्र होता ही नहीं, इसलिये उसे धर्मध्यान होता ही नहीं; परमें एकाग्रता द्वारा उसे तो विपरीत ध्यान होता है। ज्ञानी तो ज्ञायकका और क्रमबद्धपर्यायका निर्णय करके ज्ञायकमें ही एकाग्रदृष्टिसे क्रमबद्ध ज्ञातारूपसे ही परिणमित होता है। ज्ञायकमें एकाग्रताका जो क्रमबद्धपरिणमन हुआ उसमें निश्चय प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान-सामायिक-व्रत-तपादि सब आ गया। ज्ञाता तो क्रमबद्ध अपने ज्ञायकभावरूप ही परिणमित होता है—ज्ञायकके अवलम्बनसे ही परिणमित होता है; वहाँ निर्मल पर्यायें होती जाती हैं, बीचमें जो व्यवहार परिणति होती है उसे ज्ञान जानता है किन्तु उसमें एकाग्र होकर प्रवर्तित नहीं होता; स्वभावमें एकाग्ररूपसे ही वर्तता है और उसमें जैनशासन आ जाता है।

(६१) "अभाव अतिभाव (—विभाव), और समभाव"

ज्ञायकस्वभावके अवलम्बनसे ही सच्चा समभाव होता है; उसके बदले जो संयोगके आश्रयसे समभाव होना मनाये, उसे वस्तु-स्वरूपकी खबर नहीं है;—जैनशासनकी खबर नहीं। कोई अज्ञानी ऐसा कहते हैं कि—"गरीबोंके पास धनादिका "अ-भाव" है और धनवानोंके पास उसका "अति-भाव" है; इसलिये जगतमें प्रतिद्वन्दता और क्लेश होता है; यदि अतिभाववाले अतिरिक्तका त्याग करके अभाववालोंको दे दें तो "समभाव" हो जाये और सबको शांति हो; इसलिये हम अणुव्रतका प्रचार करते हैं।"—यह सब अज्ञानीकी संयोगदृष्टिकी बातें हैं। क्लेश या समभाव क्या संयोगके कारण होता है?—यह बात झूठी है। ज्ञायकस्वभावसे सभी जीव समान हैं; इसलिये ज्ञायकस्वभावकी दृष्टिमें ही सच्चा "समभाव" है; परका आत्मामें "अभाव" है; और जो "विभाव"

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है वह उपाधिभाव होनेसे त्यागने योग्य है। इसके सिवा बाह्यमें "अभाव, अतिभाव और तदभाव" की बात तो संयोगदृष्टिकी बात है, वह कहीं सच्चा मार्ग नहीं है।

इसी प्रकार "वैभव कम हो तो खर्च घटे और खर्च घटे तो पाप कम हो"—यह भी बाह्यदृष्टिकी बात है। निगोदिया जीवोंके पास एक पाईका भी वैभव या खर्च नहीं है; तथापि वे जीव अनंतपापसे महा दुःखी हो रहे हैं। कोई सम्यक्त्वी जीव चक्रवर्ती हो, छह खण्डका राज्यवैभव हो और प्रतिदिन करोड़ों-अरबोंका खर्च होता हो, तथापि उसके पाप अत्यल्प हैं, और वास्तवमें तो अखण्ड चैतन्यवैभवकी दृष्टिमें उसे पाप नहीं है, वह ज्ञायकभावरूप ही उत्पन्न होता है; अल्प रागादि हैं वे तो ज्ञेयमें जाते हैं; उनमें एकतारूपसे ज्ञानी उत्पन्न नहीं होते।

(६२) अज्ञानी विरोधकी पुकार करते हैं तो भले करें; उससे उनकी मान्यता मिथ्या होगी, किन्तु वस्तुस्वरूप नहीं बदल सकता!

आत्मा अपनी क्रमबद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न होता हुआ अपनी पर्यायके साथ अनन्य है और परके साथ अनन्य नहीं है—ऐसा अनेकान्त है; जीव अपनी पर्यायमें तन्मय है इसलिये उसका कर्ता है, और परकी पर्यायमें तन्मय नहीं है इसलिये उसका कर्ता नहीं है—ऐसा अनेकान्तस्वरूप है। आत्मा अपना करे और परका भी करे—ऐसा अज्ञानी मानता है किन्तु वस्तुस्वरूप ऐसा नहीं है। वस्तुका अनेकान्त-स्वरूप ही ऐसी पुकार कर रहा है कि आत्मा अपना ही करता है, परका तीन कालमें नहीं करता। अज्ञानी विरोधकी पुकार करते हैं तो भले करें, किन्तु उससे कहीं वस्तुस्वरूप नहीं बदल सकता। "आप्तमीमांसा" गाथा ११० की टीकामें कहते हैं कि—"वस्तु ही अपना स्वरूप अनेकान्तात्मक आप दिखावै है तो हम कहा करैं? वादी पुकारै है "विरुद्ध है रे....विरुद्ध है...." तो पुकारो किछु निरर्थक पुकारनेमें साध्य है नहीं।"—वस्तु ही स्वयं अपना

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वरूप अनेकान्तात्मक दिखलाती है तो हम क्या करें ? वादी–अज्ञानी पुकारते हैं कि "विरुद्ध है रे....विरुद्ध है"—तो भले पुकारो; उनकी निरर्थक पुकारसे कुछ साध्य नहीं है। अज्ञानी विरोधकी पुकार करें तो उससे कहीं वस्तुस्वरूप बदल नहीं जायेगा। प्रत्येक वस्तु अपने द्रव्य–क्षेत्र–काल–भावरूप स्वचतुष्टयरूप है और परके चतुष्टय-रूप वह नहीं है;—ऐसा ही उसका अनेकान्तस्वरूप है। परके चतुष्टय-रूपसे आत्मा अभावरूप है, तो परमें वह क्या करेगा ? अज्ञानी चिल्ल-पों मचाते हैं तो भले मचायें; किन्तु वस्तुस्वरूप तो ऐसा ही है। उसी प्रकार इस क्रमबद्धपर्यायके सम्बन्धमें भी अज्ञानी अनेक प्रकारसे विरुद्ध मानते हैं; वे विरुद्ध मानते हैं तो भले मानें; उससे उनकी मान्यता मिथ्या होगी, किन्तु वस्तुस्वरूप तो जो है वही रहेगा; वह नहीं बदल सकता। ज्ञायक आत्मा एक साथ तीनकाल–तीनलोकको सम्पूर्णतया जानता है और जगतके समस्त पदार्थ क्रमबद्धपर्यायरूपसे परिणमित होते हैं—ऐसा जो वस्तुस्वरूप है वह किसीसे नहीं बदला जा सकता। ज्ञानी ऐसा वस्तुस्वरूप जानकर, ज्ञायकसन्मुख ज्ञानभावरूपसे उत्पन्न होते हैं, अज्ञानी विपरीत मानकर मिथ्यादृष्टि होता है।

–: चौथा प्रवचन :–

[आश्विन शुक्ला १०, वीर सं० २४८०]

(६३) क्रमबद्धपर्यायमें ज्ञायकसन्मुख निर्मल परिणमनकी धारा प्रवाहित हो–उसीकी मुख्य बात है

इस सर्वविशुद्धज्ञान अधिकारमें मुख्य बात यह है कि—अपने ज्ञायकस्वभावसन्मुख होकर जो विशुद्ध परिणाम उत्पन्न हुए उन्हींकी इसमें मुख्यता है; क्रमबद्धपरिणाममें ज्ञानीको निर्मल परिणाम ही होते हैं। ज्ञानी स्वसन्मुख होकर श्रद्धा–ज्ञान–आनन्दादिके निर्मल

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परिणमनकी नियत धारामें परिणमित होता है, उसको क्रमबद्धपर्यायमें शुद्धताका प्रवाह चलता रहता है।

समस्त पदार्थोंमें मुख्य तो आत्माका ज्ञानस्वभाव है; क्योंकि ज्ञान ही स्व-परको जानता है। ज्ञानस्वभाव न हो तो स्व-परको जानेगा कौन? इसलिये ज्ञानस्वभाव ही मुख्य है। ज्ञानस्वभावके निर्णयमें सात तत्त्वोंका तथा देव-गुरु-शास्त्रका और क्रमबद्धपर्यायका निर्णय समा जाता है। यहां लोकालोकको जाननेके सामर्थ्यरूपसे ज्ञान परिणमित होता है और सामने लोकालोक ज्ञेयरूपसे क्रमबद्ध परिणमित होते हैं; ऐसा ज्ञेय-ज्ञायकका मेल है, किन्तु किसीके कारण कोई नहीं है। सब अपने-अपने क्रमबद्धप्रवाहमें स्वयं परिणमित हो रहे हैं।

(६४) ज्ञायकभावके क्रमबद्धपरिणमनमें सात तत्त्वोंकी प्रतीति

अपने क्रमबद्ध होनेवाले परिणामोंके साथ तन्मय होकर प्रत्येक द्रव्य प्रतिसमय परिणमित हो रहा है; द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव चारों प्रतिसमय नई-नई पर्यायरूपसे परिणमित हो रहे हैं। स्वस्वभावसन्मुख परिणमित आत्मा अपने ज्ञाताभावके साथ अभेद है और रागसे पृथक् है।—ऐसे आत्माकी प्रतीति जीवतत्त्वकी सच्ची प्रतीति है।

मेरा ज्ञायकआत्मा ज्ञायकभावरूपसे क्रमबद्ध उत्पन्न होता हुआ उसीमें तन्मय है, और अजीवमें तन्मय नहीं है—रागमें तन्मय नहीं है;—ऐसी स्वसन्मुख प्रतीतिमें सात तत्त्वोंकी श्रद्धारूप सम्यग्दर्शन आ जाता है।

(१) ज्ञायकभावके साथ जीवकी अभेदता है—ऐसी श्रद्धा हुई उसमें ज्ञायकस्वभावी जीवकी प्रतीति आ गई।

(२) अपने ज्ञायकभावकी क्रमबद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न होनेवाले जीवका अजीवके साथ एकत्व नहीं है; तथा अपनी क्रमबद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न होनेवाले अजीवका जीवके साथ एकत्व नहीं है;—इसप्रकार अजीवतत्त्वकी श्रद्धा भी आ गई।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(३–४) अब ज्ञायकभावरूपसे परिणमित होनेवाला साधक-जीव उस–उस कालके रागादिको भी जानता है; —किन्तु उन रागादिको अपने शुद्ध जीवके साथ तन्मय नहीं जानता, उन्हें आस्रव–बंधके साथ तन्मय जानता है; —इस प्रकार आस्रव और बंध तत्त्वोंकी श्रद्धा भी आ गई।

(५–६) ज्ञायकस्वभावके आश्रयसे अपनेको श्रद्धा-ज्ञान-आनन्द आदिके निर्मल परिणाम होते हैं, वह संवर–निर्जरा है, उसे भी ज्ञानी जानते हैं, और इसलिये संवर–निर्जराकी प्रतीति भी आ गई।

(७) संवर–निर्जरारूप अंशमें शुद्धपर्यायरूपसे तो स्वयं परिणमित होता ही है, और पूर्ण शुद्धतारूप मोक्षदशा कैसी होती है—वह भी प्रतीतिमें आ गया है, इसलिये मोक्षतत्त्वकी श्रद्धा भी आ गई।

—इस प्रकार ज्ञायकभावकी क्रमबद्धपर्यायरूपसे परिणमित जीवको सातों तत्त्वोंकी प्रतीति आ गई है। ("क्रमबद्धपर्यायके निर्णयमें सातों तत्त्वोंकी श्रद्धा और जैनशासन"—इसके लिये देखिये आत्मधर्म अंक ११९–२० प्रवचन चौथा, नं० ९३—९५)

(६५) अज्ञानीके सात तत्त्वोंमें भूल

(१–२) अज्ञानीको अपने ज्ञायकभावकी खबर नहीं है और शरीरादि अजीवकी क्रमबद्धपर्यायोंको मैं बदल सकता हूँ—ऐसा वह मानता है, यानी अजीवके साथ अपनी एकता मानता है इसलिये उसकी जीव–अजीवतत्त्वकी श्रद्धामें भूल है।

(३–४) और जो शुभरागादि पुण्यभाव होते हैं वे आस्रवके साथ तन्मय हैं, उसके बदले उन्हें धर्म मानता है, यानी शुद्ध जीवके साथ एकमेक मानता है इसलिये उसकी आस्रव–बंध तत्त्वोंकी श्रद्धामें भूल है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(५-६) आत्माकी शुद्ध वीतरागीदशा संवर-निर्जरा है, उसके बदले पंचमहाव्रतादिके शुभरागको संवर-निर्जरा मानता है, इसलिये संवर-निर्जरा तत्त्वकी श्रद्धामें भूल है।

(७) और मोक्षका कारण भी उसने विपरीत माना इसलिये मोक्षकी श्रद्धामें उसकी भूल है।

—इस प्रकार अज्ञानीकी सातों तत्त्वोंकी श्रद्धामें भूल है।

(६६) भेदज्ञानका अधिकार

जीव-अजीवकी क्रमबद्धपर्यायको पहिचाने तो उसमें भेद-ज्ञान और सातों तत्त्वोंकी यथार्थ श्रद्धा आ जाती है। इस प्रकार यह भेदज्ञानका अधिकार है।

(६७) "क्रमबद्धपर्याय" की उत्पत्ति अपनी अंतरंग योग्यताके सिवा अन्य किसी बाह्यकारणसे नहीं होती

क्रमबद्धपर्याय कहो या "योग्यता" कहो, तदनुसार ही कार्य होता है। पर्यायकी योग्यता स्वयं ही अन्तरंग कारण है; दूसरा निमित्त तो बाह्य कारण है। अन्तरंग कारणके अनुसार ही प्रत्येक कार्य होता है; बाह्यकारणसे कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती। श्री षट्खण्डागमकी धवल-टीकामें वीरसेनाचार्यदेवने इस सम्बन्धमें अति अलौकिक स्पष्टीकरण किया है।

मोहनीय कर्मके परमाणु उत्कृष्ट ७० कोड़ाकोड़ी सागरोपम तक रहते हैं, जब कि आयुकर्मके परमाणुओंकी स्थिति उत्कृष्ट ३३ सागरोपमकी होती है:—ऐसी ही उस-उस कर्मप्रकृतिकी स्थिति है। कोई पूछे कि मोहकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति ७० कोड़ाकोड़ी सागरकी और आयु कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति मात्र ३३ सागरकी ही:—ऐसा क्यों ? तो षट्खण्डागममें आचार्यदेव कहते हैं कि प्रकृतिविशेष होनेसे उस प्रकारका स्थितिबन्ध होता है; अर्थात् उन-उन विशेषप्रकृतियोंकी वैसी अन्तरंग योग्यता है, और उनकी योग्यतारूप अन्तरंग-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कारणसे ही वैसा होता है।—ऐसा कहकर यहाँ आचार्यदेवने महान सिद्धान्त बतलाया है कि—"सर्वत्र अन्तरंग कारणसे ही कार्यकी उत्पत्ति होती है—ऐसा निश्चय करना चाहिये।"

दूसरा दृष्टान्त लें:—दसवें गुणस्थानमें जीवको लोभका सूक्ष्म अंश और योगका कम्पन है; वहां उसे मोह और आयुको छोड़कर शेष छह कर्मोंका बन्ध होता है; उनमें ज्ञानावरणादिकी अन्तर्मुहूर्तकी स्थिति पड़ती है और सातावेदनीयकी स्थिति १२ मुहूर्तकी; तथा गोत्र और नामकर्मकी स्थिति आठ मुहूर्तकी बँधती है। छहों कर्मोंका बन्ध एक साथ होने पर भी स्थितिमें इस प्रकार अन्तर होता है। स्थितिमें क्यों ऐसा अन्तर होता है?—ऐसा प्रश्न उठने पर आचार्यदेव उत्तर देते हैं कि "प्रकृतिविशेष होनेसे"—अर्थात् उस-उस मुख्य प्रकृतिका अन्तरंग कारण ही वैसा है; और उस अन्तरंग कारणसे ही कार्यकी उत्पत्ति होती है।

ऊपर भिन्न-भिन्न कर्मकी भिन्न-भिन्न स्थितिके सम्बन्धमें कहा, उसी प्रकार "वेदनीय कर्ममें परमाणुओंकी संख्या अधिक, और दूसरे कर्ममें थोड़ी—ऐसा क्यों?"—ऐसा प्रश्न कोई करे तो उसका भी यही समाधान है कि उन-उन प्रकृतियोंका वैसा स्वभाव है। पर्यायका स्वभाव कहो, योग्यता कहो, या अन्तरंग कारण कहो—उसीसे कार्यकी उत्पत्ति होती है। इसके अतिरिक्त बाह्य कारणोंसे कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती। यदि कभी बाह्य कारणोंसे कार्यकी उत्पत्ति होती तो चावलके बीजमेंसे गेहूँकी उत्पत्ति होना चाहिए; किन्तु ऐसा कभी नहीं होता।

निमित्त तो बाह्य कारण है। उस बाह्य कारणके कोई द्रव्य-क्षेत्र-काल या भाव ऐसे सामर्थ्यवान नहीं हैं कि जिनके बलसे नीमके वृक्षसे आमोंकी पैदावार हो, या चावलके पौधेसे गेहूँकी उत्पत्ति हो अथवा जीवमेंसे अजीव हो जाये। यदि बाह्य कारणानुसार कार्यकी उत्पत्ति होती हो, तब तो अजीवके निमित्तसे जीव

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भी अजीवरूप हो जायगा।—किन्तु ऐसा कभी नहीं होता; क्योंकि बाह्यकारणसे कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती; अन्तरंग कारणसे ही कार्यकी उत्पत्ति होती है। (देखो, षट्खण्डागम पुस्तक ३–पृष्ठ १३४)

(६८) निमित्त और नैमित्तिककी स्वतंत्रता

द्रव्यमें किस समय परिणमन नहीं है ?—और जगतमें किस समय निमित्त नहीं है ?—जगतके प्रत्येक द्रव्यमें प्रतिसमय परिणमन हो ही रहा है और निमित्त भी सदैव होता ही है;–तब फिर इस निमित्तके कारण यह हुआ–यह बात कहां रहती है ? और निमित्त न हो तो नहीं हो सकता–यह प्रश्न भी कहाँ रहता है ? यहाँ कार्य होनेमें और सामने निमित्त होनेमें कहीं समयभेद नहीं है। निमित्तका अस्तित्व कहीं नैमित्तिककार्यकी पराधीनता नहीं बतलाता; किन्तु निमित्त किसका ? कहते हैं नैमित्तिककार्य हुआ उसका;—इस प्रकार वह नैमित्तिकको प्रगट करता है।—ऐसी निमित्त –नैमित्तिककी स्वतंत्रता भी जो न जाने उसे स्व–परका भेदज्ञान नहीं है और अंतरमें ज्ञायकस्वभावकी दृष्टि तो उसे होती ही नहीं। यहाँ तो ज्ञायकस्वभावकी दृष्टि होनेसे निमित्तके साथका सम्बन्ध टूट जाता है—ऐसी सूक्ष्म बात है। ज्ञानीकी दृष्टिमें कर्मके साथका निमित्त–नैमित्तिकसम्बन्ध छूट गया है।

(६९) ज्ञायकदृष्टिमें ज्ञानीका अकर्तृत्व

ज्ञायकभावरूपसे उत्पन्न होनेवाले जीवको परके साथ कार्य-कारणपना नहीं है; अर्थात् वह नवीन कर्मबन्धनमें निमित्त नहीं होता और पुराने कर्मोंको निमित्त नहीं बनाता। कोई पूछे कि रागका तो कर्ता है न ? तो कहते हैं कि नहीं; राग पर दृष्टि न होनेसे ज्ञानी रागके कर्ता नहीं हैं; ज्ञायकदृष्टिमें ज्ञायकभावरूप भी उत्पन्न हो—और रागरूप भी उत्पन्न हो ऐसा नहीं होता। ज्ञायक तो ज्ञायक-रूपसे ही उत्पन्न होता है—रागरूपसे उत्पन्न नहीं होता, रागके ज्ञातारूपसे उत्पन्न होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(७०) जीवके निमित्त बिना पुद्गलका परिणमन

प्रश्नः—पुद्गल तो अजीव है, कहीं जीवके निमित्त बिना उसकी अवस्था हो सकती है ?

उत्तरः—भाई ! जगतमें अनन्तानन्त ऐसे सूक्ष्म परमाणु—पृथक् तथा स्कन्धरूप—हैं कि जिनको परिणमनमें कालद्रव्य ही निमित्त है; जीवका निमित्तपना नहीं है। जीवके साथ निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध तो अमुक पुद्गलस्कन्धोंको ही है; किन्तु उसके अनंतगुने परमाणु तो जीवके साथ निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध बिना ही परिणमित हो रहे हैं। एक पृथक् परमाणु एक अंशमें से दो अंश रूखेपन या चिकनेपनरूप परिणमित हो, वहां कौन-सा जीव निमित्त है !—उसे मात्र कालद्रव्य ही निमित्त है। अज्ञानीको संयोगमेंसे ही देखनेकी दृष्टि है इसलिये वह वस्तुके स्वाधीन परिणमनको नहीं देखता। (निमित्त न हो तो ?....क्या निमित्तके बिना कार्य हो सकता है ?—इत्यादि प्रश्नोंके स्पष्टीकरणके लिये अंक नं० ११९-१२० में पहलीबारके प्रवचनोंमें नं० १००-१०१, ११४ और १५० देखिये।)

(७१) ज्ञायकस्वरूपसे उत्पन्न होनेवाला ज्ञानी कर्मका निमित्तकर्ता भी नहीं है

यहाँ तो "सर्वविशुद्धज्ञान" की यानी जीवके स्वभावकी बात चल रही है। जीवका ज्ञानस्वभाव है वह परका अकर्ता है।—निमित्तरूपसे भी वह परका अकर्ता है। परमें यहां मुख्यरूपसे मिथ्यात्वादि कर्मोंकी बात ह। ज्ञानस्वभावरूपसे उत्पन्न होनेवाले जीवको मिथ्यात्वादि कर्मोंका निमित्तकर्तापना भी नहीं है। जीवको अजीवके साथ उत्पाद्य-उत्पादकभावका अभाव है; इसलिये जीव अपने ज्ञायकस्वभावरूपसे उत्पन्न होता हुआ, निमित्त होकर जड़ कर्मको उत्पन्न करे—ऐसा कभी नहीं होता।

सर्व द्रव्योंको दूसरे द्रव्योंके साथ उत्पाद्य-उत्पादकभावका अभाव है। प्रत्येक द्रव्य अपने क्रमबद्धपरिणामका उत्पादक है किन्तु

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दूसरेके परिणामका उत्पादक नहीं है। जैसे कि—कुम्हार अपने हाथकी हलन-चलनरूप अवस्थाका उत्पादक है, किन्तु मिट्टीमेंसे जो घड़ारूप अवस्था हुई उसका वह उत्पादक नहीं है, उसका उत्पादक तो मिट्टी ही है;—मिट्टी स्वयं ही उस अवस्थामें तन्मय होकर घड़ारूपसे उत्पन्न हुई है—कुम्हार नहीं। उसी प्रकार जीव अपने क्रमबद्ध ज्ञानादि परिणामोंका उत्पादक है, किन्तु अजीवका उत्पादक नहीं है। ज्ञानस्वभावमें तन्मय होकर ज्ञानभावरूपसे उत्पन्न होनेवाला जीव अपने ज्ञानपरिणामका उत्पादक है, किन्तु रागादिका उत्पादक नहीं है; क्योंकि वह रागादिके साथ तन्मय होकर उत्पन्न नहीं होता; और रागादिका उत्पादक न होनेसे कर्मबंधनमें वह निमित्त भी नहीं है; इस प्रकार वह जीव अकर्ता ही है। यह सारा विषय अन्तर्दृष्टिका है। अंतरकी ज्ञायकदृष्टिके बिना ऐसा अकर्तापना या क्रमबद्धपना समझमें नहीं आ सकता।

(७२) ज्ञानीको कैसा व्यवहार होता है, और कैसा नहीं होता ?

देखो, तत्त्वार्थसूत्र (अध्याय ५, सूत्र २१) में जीवके परस्पर उपकारकी बात की है। वहाँ उपकारका अर्थ "निमित्त" है। एक जीवने दूसरेका उपकार किया—ऐसा निमित्तसे कहा जाता है। किन्हीं ज्ञानीगुरुके निमित्तसे अपूर्व आत्मज्ञानकी प्राप्ति हो, वहाँ ऐसा कहा जाता है कि—"अहो ! इन गुरुदेवका मुझपर अनंत उपकार हुआ...."यद्यपि गुरु कहीं शिष्यके ज्ञानके उत्पादक नहीं हैं, तथापि वहाँ तो विनयके लिये निमित्तसे गुरुका उपकार कहा जाता है; लेकिन उसी प्रकार यहाँ ज्ञानीको तो मिथ्यात्वादि कर्मोंके साथ ऐसा निमित्त-नैमित्तिकभाव भी लागू नहीं होता। ज्ञानी निमित्त होकर मिथ्यात्वादि कर्मोंकी उत्पत्ति करें—ऐसा नहीं होता। "अहो ! गुरु ही मेरे ज्ञानके उत्पादक हैं, गुरुने ही मुझे ज्ञान दिया, गुरुने ही आत्मा दिया"—ऐसा गुरुके उपकारके निमित्तसे कहा जाता है—ऐसा व्यवहार तो ज्ञानीके होता है, किन्तु निमित्त होकर मिथ्यात्वादि कर्मके उत्पादक हों—ऐसा व्यवहार ज्ञानीको लागू नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होता। ज्ञायकस्वभावकी दृष्टिसे निश्चय अकर्तृत्वको जान लें, तब भूमिकानुसार कैसा व्यवहार होता है उसकी खबर पड़े। ज्ञायकस्वभाव-की दृष्टिके बिना जो अकेले व्यवहारको जानने जाये, वह अंधा है; स्व-परप्रकाशकज्ञान जागृत हुए बिना व्यवहारको जानेगा कौन ? अज्ञानी तो व्यवहारको जानते हुए उसीको आत्माका परमार्थ स्वरूप मान लेता है, इसलिये उसे निश्चय या व्यवहारका सच्चा ज्ञान नहीं होता। ज्ञाता जागृत हुआ वही व्यवहारको यथावत् जानता है।

(७३) "मूलभूत ज्ञानकला" कैसे उत्पन्न होती है ?

मूलभूत भेदज्ञान क्या वस्तु है, उसे लोग भूल गये हैं। पं० बनारसीदासजी कहते हैं कि:—

चेतनरूप अनूप अमूरति, सिद्धसमान सदा पद मेरो।
मोह महातम आतम अंग, कियो परसंग महातम घेरो॥
ज्ञानकला उपजी अब मोहि, कहूँ गुन नाटक आगम केरो।
जासु प्रसाद सधे सिवमारग, वेगि मिटे भववास बसेरो॥११॥

—इसमें कहते हैं कि मेरे ज्ञानकला उत्पन्न हुई; किस प्रकार उत्पन्न हुई ? क्या किसी बाह्यसाधनसे या व्यवहारके अवलम्बनसे ज्ञानकला उत्पन्न हुई ? नहीं; अन्तरमें मेरा स्वरूप सिद्धसमान चैतन्यमूर्ति है—उसीके अवलम्बनसे भेदज्ञानरूपी अपूर्व ज्ञानकला उत्पन्न हुई; जैसे सिद्धभगवान ज्ञायकबिम्ब हैं, उसी प्रकार मेरा स्वभाव भी ज्ञायक ही है;—इसप्रकार ज्ञायकस्वभावकी दृष्टि और अनुभवसे ज्ञानकला उत्पन्न हुई। इसके सिवा अन्य रीति माने तो वह सिद्ध-भगवान या पंचपरमेष्ठीपदको नहीं मानना है।

(७४) "व्यवहारका लोप!!"—लेकिन किस व्यवहारका ? और किसे ?

अरे! इसमें तो व्यवहारका लोप हो जायेगा!!—ऐसा कोई पूछे तो उसका उत्तर:—"भाई! कौनसे व्यवहारका लोप होगा ? प्रथम तो बाह्यमें शरीरादि जड़की क्रिया तो आत्माकी कभी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है ही नहीं; इसलिये उसके लोप होने—न होनेका प्रश्न ही नहीं रहता। अज्ञानीको विपरीतदृष्टिमें कर्मके साथ निमित्त–नैमित्तिकपने–का व्यवहारका रहता है; इस ज्ञायकदृष्टिमें मिथ्यात्वादि कर्मके कर्तृत्वरूप उस व्यवहारका लोप हो जाता है। अज्ञानीको व्यवहारका अभाव नहीं करना है, किन्तु अभी व्यवहार रखना है; इसलिये कर्मके साथ निमित्त–नैमित्तिकसंबंधका व्यवहारसंबंध रखकर उसे संसारमें भटकना है—ऐसा उसका अर्थ हुआ। ज्ञायकस्वभावकी दृष्टिसे कर्मके साथका निमित्त–नैमित्तिकसम्बन्ध तोड़ डाला वहाँ दृष्टि–अपेक्षासे तो सम्यक्त्वी मुक्त हो है। इस प्रकार दृष्टिमें व्यवहारका निषेध करनेके पश्चात् साधकपनेमें जिस–जिस भूमिकामें जैसा–जैसा व्यवहार होता है उसे वह सम्यक्ज्ञान द्वारा जानता है। और पश्चात् भी, ज्ञायकस्वभाव-में एकाग्रता द्वारा शुभराग व्यवहारका अभाव होगा तो वीतरागता होगी। किन्तु व्यवहारके अवलम्बनको ही जिसे रुचि और उल्लास है उसे तो ज्ञायकस्वभावोन्मुख होकर सम्यग्दर्शन करनेका भी अवकाश नहीं है। अन्तरमें ज्ञायकस्वभावके अवलम्बन बिना अपनी क्रमबद्धपर्यायमें सम्यग्दर्शनादि निर्मल पर्यायें नहीं होतीं। ज्ञानी तो अपने ज्ञायकस्वभावके अवलम्बनसे ही सम्यग्दर्शनादि निर्मल क्रमबद्धपर्यायरूप परिणमित होता है, उसका नाम धर्म और मुक्तिका मार्ग है।

–: पाँचवाँ प्रवचन :–

[आश्विन शुक्ला ११, वीर सं० २४८०]

(७५) क्रमबद्धपर्याय कबकी है—और वह कब निर्मल होती है?

आत्मा ज्ञायकस्वभाव है, वह परका अकर्ता है; यह बतलानेके लिये क्रमबद्धपर्यायकी बात चल रही है।

प्रश्नः—यह क्रमबद्धपर्याय कबसे चल रही है?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उत्तरः—अनादिसे चल रही है। जिस प्रकार द्रव्य अनादि है, उसी प्रकार उसकी पर्यायका क्रम भी अनादिसे चल ही रहा है। जितने तीनकालके समय हैं उतनी ही प्रत्येक द्रव्यकी पर्यायें हैं।

प्रश्नः—अनादिकालसे क्रमबद्धपर्याय हो रही है, तथापि अभी निर्मल पर्याय क्यों नहीं हुई ?

उत्तरः—समस्त जीवोंको अनादिसे क्रमबद्धपर्याय हो रही है, तथापि ज्ञायककी ओरके सच्चे पुरुषार्थ बिना निर्मल पर्याय हो जाये—ऐसा कभी नहीं होता। विपरीत पुरुषार्थ हो वहाँ क्रमबद्धपर्याय भी विकारी ही होती है। अज्ञानीको ज्ञायकस्वभावके भान बिना क्रमबद्धपर्यायकी सच्ची प्रतीति नहीं है, और ज्ञायकस्वभावके पुरुषार्थ बिना निर्मल पर्याय नहीं होती। ज्ञानीको अपने ज्ञायकस्वभावकी प्रतीति होनेसे क्रमबद्धपर्यायकी भी सच्ची प्रतीति है, और ज्ञायक-स्वभावसन्मुखके पुरुषार्थ द्वारा उसे निर्मल क्रमबद्धपर्याय होती है। इस प्रकार ज्ञायकस्वभावसन्मुखका पुरुषार्थ करनेका यह उपदेश है —ऐसा समझे वही क्रमबद्धपर्यायको समझा है।

(७६) क्रमबद्धपर्यायके निर्णयका मूल

"क्रमबद्धपर्याय रूपसे उत्पन्न होता है...."

—कौन उत्पन्न होता है ?

"द्रव्य उत्पन्न होता है...."

—कैसा द्रव्य ?

"ज्ञायकस्वभावी द्रव्य।"

जिसे ऐसे द्रव्यस्वभावकी सन्मुखता हो उसीको क्रमबद्धपर्याय यथार्थ समझमें आती है। इस प्रकार ज्ञायकस्वभावकी सन्मुखता ही क्रमबद्धपर्यायके निर्णयका मूल है।

(७७) इस समय पर्यायका परमें "अकर्तृत्व" सिद्ध करनेकी मुख्यता है, परमें निरपेक्षता सिद्ध करनेकी मुख्यता नहीं है

यहाँ, पर्यायका परमें अकर्तृत्व बतलाना है, इसलिये "द्रव्य

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उत्पन्न होता है"—यह बात की है। द्रव्य अपनी क्रमबद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न होता है, और उत्पन्न होता हुआ उस पर्यायमें वह तन्मय है,—इस प्रकार द्रव्य-पर्याय दोनोंकी अभेदता बतलाकर परका अकर्तृत्व सिद्ध किया है।

जब सामान्यधर्म और विशेषधर्म—ऐसे दोनों धर्म ही सिद्ध करना हों तब तो ऐसा कहा जाता है कि पर्याय तो पर्यायधर्मसे ही है—द्रव्यके कारण नहीं है। क्योंकि यदि सामान्य और विशेष (द्रव्य और पर्याय) दोनों धर्मोंको निरपेक्ष न मानकर सामान्यके कारण विशेष मानें तो विशेषधर्मकी हानि होती है; इसलिये पर्याय भी अपनेसे सत् है।—पर्यायधर्मको निरपेक्ष सिद्ध करना हो तब इस प्रकार कहा जाता है।

❀ श्री समन्तभद्रस्वामी "आप्तमीमांसा" में कहते हैं कि—

(श्लोक : ७३) जो धर्म धर्मी आदिके एकान्त करि आपेक्षिक सिद्धि मानिए, तो धर्म धर्मी दोऊ ही न ठहरे। बहुरि अपेक्षा बिना एकान्त करि सिद्धि मानिए तो सामान्य विशेषपणां न ठहरे।

(श्लोक : ७५) धर्म अर धर्मीके अविनाभाव है सो तो परस्पर अपेक्षा करि सिद्ध है; धर्म बिना धर्मी नांहीं। बहुरि धर्म धर्मीका स्वरूप है सो परस्पर अपेक्षा करि सिद्ध नांहीं है, स्वरूप है सो स्वतः सिद्ध है।

❀ प्रवचनसारकी १७२ वीं गाथामें "अलिंगग्रहण" के अर्थमें कहा है कि—"× × × इस प्रकार आत्मा द्रव्यसे न आलिंगत ऐसा शुद्ध पर्याय है।"

❀ फिर १०१ वीं गाथामें कहते हैं कि—अंशी ऐसे द्रव्यके नष्ट होता हुआ भाव, उत्पन्न होता हुआ भाव और अवस्थित रहता हुआ भाव, इन स्वरूप तीन अंश—भंग—उत्पाद-ध्रौव्य-स्वरूप-निज-धर्मों द्वारा आलम्बित एक साथ ही भासित होते हैं।" व्यय नष्ट होते

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हुए भावके आश्रित है; उत्पाद उत्पन्न होते हुए भावके आश्रित है और ध्रौव्य अवस्थित रहते हुए भावके आश्रित है।

❀ फिर श्री अमितगति आचार्यकृत योगसारमें कहते हैं कि:—

ज्ञानदृष्टि चारित्राणि ह्रियंते नाक्षगोचरैः।
क्रियन्ते न च गुर्वाद्यैः सेव्यमानैरनारतं ॥१८॥

उत्पद्यते विनश्यन्ति जीवस्य परिणामिनः।
ततः स्वयं स दाता न परतो न कदाचन ॥१९॥

—इसमें कहते हैं कि आत्मामें ज्ञानादिककी हीनता या अधिकता अपनी पर्यायके कारण ही होती है। ज्ञान-दर्शन-चारित्रका न तो इन्द्रियोंके विषयसे हरण होता है, और न तो गुरुओंकी निरन्तर सेवासे उनकी उत्पत्ति होती है; परन्तु जीव स्वयं परिणमन-शील होनेसे प्रतिसमय उसके गुणोंकी पर्याय बदलती है;-मतिज्ञानादिक पर्यायोंकी उत्पत्ति और विनाश होता रहता है; इसलिये मतिज्ञानादिका उत्पाद या विनाश, परसे भी नहीं है और द्रव्य स्वयं भी उसका दाता नहीं है। प्रतिसमय पर्यायकी योग्यतासे पर्याय होती है; सामान्य द्रव्यको उसका दाता कहना वह सापेक्ष है; पर्यायको निरपेक्षरूपसे देखें तो वह पर्याय स्वयं वैसी परिणमित हुई है। उस समयका पर्यायधर्म ही वैसा है। सामान्यद्रव्यको उसका दाता कहना वह सापेक्ष है; किन्तु द्रव्य-पर्यायकी निरपेक्षताके कथनमें यह बात नहीं आती। निरपेक्षताके बिना एकान्त सापेक्षता हो मानें तो सामान्य-विशेष दो धर्म ही सिद्ध नहीं हो सकते।

❀ प्रवचनसारकी १६ वीं गाथामें आचार्यदेव कहते हैं कि—शुद्धोपयोगसे होनेवाली शुद्धस्वभावकी प्राप्ति अन्य कारकोंसे निरपेक्ष होनेसे अत्यन्त आत्माधीन है। शुद्धोपयोगसे केवलज्ञानकी प्राप्ति हो उसमें आत्मा स्वयमेव छह कारकरूप होता है इसलिये "स्वयंभू" कहा जाता है। द्रव्य स्वयं ही अपनी अनन्त शक्तिरूप सम्पदा-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

से परिपूर्ण है इसलिये स्वयं ही छह कारकरूप होकर अपना कार्य उत्पन्न करनेमें समर्थ है; उसे बाह्यसामग्री कुछ भी सहायता नहीं दे सकती। अहो! प्रत्येक पर्यायके छहों कारक स्वतंत्र हैं।

❀ षट्खण्डागम-सिद्धान्तमें भी कहा है कि—"सर्वत्र अन्तरंगकारणसे ही कार्यकी उत्पत्ति होती है—ऐसा निश्चय करना चाहिये।" वहाँ अन्तरंगकारण कहनेसे पर्यायकी योग्यता बतलाना है। भिन्न-भिन्न कर्मोंके स्थितिबंधमें हीनाधिकता क्यों है?—ऐसे प्रश्नके उत्तरमें सिद्धांतकार कहते हैं कि—प्रकृतिविशेष होनेसे, अर्थात् उस-उस प्रकृतिका वैसा ही विशेषस्वभाव होनेसे, इस प्रकार हीनाधिक स्थितिबन्ध होता है; उसकी योग्यतारूप अन्तरंगकारणसे ही कार्यकी उत्पत्ति होती है; बाह्यकारणोंसे कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती।

—(विशेषके लिये देखिये—इसका ही चौथा प्रवचन, नं० ६७)

❀ (यहाँ समयसार गाथा ३०८ से ३११ में) कहते हैं कि—अन्य द्रव्यसे निरपेक्षरूपसे, स्वद्रव्यमें ही कर्ता-कर्मकी सिद्धि है; और इसलिये जीव परका अकर्ता है।

इस समय इस चालू अधिकारमें पर्यायकी निरपेक्षता सिद्ध करनेकी मुख्यता नहीं है, किन्तु प्रत्येक द्रव्यको अपनी क्रमबद्धपर्यायके साथ तन्मयता होनेसे परके साथ उसे कर्ताकर्मपना नहीं है—इस प्रकार अकर्तृत्व सिद्ध करके, "ज्ञायक आत्मा कर्मका अकर्ता है"—ऐसा बतलाना है। क्रमबद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न होनेवाले द्रव्यको अपनी पर्यायके साथ अभेदता है। ज्ञायकआत्मा स्वसन्मुख होकर निर्मल पर्यायरूपसे उत्पन्न हुआ उसमें वह तन्मय है, किन्तु रागादिमें तन्मय नहीं है, इसलिये वह रागादिका कर्ता नहीं है और कर्मोंका निमित्तकर्ता भी नहीं है। इस प्रकार आत्मा अकर्ता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(७८) साधकको चारित्रकी एक पर्यायमें अनेक बोल; उसमें वर्तता हुआ भेदज्ञान; और उसके दृष्टान्तसे निश्चय-व्यवहारका आवश्यक स्पष्टीकरण

साधकदशामें ज्ञानीको श्रद्धा-ज्ञान-चारित्रादि अनन्त गुणोंकी पर्यायें स्वभावके अवलम्बनसे निर्मल होती हैं। यद्यपि अभी चारित्रगुणकी पर्यायसे अमुक रागादि भी होते हैं, परन्तु ज्ञानीको उनमें एकता नहीं है इसलिये वास्तवमें उनके रागादिका कर्तृत्व नहीं है। चारित्रकी पर्यायमें जो रागादि हैं उन्हें वे आस्रव-बंधका कारण समझते हैं और स्वभावके अवलम्बनसे जो शुद्धता हुई है उसे संवर-निर्जरा मानते हैं;—इस प्रकार आस्रव और संवरको भिन्न-भिन्न जानते हैं।

देखो, ज्ञानीको चारित्रगुणकी एक पर्यायमें संवर-निर्जरा, आस्रव और बंध—यह चारों प्रकार एकसाथ वर्तते हैं, उनमें समय-भेद नहीं है; एक ही पर्यायमें एकसाथ चारों प्रकार वर्तते हैं, तथापि उनमें जो आस्रव है वह संवर नहीं है, और संवर है वह आस्रव नहीं है। और उनके कर्ता-कर्म आदि छहों कारक स्वतन्त्र हैं। जो संवरका कर्तृत्व है वह आस्रवका नहीं है, और जो आस्रवका कर्तृत्व है वह संवरका नहीं है।

आस्रव, बंध, संवर और निर्जरा—ऐसे चारों प्रकार एकसाथ तो चारित्रगुणकी पर्यायमें ही होते हैं, और वह साधकके ही होती है।

अहो, एक पर्यायमें आस्रव और संवर दोनों एकसाथ वर्तें, तथापि दोनोंके छह कारक भिन्न! अभी जो बाह्यकारणोंसे आस्रव या संवर मानता हो, वह अन्तरंग सूक्ष्म भेदज्ञानकी यह बात कहाँसे समझेगा? आस्रवके कारण आस्रव, और संवरके कारण संवर,—दोनों एकसाथ हैं तथापि दोनोंके कारण भिन्न हैं। यदि आस्रवके कारण संवर माने तो वह मिथ्यादृष्टि है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

—इसी प्रकार, व्यवहार और निश्चय दोनों एकसाथ (साधकको) होते हैं; किन्तु वहाँ व्यवहारके कारण निश्चय माने, अथवा ऐसा माने कि व्यवहारसाधन करते करते उससे निश्चय प्रगट हो जायेगा, तो वह भी मिथ्यादृष्टि है, उसे आस्रव और संवर तत्त्वकी खबर नहीं है। व्यवहार रत्नत्रयका जो शुभराग है वह आस्रव है, और निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप जो मोक्षमार्ग है वह संवर-निर्जरा है; आस्रव और संवर दोनों भिन्न-भिन्न तत्त्व हैं, दोनोंके कारण भिन्न हैं। उसके बदले जिसने व्यवहारके कारण निश्चय होना माना, उसने आस्रवसे संवर माना है; आस्रव और संवर तत्त्वको भिन्न न मानकर एक न माना, इसलिये उसके तत्त्वश्रद्धानमें ही भूल है—वह मिथ्यादृष्टि है।

(७९) क्रमबद्धपर्यायकी गहरी बात !

यहाँ तो ज्ञायकदृष्टिकी सूक्ष्म बात है। ज्ञायकस्वभावको दृष्टिमें ज्ञानी निर्मल पर्यायका ही कर्तारूपसे परिणमित होता है। अन्य कारकोंसे निरपेक्ष होकर, अपने-अपने स्वभावके ही छहों कारकोंसे श्रद्धा-ज्ञान-आनन्दादि अनन्तगुण ज्ञायकके अवलम्बनसे निर्मल क्रमबद्धपर्यायरूपसे ज्ञानीके परिणमित हो रहे है; इसका नाम अभूत-पूर्व धर्म है और यही मुक्तिका मार्ग है। ज्ञायकस्वभावके ही अवलम्बन बिना, रागके या व्यवहारके अवलम्बनसे मोक्षमार्ग माने तो वह जीव आत्माके ज्ञायकस्वभावको, केवलीभगवानको या सात तत्त्वोंको नहीं जानता है। निर्मल पर्यायको क्या स्थिति है अर्थात् किस प्रकार क्रमबद्धपर्याय निर्मल होती है उसे भी वह नहीं जानता, इसलिये वास्तवमें वह क्रमबद्धपर्याय नहीं जानता। भाई, यह तो बड़ी गहरी बात है।

(८०) "मोती ढूँढनेवाला" (गोताखोर) गहरे पानीमें उतरता है; उसी प्रकार जो गहराई तक उतरकर यह बात समझेगा वह निहाल हो जायेगा !

प्रश्नः—गहरे पानीमें उतरनेमें डूब जानेका डर है ?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उतरः—इस पानीमें उतरे तो विकारका मैल धुल जाये; इस गहरे पानीमें उतरे बिना वस्तु हाथमें नहीं आ सकती। समुद्रमेंसे मोती ढूंढनेके लिये भी गहरे पानीमें उतरना पड़ता है; किनारे पर खड़े-खड़े हाथ लम्बाये तो मोती हाथमें नहीं आ सकते। उसी प्रकार अन्तरके ज्ञायकस्वभावको और क्रमबद्धपर्यायकी यह बात अन्तरमें गहराई तक उतरे बिना समझमें नहीं आ सकती। यह तो अलौकिक बात प्रगट हो गई है; जो समझेगा वह निहाल हो जायेगा।

"सहेजे समुद्र उल्लसियो त्यां मोती तणाया जाय,
भाग्यवान कर वापरे तेनी मूठी मोतीए भराय।"

यहां "भाग्यवान" अर्थात् अन्तरका पुरुषार्थवान! अन्तर्-स्वभावकी दृष्टिका प्रयत्न करे उसकी मुट्ठी मोतियोंसे भर जाती है अर्थात् निर्मल-निर्मल क्रमबद्धपर्याय होती जाती है; किन्तु जो ऐसा प्रयत्न नहीं करता उसके लिये कहते हैं कि:—

"भाग्यहीन कर वापरे तेनी शंखले मूठी भराय"

समझनेका प्रयत्न करके अन्तरमें न उतरे और यों ही अकेले शुभभावमें रुका रहे तो उसकी "शंखले मूठी भराय" यानी पुण्यबन्ध हो किन्तु स्वभावकी प्राप्ति नहीं हो सकती—धर्मका लाभ नहीं हो सकता।

(८१) केवलज्ञानकी खड़ी

यह तो केवलज्ञानकी खड़ी है आजसे पचास-साठ वर्ष पहले जब पाठशालामें पढ़ने जाते थे तब सबसे पहले "सिद्धो वर्ण समाम्नाय"—ऐसा रटाते थे; यानी "वर्णोच्चारका समुदाय स्वयंसिद्ध —अनादिसे चला आरहा है; वही हम सिखलायेंगे"—ऐसा इसका अर्थ है। उसी प्रकार यहाँ भी जो बात कही जा रही है वह अनादि केवलज्ञानसे सिद्ध हो गई है। और जो खड़ी सिखाते थे उसमें ऐसा भी आता था कि—"कक्का केवलीका"· उसी प्रकार यहाँ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भी यह केवलज्ञानकी खड़ी सिखाई जा रही है। इसे समझे बिना धर्मका प्रारम्भ नहीं होता। "खड़ी" में ही केवलज्ञानकी बात करते हुए "ब्रह्मविलास" में कहा है कि:—

"कक्का" कहे करन वश कीजे, कनक कामनी दृष्टि न दीजे।
करिके ध्यान निरंजन गहिये, "केवलपद" इहि विधिसों लहिये॥

(८२) क्रमबद्धपर्याय ही वस्तुस्वरूप है

देखो, यह क्रमबद्धपर्याय वस्तुका स्वरूप है; ज्ञायकका स्वभाव सब व्यवस्थित जाननेका है और ज्ञेयोंका स्वभाव व्यवस्थित क्रमबद्ध नियमित पर्यायसे परिणमित होनेका है। इसप्रकार इसमें यथार्थ वस्तुस्थितिका निर्णय आ जाता है; इससे विपरीत माने तो वह वस्तुस्वरूपको नहीं जानता।

कोई ऐसा कहे कि—"निश्चयसे तो पर्यायें क्रमबद्ध हैं, किन्तु व्यवहारसे अक्रम हैं"—तो वह बात मिथ्या है।

और कोई ऐसा कहे कि—"केवली भगवानके लिये सब क्रमबद्ध है क्योंकि उन्हें तो तीनकालका पूर्ण ज्ञान है, किन्तु छद्मस्थके लिये अक्रमबद्ध है क्योंकि उसे तीनकालका पूर्ण ज्ञान नहीं है"—तो यह बात भी मिथ्या है। इसकी मान्यता केवलीसे विपरीत हुई। कहीं केवलीके लिये अलग वस्तुस्वरूप हो और छद्मस्थके लिये अलग—ऐसा नहीं है।

(८३) क्रमबद्धपर्यायमें निश्चय-व्यवहारकी संधि, निमित्त-नैमित्तिककी संधि;—आदि सम्बन्धी आवश्यक स्पष्टीकरण और तत्सम्बन्धी स्वच्छन्दियोंकी विपरीत कल्पनाओंका निराकरण

और क्रमबद्धपर्यायमें ऐसा भी नहीं है कि वस्त्रादि सहित दशामें भी मुनित्वका या केवलज्ञानका क्रम आ जाये! आत्मामें मुनिदशाका क्रम हो वहाँ शरीरमें दिगम्बरदशा ही होती है। वस्त्रोंका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

छोड़ना कहीं जीवका कार्य नहीं, किन्तु उस समय ऐसी ही दशा होती है। मुनिदशाका स्वरूप इससे विपरीत माने तो उसे निश्चय-व्यवहारकी कोई खबर नहीं है, तथा क्रमबद्धपर्यायके नियमकी या देव-गुरुके स्वरूपकी खबर नहीं है।

और जहां मुनिपना होता है वहाँ, खड़े-खड़े हाथमें ही आहार लेनेकी क्रिया होती है; पात्रादि में आहारकी क्रिया वहाँ नहीं होती; तथापि वहाँ अजीवकी (हाथकी या आहारकी) वैसी पर्याय जीवने उत्पन्न की है—ऐसा नहीं है; इसी प्रकार सदोष आहारके त्यागादिमें भी समझ लेना चाहिये। उस-उस दशामें ऐसा ही सहज निमित्त-नैमित्तिक मेल होता है, उसका मेल नहीं टूटता; और जीव ज्ञायक मिटकर अजीवका कर्ता भी नहीं होता। ज्ञायकस्वभावका निर्णय करे तो अजीवके कर्तृत्वका सब भ्रम छूट जाये और मिथ्यात्वादि कर्मोंका निमित्तकर्तापना भी न रहे।

ऊपर जैसा मुनिदशाके सम्बन्धमें कहा है वैसा ही समस्त पर्यायोंमें यथायोग्य समझना चाहिये। जैसे कि—सम्यक्त्वीके मांसादिका आहार होता ही नहीं। यहाँ जीवको सम्यग्दर्शनपर्यायका क्रम हो और सामने मांसादिका आहार भी हो—ऐसा कभी नहीं होता। तिर्यंच—सिंह आदिको जब सम्यक्त्व प्राप्त हो जाता है, तब उनको भी मांसादिका आहार छूट ही जाता है;—ऐसा ही उस भूमिकाका स्वरूप है। तथापि परकी क्रियाका उत्पादक आत्मा नहीं है, ज्ञायक तो परका अकर्ता ही है।

"हम तो सम्यक्त्वी हैं, अथवा हम तो मुनि हैं; फिर बाह्यमें भले ही चाहे जैसे आहारादिका योग हो"—ऐसा कहे तो वह मिथ्यादृष्टि स्वच्छन्दी ही है। किस भूमिकामें कैसा व्यवहार होता है, कैसा निमित्त होता है, तथा कैसे निमित्त और कैसा राग छूट जाता है उसकी उसे खबर नहीं है।—ऐसे स्वच्छन्दी जीवको क्रमबद्ध-पर्यायकी प्रतीति या सम्यग्दर्शनादि नहीं होते; फिर मुनिदशा तो होगी ही कहाँसे ?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञायकस्वभावकी दृष्टिमें निर्मल-निर्मल क्रमबद्धपर्यायें होती जाती हैं और उन-उन पर्यायोंमें योग्य निमित्त होता है वह भी क्रमबद्ध है; इसलिये "निमित्त जुटाऊँ"—यह बात नहीं रहती। जैसे कि—"मुनिदशामें निमित्तरूपसे निर्दोष आहार ही होता है, इसलिये निर्दोष आहारका निमित्त जुटाऊँ तो मेरी मुनिदशा बनी रहेगी"—ऐसा कोई माने उसकी निमित्ताधीन दृष्टि है। स्वभावमें एकाग्रतासे मुनिदशा स्थित रहती है उसके बदले संयोगके आधारसे मुनिदशा मानता है उसकी दृष्टि ही विपरीत है। निमित्तको जुटाना नहीं पड़ता, किन्तु सहजरूपसे उसी प्रकारका निमित्त होता है; निमित्त—नैमित्तिकसम्बन्ध सहज ही बन जाता है।—"अपनेको जैसा कार्य करनेकी इच्छा हो, तदनुसार निमित्त जुटाना चाहिये"—ऐसा माने तो उसे ज्ञानस्वभावकी या क्रमबद्धपर्यायकी श्रद्धा कहाँ रही?—उसके तो अभी इच्छाका और निमित्ताका कर्तृत्व विद्यमान है। अरे भाई! निमित्तोंको जुटाना या दूर करना कहाँ तेरे हाथकी बात है? निमित्त तो परद्रव्य है, उसकी क्रमबद्धपर्याय तेरे आधीन नहीं है।

(८४) "ज्ञा...य...क" क्या करता है?

ज्ञायक क्रमबद्ध अपने ज्ञायकप्रवाहकी धारारूपसे उत्पन्न होता है; ज्ञायकरूपसे उत्पन्न होता हुआ वह किसे लेगा? किसे छोड़ेगा? या किसे बदलेगा? ज्ञायक तो ज्ञायकभावका ही कर्ता है, परका अकर्ता है। यदि दूसरेका कर्ता होने जाये तो यहाँ अपनेमें ज्ञायकस्वभावकी दृष्टि नहीं रहती इसलिये मिथ्यादृष्टिपना हो जाता है। ज्ञायक परका ज्ञाता भी व्यवहारसे है; निश्चयसे (तन्मयरूपसे) स्वयं ज्ञायकका ज्ञाता है। ज्ञायकसन्मुख एकाग्रतामें परज्ञेयका भी ज्ञान हो जाता है, किन्तु परका उत्पादक नहीं है। इस प्रकार ज्ञायक आत्मा अकर्ता है। सर्वज्ञभगवान स्व-परके "ज्ञायक" हैं, ज्ञेयोंको जैसेका तैसा प्रसिद्ध करते हैं इसलिये "ज्ञायक" भी हैं, और अपने "कारक" भी हैं; किन्तु परके कारण नहीं हैं। परके ज्ञायक तो हैं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

किन्तु कारक नहीं हैं।—इस प्रकार समस्त आत्माओंका ऐसा ज्ञायक-स्वभाव है और परका अकर्तृत्व है।—यह बात यहाँ समझाई है।

(८५) ज्ञायकस्वभावकी दृष्टिपूर्वक चरणानुयोगकी विधि

शास्त्रोंमें चरणानुयोगकी विधिका अनेक प्रकारसे वर्णन आता है, किन्तु उस सबमें इस ज्ञायकस्वभावकी मूल दृष्टि रखकर समझे तभी समझमें आ सकता है। मुनि-दीक्षा लेनेके भाव हों तब माता-पितादिके निकट जाकर इस प्रकार आज्ञा माँगना चाहिये, उन्हें इस प्रकार समझाना चाहिये, इसका वर्णन प्रवचनसार आदिमें अच्छी तरह किया है; और दीक्षा लेनेवालेको भी ऐसा विकल्प आये और माताके निकट जाकर कहे कि—"हे माताजी! अब मुझे दीक्षाकी आज्ञा दीजिये! हे इस शरीरकी जननी, मेरा अनादिकालीन जनक ऐसा जो आत्मा है उसके निकट जानेकी मुझे अनुमति दीजिये! भगवती दीक्षाकी अनुमति दीजिये!" तथापि अन्तरमें उस समय ज्ञान है कि इस वचनका कर्ता मैं नहीं हूँ; मेरे कारण इस वचनका परिणमन नहीं होता।

माता-पितादिकी आज्ञा लेकर फिर गुरुके निकट—आचार्य मुनिके पास जाकर विनयपूर्वक कहते हैं कि "हे प्रभो! मुझे शुद्धात्म-तत्त्वकी उपलब्धिरूप सिद्धिसे अनुगृहीत कीजिये। हे नाथ! मुझे इस भवबंधनसे छुड़ाकर भगवती मुनिदीक्षा दीजिये!"—तब श्रीगुरु भी उसे—"यह तुझे शुद्धात्मतत्त्वकी उपलब्धिरूप सिद्धि"—ऐसा कहकर दीक्षा देते हैं।—इस प्रकार चरणानुयोगकी विधि है; तथापि वहाँ दीक्षा देनेवाले और लेनेवाले दोनों जानते हैं कि हम तो ज्ञायक हैं, इस अचेतन भाषाके हम उत्पादक नहीं हैं; और इस विकल्पके भी वास्तवमें हम उत्पादक नहीं हैं; हम तो अपने ज्ञायकभावके ही उत्पादक हैं; ज्ञायकभावमें ही हमारी तन्मयता है।—ऐसे यथार्थ भानके बिना कदापि मुनिदशा नहीं होती।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मैं ज्ञायक हूँ–ऐसा अंतर्भान, और क्रमबद्धपर्यायकी प्रतीति होने पर भी, तीर्थंकर भगवान आदिके विरहमें, अथवा पुत्रादिके वियोगमें सम्यक्त्वीकी आँखोंसे आँसू बहें, तथापि उस समय उन आँसुओंके वे उत्पादक नहीं हैं और अन्तरमें शोकके किंचित् परिणाम हुए उनके भी वास्तवमें वे उत्पादक नहीं हैं; उस समय भी वे अपने ज्ञायकस्वभावरूपसे उत्पन्न होते हुए ज्ञाता ही है;—हर्ष–शोकके कर्ता–भोक्ता नहीं हैं। यह अंतर्दृष्टिकी अपूर्व बात है। यह दृष्टि प्रगट किये बिना कभी किसीको धर्मका अंश भी नहीं होता।

(८६) साधकदशामें व्यवहारका यथार्थ ज्ञान

ज्ञायकस्वभाव पर दृष्टि रखकर ज्ञायक जीव व्यवहारको भी यथार्थरूपसे जानता है। क्रमबद्धपर्यायके यथार्थ ज्ञानमें व्यवहारका ज्ञान भी आ जाता है। पंचाध्यायीमें भिन्न प्रकार व्यवहारके चारों प्रकारोंका वर्णन है:—

(१) व्यक्तराग, वह असद्भूत उपचरित व्यवहारनयका विषय,

(२) अव्यक्तराग, वह असद्भूत अनुपचरित व्यवहारनयका विषय;

(३) ज्ञान परको जानता है, वहाँ "परका ज्ञान अथवा रागका ज्ञान" कहना वह सद्भूत उपचरित व्यवहारनयका विषय,

(४) ज्ञान सो आत्मा—ऐसा गुण-गुणी भेद वह सद्भूत अनुपचरित व्यवहारनयका विषय है।

("नयके इन चारों प्रकारोंका स्वरूप तथा ज्ञायकके आश्रयसे—निश्चयके आश्रयसे उनका निषेध" इस सम्बन्धमें पूज्य गुरुदेवके विस्तृत प्रवचनोंके लिये देखिये—आत्मधर्म अंक....९० तथा....९४)

एकाकार ज्ञायकस्वभावकी दृष्टिसे जहाँ निश्चय सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान प्रगट हुए और रागादिसे भिन्नता जानी वहाँ साधक-दशामें उपरोक्तानुसार जो-जो व्यवहार होते हैं उन्हें ज्ञानी अपने ज्ञानका ज्ञेय बनाते हैं। यद्यपि दृष्टि तो ज्ञायकस्वभाव पर ही पड़ी है, किंतु

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पर्यायमें व्यवहार है ही नहीं, राग है ही नहीं—ऐसा नहीं मानते; और उस व्यवहारकी खतौनी परमार्थमें भी नहीं करते;—अर्थात् उस व्यवहारके अवलम्बनसे लाभ नहीं मानते, उसे ज्ञानके ज्ञेयरूपसे ज्योंका त्यों जानते हैं। यहाँ ज्ञायकसन्मुख ज्ञानके क्रममें रहकर रागके क्रमको भी यथावत् जानते ही हैं; किन्तु ज्ञायककी अधिकतामें उस रागके भी अकर्ता हैं;—ऐसे ज्ञायकस्वभावकी दृष्टि धर्मकी मूल नींव है।

(यहाँ क्रमबद्धपर्यायके प्रवचन पूर्ण हुए; इन प्रवचनोंके अरसेमें तत्संबन्धी बहुत-कुछ चर्चा हुई थी; वह भी उपयोगी होनेसे यहाँ दी जा रही है।)

(८७) "केवलीके ज्ञानमें सब नोट है", परको जाननेकी ज्ञानमें सामर्थ्य है, वह कहीं अभूतार्थ नहीं है

यह क्रमबद्धपर्याय तो वस्तुका ही स्वरूप है; उसे सिद्ध करनेके लिये केवलज्ञानकी दलील देकर ऐसा सिद्ध किया जाता है कि—सर्वज्ञदेवने केवलज्ञानमें एकसमयमें तीनकाल-तीनलोकके स्व-पर समस्त पदार्थोंको प्रत्यक्ष देखा है; और तदनुसार ही परिणमन होता है।

तब इसके समक्ष कुछ लोग ऐसा भी कहते हैं कि—"केवली भगवान परको तो व्यवहारसे जानते हैं, और व्यवहार तो अभूतार्थ है—ऐसा शास्त्रमें कहा है; इसलिये केवली परको नहीं जानते।" —ऐसा कहकर वे इस क्रमबद्धपर्यायका विरोध करना चाहते हैं। किन्तु वास्तवमें तो वे केवलज्ञानकी और शास्त्रके कथनकी मजाक उड़ाते हैं; शास्त्रकी ओट लेकर अपने स्वच्छन्दकी पुष्टि करना चाहते हैं। अरे भाई! केवलीको स्व-परप्रकाशक पूर्ण ज्ञानसामर्थ्य प्रगट हो गया है; वह ज्ञान कहीं अभूतार्थ नहीं है। क्या ज्ञानका जो परप्रकाशक सामर्थ्य है वह कहीं अभूतार्थ है?— नहीं। जिस प्रकार समयसारकी ७ वीं गाथामें दर्शन-ज्ञान-चारित्र

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

के गुणभेदको अभूतार्थ कहा—तो क्या आत्मामें वे गुण हैं ही नहीं ?—हैं तो अवश्य। उसी प्रकार केवली भगवान परको जानें—उसे व्यवहार कहा है; तो क्या परका ज्ञातृत्व नहीं है ? परको भी जानते तो हैं ही। केवली परको जानते ही नहीं—ऐसा नहीं है। केवलीको परका आश्रय नहीं है—परमें तन्मय होकर नहीं जानते—परसन्मुख होकर नहीं जानते—इसलिये परप्रकाशकपनेको व्यवहार कहा है। परप्रकाशकपनेका ज्ञानका जो सामर्थ्य है वह कहीं व्यवहार नहीं है; वह तो निश्चयसे अपना स्वरूप है। भगवानके केवलज्ञानमें त्रिकालके पदार्थोंकी नोंध है। पं० राजमलजी समयसार-कलशकी टीकामें कहते हैं कि—संसारी जीवोंमें एक भव्यराशि है और एक अभव्यराशि है; उसमें अभव्यराशि जीव तो तीनकालमें मोक्ष प्राप्त नहीं करते; भव्य जीवोंमेंसे कुछ जीव मोक्ष जाने योग्य हैं और उनका मोक्षमें पहुँचनेका काल-परिमाण है अर्थात् यह जीव इतना काल व्यतीत होनेपर मोक्ष जायेगा—ऐसी केवलज्ञानमें नोंध है—"यह जीव इतना काल वीत्या मोक्ष जासै—इसौ न्यौधु केवलज्ञान माँहे छै।" (पृष्ठ १०) केवली भगवानके ज्ञानमें तीनकाल-तीनलोककी सारी नोंध है। जिस जीवको अंतर्स्वभावके ज्ञानका पुरुषार्थ हुआ उसे अल्पकालमें मोक्ष होना है—ऐसा केवलज्ञानकी नोंधमें आ गया है। जिसके ज्ञानमें सर्वज्ञ भगवान विद्यमान हो गये उसकी मुक्ति भगवानके ज्ञानमें लिखी गई।

प्रश्नः—केवली भगवानको विकल्प तो नहीं है, तब फिर विकल्पके बिना परको किस प्रकार जानेंगे ?

उत्तरः—परको जानते हुए केवलीको कहीं परकी ओर उपयोग नहीं डालना पड़ता; किन्तु अपना ज्ञानसामर्थ्य ही ऐसा स्व-परप्रकाशक विकसित हो गया है कि—स्व-पर सब एकसाथ विकल्प बिना—ज्ञानमें ज्ञात हो जाता है। परको जानना वह कहीं विकल्प नहीं है। (ज्ञानको सविकल्प कहा जाता है उसमें अलग अपेक्षा है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यहाँ रागरूप विकल्पकी बात है।) केवली भगवानको ज्ञानका सामर्थ्य ही ऐसा परिणमित हो रहा है कि रागके विकल्प बिना ही स्व-पर सब प्रत्यक्ष ज्ञात होता है।

अहो, आत्माका ज्ञानस्वभाव है, उस स्वभावमेंसे जो केवल-ज्ञान विकसित हुआ उसका अचिंत्य सामर्थ्य है। वह केवलज्ञान—

अस्पष्ट नहीं जानता।

विकल्पसे नहीं जानता।

परसन्मुख होकर नहीं जानता।

तथापि जाने बिना कुछ भी नहीं रहता।

—ऐसा केवलज्ञान है।

ऐसे केवलज्ञानको यथार्थरूपसे पहिचाने तो आत्माके ज्ञायकस्वभावकी सन्मुखता होकर सम्यग्दर्शन हुए बिना न रहे। प्रवचनसारकी ८० वीं गाथामें आचार्य भगवानने यही बात अलौकिक रीतिसे कही है।

(८८) भविष्यकी पर्याय होनेसे पूर्व केवलज्ञान उसे किस प्रकार जानेगा?—उसका स्पष्टीकरण

प्रश्नः—भविष्यकी जो पर्यायें नहीं हुई हैं, किन्तु होनेवाली हैं, उन्हें ज्ञान वर्तमानमें जान सकता है?

उत्तरः—हाँ, केवलज्ञान एक समयकी वर्तमान पर्यायमें तीनों-कालका सब कुछ जान लेता है।

प्रश्नः—तो क्या भविष्यमें जो पर्याय होनेवाली है उसे वर्तमानमें प्रगटरूपसे जानता है?

उत्तरः—भविष्यकी पर्यायको भविष्यरूपसे जानता है, किन्तु वह पर्याय वर्तमानमें प्रगटरूपसे वर्तती है—ऐसा नहीं जानता। जानता तो सब वर्तमानमें है, किन्तु जैसा हो वैसा जानता है। भविष्यमें जो होना हो उसे वर्तमानमें भविष्यरूपसे जानता है। स्पष्टरूपसे जानता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रश्नः—ज्ञानमें भविष्यकी पर्यायको भी माननेकी शक्ति है, इसलिये जब वह पर्याय होगी तब ज्ञान उसे जानेगा,—इसप्रकार है ?

उत्तरः—नहीं, ऐसा नहीं है। भविष्यको भी जाननेका कार्य तो वर्तमानमें ही है; वह कहीं भविष्यमें नहीं है। जैसे कि—किसी जीवको अमुक समय भविष्यमें केवलज्ञान होना है, तो ज्ञान वर्तमानमें ऐसा जानता है कि इस जीवके इस समय ऐसी पर्याय होगी; किन्तु ज्ञान कहीं ऐसा नहीं जानता कि इस जीवको इस समय केवलज्ञान पर्याय व्यक्तरूपसे वर्तती है! और भविष्यकी वह पर्याय होगी तब ज्ञान उसे जानेगा—ऐसा भी नहीं है। भविष्यकी पर्यायको भविष्यकी पर्यायरूपसे वर्तमानमें ही ज्ञान जानता है। जिस प्रकार भूतकालकी पर्याय वर्तमानमें वर्तती न होने पर भी वर्तमानज्ञान उसे जानता है, उसी प्रकार भविष्यकी पर्याय वर्तमानमें वर्तती न होने पर भी ज्ञान उसे प्रत्यक्ष जानता है।

(८९) केवलीको क्रमबद्ध, और छद्मस्थको अक्रम—ऐसा नहीं है

प्रश्नः—"सब क्रमबद्ध है"—यह बात केवली भगवानके लिये बराबर है। केवली भगवानने सब जाना है, इसलिये उनके लिये तो सब क्रमबद्ध ही है, किन्तु छद्मस्थको तो पूर्णज्ञान नहीं है, इसलिये उसके लिये सब क्रमबद्ध नहीं है; छद्मस्थके तो फेरफार भी हो सकता है—इस प्रकार कोई कहे तो वह बराबर है ?

उत्तरः—नहीं; यह बात बराबर नहीं है। वस्तुस्वरूप सबके लिये एक-सा ही है। केवलीके लिये अलग वस्तुस्वरूप और छद्मस्थके लिये अलग—ऐसा दो प्रकारका वस्तुस्वरूप नहीं है। केवलीके लिये सब क्रमबद्ध और छद्मस्थके लिये अक्रमबद्ध अर्थात् छद्मस्थ उसमें उल्टा-सीधा भी कर सकता है—ऐसा माननेवालेको क्रमबद्ध-पर्यायके स्वरूपकी खबर नहीं है। केवली भगवान भले ही पूर्ण प्रत्यक्ष जानें और छद्मस्थ पूर्ण प्रत्यक्ष न जानें, तथापि वस्तुस्वरूपका (क्रमबद्ध-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पर्याय आदिका) निर्णय तो दोनोंको एक-सा ही है। केवलीभगवान सर्व द्रव्योंकी क्रमबद्धपर्याय होना जानें, और छद्मस्थ उनका अक्रमसे होना माने, तब तो उसके निर्णयमें ही विपरीतता हुई। मैं ज्ञायक हूँ और पदार्थोंकी क्रमबद्ध अवस्था है—ऐसा निर्णय करके ज्ञायक-स्वभावसन्मुख परिणमित होनेवाले ज्ञानीको तो ज्ञाताभावका ही परिणमन विकसित होते-होते अनुक्रमसे केवलज्ञान हो जाता है। परन्तु अभी जिसके निर्णयमें ही भूल है उसके ज्ञातापनेका परिणमन नहीं होता, किन्तु विकारका ही कर्तापना रहता है।

(९०) ज्ञान और ज्ञेयका मेल, तथापि दोनोंकी स्वतंत्रता

प्रश्न:—केवली भगवानने जैसा जाना उसी प्रकार इस जीवको परिणमित होना पड़ता है? या जैसा यह जीव परिणमित हो वैसा केवली भगवान जानते हैं?

उत्तर:—पहली बात यह है कि केवलज्ञानका निर्णय करने-वालेने "ज्ञानशक्ति" के अवलम्बनसे वह निर्णय किया है, इसलिये उसमें निर्मल परिणमन (सम्यग्दर्शनादि) हो गया है और केवली-भगवानने भी वैसा ही जाना है।

केवली भगवानका ज्ञान और इस जीवका परिणमन—इन दोनोंका ज्ञेय-ज्ञायकपनेका मेल होने पर भी कोई किसीके आधीन नहीं है। केवली भगवानने तो सर्व पदार्थोंकी तीनोंकालकी अवस्थायें एक साथ जान ली हैं, और पदार्थमें परिणमन तो एकके बाद एक अवस्थाका होता है। केवलीने जाना इसलिये पदार्थको वैसा परिणमित होना पड़ता है, ऐसा नहीं है; अथवा पदार्थ वैसा परिणमित होता है इसलिये केवली वैसा जानते हैं—ऐसा भी नहीं है। ऐसा होने पर भी केवलज्ञान और ज्ञेयकी संधि नहीं टूटती; केवलज्ञानने जाना उससे दूसरे प्रकारसे वस्तु परिणमित हो, अथवा जो वस्तु परिणमित हो उससे दूसरे प्रकारसे केवलज्ञान जाने ऐसा कभी नहीं होता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इसमें, केवलज्ञानकी अर्थात् आत्माके ज्ञायकस्वभावकी महत्ता समझना चाहिये और ज्ञायकसन्मुख होकर परिणमित होना चाहिये; वही मूलभूत वस्तु है।

(९१) आगमको जानेगा कौन ?

प्रश्नः—यह पर्यायकी बात आप जैसी कहते हैं वैसी आगममें नहीं मिलती।

उत्तरः—अरे भाई! अभी तुझे सर्वज्ञका तो निर्णय नहीं है; तब फिर सर्वज्ञके निर्णय बिना, "सर्वज्ञके आगम कैसे होते हैं और उनमें क्या कहा है" उसकी तुझे क्या खबर पड़ेगी? गुरुगमके बिना, अपनी विपरीतदृष्टिसे आगमके यथार्थ अर्थ भासित हों ऐसा नहीं है। आगम कहता है कि आत्माका ज्ञानस्वभाव है और उसमें सर्वज्ञताका सामर्थ्य है। यदि ऐसे ज्ञानस्वभावको और सर्वज्ञताको न जाने तो उसने आगमको जाना ही नहीं है। और यदि ऐसे ज्ञान-स्वभावको माने तो क्रमबद्धपर्यायका निर्णय उसमें आ ही जाता है।

जो क्रमबद्धपर्यायको सीधी रीतिसे न समझे उसे समझानेके लिये यह केवलज्ञानकी दलील दी जाती है; बाकी वस्तु तो स्वयं ही वैसे स्वभाववाली है; क्रमबद्धपर्याय वह वस्तुका ही स्वरूप है, वह कहीं केवलज्ञानके कारण नहीं है।

(९२) केवलज्ञानके और क्रमबद्धपर्यायके निर्णय बिना धर्म क्यों नहीं ?

प्रश्नः—आप केवलज्ञान और क्रमबद्धपर्याय पर इतना अधिक भार देते हैं, तो क्या सर्वज्ञके निर्णय बिना या क्रमबद्धपर्यायके निर्णय बिना धर्म नहीं हो सकता ?

उत्तरः—नहीं, भाई! यह केवलज्ञानका या क्रमबद्धपर्यायका निर्णय तो ज्ञानस्वभावके अवलम्बनसे होता है और इसके बिना

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कभी धर्म नहीं होता। ज्ञानस्वभाव कहो, केवलज्ञान कहो या क्रमबद्ध-पर्याय कहो,—इन तीनोंमेंसे एकके निर्णयमें दूसरे दो का निर्णय भी आ जाता है; और यदि केवलज्ञानको या क्रमबद्धपर्यायको न माने तो वह वास्तवमें आत्माके ज्ञानस्वभावको ही नहीं मानता। यह तो जैनधर्मकी मूल वस्तु है; इसके निर्णय बिना धर्मका प्रारम्भ हो ऐसा कभी नहीं होता। स्वसन्मुख होकर "मैं ज्ञान हूँ"—ऐसी ज्ञाताबुद्धि होनेसे सर्वज्ञताका निर्णय भी हो गया; क्रमबद्धपर्यायका भी निर्णय हो गया, कहीं फेरफार करनेकी बुद्धि न रही;—इसका नाम धर्म है।

(९३) तिर्यंच–सम्यक्त्वीको भी क्रमबद्धपर्यायकी प्रतीति

प्रश्नः—तिर्यंचमें भी कोई-कोई जीव (मेंढक आदि) सम्यक्त्वी होते हैं, तो क्या उन तिर्यंच सम्यक्त्वियोंको भी ऐसी क्रम-बद्धपर्यायकी श्रद्धा होती है?

उत्तरः—हाँ; "क्र....म....ब....द्ध" ऐसे शब्दकी भले ही उसे खबर न हो, किन्तु "मैं ज्ञायक हूँ, मेरा आत्मा सब जाननेके स्वभाव-वाला है"—ऐसे अंतर्वेदनमें क्रमबद्धपर्यायकी प्रतीति भी उसे आ जाती है; क्रमबद्धपर्यायकी प्रतीतिका जो कार्य है वह कार्य उसे हो ही रहा है। उसका ज्ञान ज्ञातारूप ही परिणमित होता है। परका कर्ता या रागका कर्ता—ऐसी बुद्धि उसके नहीं है; ज्ञाताबुद्धि ही है और उसमें क्रमबद्धपर्यायकी प्रतीति समा जाती है। ज्ञानपर्यायको अन्तरोन्मुख करके "मैं ज्ञायकभावरूप जीवतत्त्व हूँ"—ऐसी प्रतीति हुई है वहाँ क्रमबद्धपर्यायका ज्ञातृत्व ही है।

और देखो, उन मेंढक या चिड़िया आदि तिर्यंचोंको सम्यग्दर्शन होनेसे स्वसन्मुख होकर संवर-निर्जरादशा प्रगट हुई है, किन्तु अभी केवलज्ञान नहीं हुआ है। पर्यायमें अभी अल्पता और राग भी है, तथापि उस पर्यायको जानते हुए उन्हें ऐसा विकल्प या संदेह नहीं उठता कि "इस समय ऐसी पर्याय क्यों? और केवलज्ञानपर्याय क्यों नहीं?" ऐसा ही उस पर्यायका क्रम है–ऐसा जानते हैं। केवलज्ञान

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं है इसलिये कहीं सम्यग्दर्शनमें शंका नहीं पड़ती। इसी प्रकार उस पर्यायमें राग है उसे भी जानते हैं, किन्तु उस रागको जानते हुए वे तिर्यंच सम्यक्त्वी उसका स्वभावरूपसे वेदन नहीं करते, रागसे भिन्न ज्ञायकस्वभावरूप ही स्वयंका अनुभव करते हैं। राग है उतने अंशमें उसका वेदन है; किन्तु ज्ञायकदृष्टिमें उसका वेदन है ही नहीं। ज्ञायकस्वभावकी दृष्टिसे ज्ञान समाधानरूपसे वर्तता है; कहीं परको इधर-उधर करनेकी मिथ्याबुद्धि नहीं होती, यही क्रमबद्धपर्यायकी प्रतीतिका फल है।

—इस प्रकार, जो भी सम्यक्त्वी जीव हैं उन सबको अपने ज्ञायकस्वभावके निर्णयमें, सर्वज्ञकी और क्रमबद्धपर्यायकी प्रतीति भी साथमें आ ही जाती है;—इससे विपरीत माननेवालेको सम्यग्दर्शन नहीं होता।

सम्यग्दर्शन कहो, "के....व....ल" ज्ञान (अर्थात् रागसे भिन्न ज्ञान) कहो, भेदज्ञान कहो, क्रमबद्धपर्यायका निर्णय कहो, जैनशासन कहो, या धर्मका प्रारम्भ कहो—वह सब इसमें एकसाथ आ जाता है।

(९४) क्रमबद्धपर्यायके निर्णयका फल—"अबंधता," "ज्ञायकको बंधन नहीं है"

जीव और अजीव दोनोंकी क्रमबद्धपर्याय अपने-अपनेसे स्वतन्त्र है; ज्ञायकस्वरूप जीव अपने ज्ञायकपनेकी क्रमबद्धपर्यायमें परिणमित होता हुआ उसका ज्ञाता है, किन्तु परका अकर्ता है। इस प्रकार अकर्तारूपसे परिणमित होते हुए ज्ञायकको बन्धन होता ही नहीं।

—ऐसा होने पर भी, अज्ञानीको बन्धन क्यों होता है? आचार्यदेव कहते हैं कि यह उसके अज्ञानकी महिमा प्रगट है; उसके अज्ञानके कारण ही उसे बन्धन होता है, ज्ञायकस्वभावकी महिमा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जाने तो बन्धन न हो। ज्ञायकस्वभावको महिमा भूलकर जो परका कर्ता होता है उसके अज्ञानकी महिमा प्रगट हुई है और इसीसे उसे बंधन होता है।

ज्ञायकस्वभावरूप परिणमित होनेवाला जीव, मिथ्यात्वादि कर्मके बन्धनमें निमित्त भी नहीं होता; निमित्तरूपसे भी वह मिथ्यात्वादिका अकर्ता ही है।

"अजीवकी क्रमबद्धपर्याय भी स्वतन्त्र है; इसलिये उसमें जो मिथ्यात्वकर्मरूपसे परिणमित होनेका उपादान हो तो हमें भी मिथ्यात्वभाव करके उसे निमित्त होना पड़ेगा!"—ऐसी जिसकी दृष्टि है उसके अज्ञानकी महिमा प्रगट है अर्थात् वह महान अज्ञानी है। ज्ञायकस्वभावकी या क्रमबद्धपर्यायकी उसे खबर नहीं है। ज्ञानीने तो ज्ञानस्वभाव पर दृष्टि रखकर क्रमबद्धपर्यायका निर्णय किया है; इसलिये उसकी दृष्टिका परिणमन तो स्वसन्मुख हो गया है; कर्मको निमित्त होने पर उसकी दृष्टि नहीं है। मिथ्यात्वादि कर्म उसके बँधता ही नहीं है।

क्रमबद्धपर्यायका यथार्थ निर्णय करनेवालेको अपनेमें मिथ्यात्वका क्रम नहीं होता—यह बात पहले की, और निमित्तरूपसे अजीवमें भी उसे मिथ्यात्वका क्रम नहीं होता।

"जड़में मिथ्यात्वका क्रम हो तो जीवको मिथ्यात्व करना पड़ता है"—यह दलील तीव्र मिथ्यादृष्टि अज्ञानीकी है, वह अजीवको ही देखता है, किन्तु जीवको नहीं देखता, जीवके स्वभावका निर्णय करके जीवकी ओरसे न लेकर अजीवकी दृष्टिकी ओरसे लेता है वह विपरीतदृष्टि है—उसके अज्ञानकी गहनता है। क्रमबद्धके निर्णयका फल तो स्वोन्मुख होना आता है, स्वभावोन्मुख होकर ज्ञायक हुआ उसे मिथ्यात्व नहीं होता और मिथ्यात्वकर्मका निमित्तकर्तापना भी उसके नहीं रहता; अजीवमें दर्शनमोह होनेका क्रम उसके लिये होता ही

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं। इस प्रकार कर्मके साथका निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध भी उसको छूट गया है।

आत्मा निश्चयसे अजीवका कर्ता नहीं है; इसलिये कोई ऐसा कहे कि—"पुद्गलके मिथ्यात्वका निश्चयसे अकर्ता किन्तु उसमें मिथ्यात्वकर्म बंधे तब जीव मिथ्यात्व करके उसका निमित्तकर्ता होता है अर्थात् व्यवहारसे उसका कर्ता है।—इस प्रकार निश्चयसे अकर्ता और व्यवहारसे कर्ता—ऐसा हो तो ?"

—तो यह भी मिथ्यादृष्टिकी ही बात है। ज्ञायकस्वभावकी दृष्टिमें कर्मका निमित्तकर्तापना आता ही नहीं। मिथ्यात्वादि कर्मोंका व्यवहार कर्तापना मिथ्यादृष्टिको ही लागू होता है, ज्ञानीको वह किसी प्रकार लागू नहीं होता। यहाँ ज्ञायकस्वभावकी दृष्टि करके स्वयं ज्ञायकभावसे (सम्यग्दर्शनादिरूपसे) परिणमित हुआ, वहाँ निश्चित् हो गया कि मेरी पर्यायमें मिथ्यात्व होनेकी योग्यता नहीं है, और मेरे निमित्तसे पुद्गलमें मिथ्यात्वकर्म हो—ऐसा भी हो ही नहीं सकता—यह भी निर्णय हो गया। अहो ! अंतरमें ज्ञायकस्वभावका निर्णय करके क्रमबद्धपर्यायका ज्ञाता हुआ, अन्तरोन्मुख होकर ज्ञायक हुआ....अकर्ता हुआ, वह अब बन्धनका कर्ता हो यह कैसे हो सकता है ? नहीं ही हो सकता। ज्ञायकभाव बन्धनका कर्ता हो ही नहीं सकता। वह तो निजरससे—ज्ञायकभावसे शुद्धरूप ही परिणमित होता है—बन्धनके अकर्तारूपसे ही परिणमित होता है। इस प्रकार ज्ञायकको बन्धन होता ही नहीं है। ऐसा अबन्धपना क्रमबद्धपर्यायके निर्णयका फल है। अबन्धपना कहो या मोक्षमार्ग कहो, या धर्म कहो—उसकी यह रीति है।

(९५) स्वच्छन्दी जीव इस बातके श्रवणका भी पात्र नहीं है

जीव ज्ञायकस्वभाव है; उस ज्ञायकको क्रमबद्धपर्यायमें विकारके कर्तृत्वकी बात नहीं आती। क्योंकि ज्ञाताके परिणमनमें विकार कहाँसे आया ? भाई ! अपने ज्ञायकत्वका निर्णय करके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पहले तू ज्ञाता हो, तो तुझे क्रमबद्धपर्यायकी खबर पड़ेगी। ज्ञाताके क्रममें राग आता ही नहीं; वह ज्ञेयरूपमें भले हो। वास्तवमें तो रागको ज्ञेय करनेकी भी मुख्यता नहीं है; अन्तरमें ज्ञायकस्वभावको ही ज्ञेय बनाकर उसमें अभेद हो—उसीकी मुख्यता है। ज्ञायकस्वभावको ज्ञेय बनाये बिना, रागका यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता।

क्रमबद्धपर्यायका नाम लेकर रागादिका भय न रखें, और स्वच्छन्दरूपसे विषय-कषायोंमें वर्ते—ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवोंको यहाँ बात ही नहीं है; वह तो इस बातके श्रवणका पात्र नहीं है। क्रमबद्धकी ओट लेकर स्वच्छन्दरूपसे वर्ते, तो न रहा पापका भय, और न रहा सत्यके श्रवणका भी प्रेम; इसलिये सत्यके श्रवणकी भी योग्यता न हो वहाँ ज्ञानके परिणमनकी तो योग्यता ही कहाँसे हो? जो स्वच्छन्दको छुड़ाकर मोक्षमार्गमें ले जानेकी बात है, उसीकी ओटमें जो ढिठाईसे स्वच्छन्दको पुष्टि करता है उसे आत्माकी दरकार नहीं है, भवभ्रमणका भय नहीं है।

(९६) सम्यग्दर्शन कब होता है?—तो कहते हैं पुरुषार्थ करे तब

कुछ अज्ञानी इस बातको समझे बिना ऐसा कहते हैं कि—हमें तो क्रमबद्धपर्यायमें सम्यग्दर्शनादि निर्मल पर्यायें होना होंगीं तो हो जायेंगीं।—किन्तु उनकी बात विपरीत है, वे सिर्फ परकी ओर देखकर क्रमबद्धपर्यायकी बात करते हैं, वह ठीक नहीं है। भाई रे, तू अपने ज्ञायकस्वभावकी ओरका पुरुषार्थ करेगा तभी तेरी निर्मल पर्याय होगी। क्रमबद्धपर्यायकी समझका फल तो ज्ञायकस्वभावोन्मुख होना है; जो ज्ञायकस्वभावोन्मुख हुआ है उसके तो निर्मल पर्यायका क्रम हो ही गया है; और जिसकी उन्मुखता ज्ञायकस्वभावकी ओर नहीं है वह वास्तवमें क्रमबद्धपर्यायको जानता ही नहीं है। अन्तरोन्मुख होकर ज्ञायकस्वभाव पर जोर देते हुए भगवानने क्रमबद्धपर्यायमें जिस निर्मल पर्यायका होना देखा है वही पर्याय आ खड़ी होती है। किसी भी जीवको ज्ञायकस्वभावकी ओरके पुरुषार्थ बिना निर्मल पर्याय होती है—ऐसा भगवानने नहीं देखा है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

"समस्त पर्यायें क्रमबद्ध हैं इसलिये जैसा क्रम होगा वैसी पर्यायें होती रहेंगी, अब अपनेको पुरुषार्थकी कोई आवश्यकता नहीं है"— ऐसा कोई माने तो उससे कहते हैं कि भाई! ज्ञायककी ओरके पुरुषार्थके बिना तू क्रमबद्धका ज्ञाता कैसे हुआ? अपने ज्ञायकस्वभावके निर्णयका प्रयत्न किये बिना क्रमबद्धपर्यायको तू किस प्रकार समझा? स्वसन्मुख होकर ज्ञायकस्वभावका निर्णय करे उसीको क्रमबद्धपर्याय समझमें आती है और उसकी पर्यायमें निर्मलताका क्रम प्रारम्भ हो जाता है। इस प्रकार, स्वसन्मुख पर्याय और क्रमबद्धपर्यायके निर्णयकी सन्धि है।

(९७) क्रमबद्धपर्याय और उसका कर्तृत्व

प्रश्नः—क्रमबद्धपर्याय है उसमें कर्तृत्व है या नहीं?

उत्तरः—हाँ, जिसने स्वसन्मुख होकर अपने ज्ञायकस्वभावका निर्णय किया है, उसे अपनी निर्मल क्रमबद्धपर्यायका कर्तृत्व है; और जिसके ज्ञायकस्वभावकी दृष्टि नहीं है तथा परमें कर्तृत्वबुद्धि है उसे अपनेमें मिथ्यात्व आदि मलिन भावोंका कर्तृत्व है।

अजीवको उस अजीवकी क्रमबद्धअवस्थाका कर्तृत्व है क्रमबद्धपर्यायका निर्णय करके जो जीव ज्ञायकस्वभावकी ओर ढल गया है उसे विकारका कर्तृत्व नहीं है; वह तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप निर्मल ज्ञानभावका ही कर्ता है।

(९८) सूक्ष्म-किन्तु समझमें आ जाये ऐसा

प्रश्नः—आप कहते हैं वह बात तो बहुत सरल है; किन्तु बड़ी सूक्ष्म बात है!

उत्तरः—भाई! सूक्ष्म तो अवश्य है, किन्तु समझमें आ सके ऐसा सूक्ष्म है या न आये ऐसा? आत्माका स्वभाव ही सूक्ष्म (अतीन्द्रिय) है, इसलिये उसकी बात भी सूक्ष्म ही होती है। यह सूक्ष्म होने पर भी समझमें आ सके ऐसा है। आत्माकी सचमुच

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जिज्ञासा हो तो वह समझमें आये बिना नहीं रह सकता। वस्तुस्वरूपमें जैसा हो रहा है वही समझनेको कहा जा रहा है; इसलिये सूक्ष्म लगे तो भी "समझमें आये ऐसा है, और यह समझनेमें ही मेरा हित है"—ऐसा विश्वास और उल्लास लाकर अन्तरसे प्रयास करना चाहिये। यह समझे बिना ज्ञान कभी सच्चा नहीं हो सकता, और सच्चे ज्ञान बिना शाँति नहीं हो सकती। "सूक्ष्म है इसलिये मेरी समझमें नहीं आ सकता"—ऐसा नहीं मानना चाहिये, किन्तु सूक्ष्म है इसलिये उसे समझनेके लिये मुझे अपूर्व प्रयत्न करना चाहिये; —ऐसा बहुमान लाकर समझना चाहे तो वह अवश्य ही समझमें आ सकता है।

अहो! यह तो अंतरकी अध्यात्मविद्या है; इस अध्यात्मविद्यासे ज्ञानस्वभावी आत्माका निर्णय किए बिना, अन्य सब बाह्य ज्ञातृत्व तो म्लेच्छविद्या समान हैं; उससे आत्माका कुछ भी हित नहीं है।

पूर्व अनन्तकालमें यह बात नहीं समझा इसलिये सूक्ष्म है; तथापि जिज्ञासु होकर समझना चाहे तो समझमें आ सकती है। भाई! तू उलझनमें मत पड़, किन्तु अन्तरमें देख; उलझन कोई मार्ग नहीं है; ज्ञानस्वभावको लक्षमें पकड़कर अन्तर्मुख हो....वर्तमानमें जो ज्ञान जाननेका कार्य कर रहा है वह किसका है? उस ज्ञानके सहारे-सहारे अन्तरमें जा और अव्यक्त चिदानन्दस्वभावको ग्रहण कर ले....अन्तरके चैतन्यद्वारको खोल! इस चैतन्यस्वभावमें उतरते ही सब समझमें आ जाता है, और उलझन मिट जाती है।

(९९) सच्चा विश्रामस्थल

प्रश्नः—क्रमबद्धपर्याय प्रतिसमय सदैव होती ही रहती है; उसमें बीचमें कहीं जरा भी विश्राम नहीं है?

उत्तरः—भाई, यह समझ तो तेरे अनादिकालीन भवभ्रमणकी थकान दूर कर दे ऐसी है! क्रमबद्धपर्यायकी प्रतीति करके ज्ञायकस्वभावकी ओर एकाग्र हुआ वही सच्चा विश्रामस्थल है।—

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसमें भी प्रतिसमय पर्यायका परिणमन तो होता ही रहता है; किन्तु वह परिणमन ज्ञान और आनन्दमय है, इसलिये उसमें आकुलता या थकान नहीं है; उसमें तो परम अनाकुलता है और वही सच्चा विश्रामस्थल है। अज्ञानी जीव ज्ञायकपनेको भूलकर "परमें यह करूँ....यह करूँ—ऐसी मिथ्या मान्यतासे आकुल-व्याकुल—दुःखी हो रहा है और भवभ्रमणमें भटक रहा है। यदि वह ज्ञायकस्वभावकी और क्रमबद्धपर्यायकी बात समझे तो अनन्ती आकुलता मिट जाये, अन्तर्स्वभावमें ज्ञान-आनन्दके अनुभवरूप सच्चा विश्रामस्थल प्राप्त हो।

(१००) सम्यक्त्वी कहते हैं—"श्रद्धारूपसे केवलज्ञान हुआ है"

इस क्रमबद्धपर्यायके यथार्थ निर्णयमें ज्ञानस्वभावका और केवलज्ञानका निर्णय आ जाता है। जिस प्रकार केवली भगवान परिपूर्ण ज्ञायक ही हैं, उसी प्रकार मेरा स्वभाव भी ज्ञायक ही है—ऐसा निर्णय होने पर श्रद्धारूपसे केवलज्ञान हुआ। अभी साधकदशामें अल्प ज्ञान है, तथापि वह भी ज्ञायकस्वभावके अवलम्बनसे ज्ञातापनेका ही कार्य करता है, इसलिये केवलज्ञानकी श्रद्धा तो हो गई, अर्थात् श्रद्धारूपसे केवलज्ञान हुआ।

श्रीमद् राजचन्द्रजीने भी कहा है कि—"यद्यपि कभी वर्तमानमें प्रगट रूपसे केवलज्ञानकी उत्पत्ति नहीं हुई है, किन्तु जिनके वचनके विचारयोगसे शक्तिरूपसे केवलज्ञान है—ऐसा स्पष्ट जाना है,

—ऐसा श्रद्धारूपसे केवलज्ञान हुआ है,
—विचारदशारूपसे केवलज्ञान हुआ है,
—इच्छादशारूपसे केवलज्ञान हुआ है,
—मुख्यनयके हेतुसे केवलज्ञान वर्तता है,

—वह सर्व अव्याबाध सुखका प्रगट करनेवाला केवलज्ञान जिनके योगसे सहजमात्रमें जीव प्राप्त करने योग्य हुआ उन सत्पुरुष

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

के उपकारको सर्वोत्कृष्ट भक्तिसे नमस्कार हो ! नमस्कार हो !"

देखो, इतने-से कथनमें कितनी गंभीरता है !

सर्व प्रथम ऐसा कहा कि—"यद्यपि कभी वर्तमानमें प्रगट-रूपसे केवलज्ञानकी उत्पत्ति नहीं हुई है"—इस कथनमें यह बात भी गर्भित रूपसे रखी है कि—वर्तमानमें प्रगट नहीं है किन्तु शक्ति-रूपसे है; और वर्तमानमें प्रगट नहीं है किन्तु भविष्यमें अल्पकालमें केवलज्ञान प्रगट होना है।"

❀ फिर कहा है कि—"जिनके वचनके विचारयोगसे शक्ति-रूपसे केवलज्ञान है—ऐसा स्पष्ट जाना है।"—केवलज्ञान प्रगट नहीं है, तथापि वह प्रगट होनेका सामर्थ्य मुझमें है—ऐसा जाना है—स्पष्ट जाना है, अर्थात् स्वसन्मुख होकर निःशंक जाना है। किसने जाना ?—तो कहते हैं कि वर्तमान पर्यायने जाना है। मुझमें सर्वज्ञताका सामर्थ्य है ऐसा पहले नहीं जाना था, और अब स्वसन्मुख होकर जाना इसलिये पर्यायमें निर्मलताका क्रम प्रारम्भ हो गया।

मेरी शक्तिमें केवलज्ञान है—ऐसा "स्पष्ट" जाना है अर्थात् रागके अवलम्बन बिना जाना है,—स्वभावके अवलम्बनसे जाना है; स्वसंवेदनसे जाना है।

❀ जाननेमें निमित्त कौन ? तो कहते हैं कि—"जिनके वचनके विचारयोगसे....जाना है;" जिनके वचन अर्थात् केवली-भगवान, गणधरदेव, कुन्दकुन्दाचार्य आदि संत-मुनि और सम्यक्त्वी-इन सबके वचन उसमें आ जाते हैं। अज्ञानीकी वाणी उसमें निमित्त नहीं होती; सम्यक्त्वीसे लेकर केवली भगवान तकके सबकी वाणी अविरुद्ध है; जैसी केवली भगवानकी वाणी है वैसी ही सम्यक्त्वीकी वाणी है; भले ही केवलीभगवानकी वाणीमें बहुत आए और सम्यक्त्वीकी वाणीमें कम आए, किन्तु दोनोंका अभिप्राय तो एक ही है।

और, "जिनके वचनके विचारयोगसे जाना"—इसमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

"विचारयोग" वह अपने उपादानकी तैयारी बतलाता है। ज्ञानीके वचन वह निमित्त, और उन वचनोंको झेलकर समझनेकी योग्यता अपनी,—इस प्रकार उपादान-निमित्त दोनोंकी बात आ गई।

वर्तमानपर्यायमें केवलज्ञान न होने पर भी, तेरे स्वभावमें केवलज्ञानका सामर्थ्य है—ऐसा ज्ञानीके वचन बतलाते हैं; इसलिये तुझमें जो शक्ति विद्यमान है उसके अवलम्बनसे तेरा केवलज्ञान प्रगट होगा, अन्य किसीके (निमित्तके या व्यवहारके) अवलम्बनसे केवलज्ञान नहीं होगा;—ऐसा ज्ञानी बतलाते हैं, इससे विरुद्ध जो कहते हों वे वचन ज्ञानीके नहीं हैं।

❀ "यद्यपि वर्तमानमें कभी प्रगट रूपसे केवलज्ञानकी उत्पत्ति नहीं हुई है, किन्तु जिनके वचनके विचारयोगसे शक्तिरूपसे केवलज्ञान है—ऐसा स्पष्ट जाना है"—ऐसा जाननेमें क्या हुआ वह अब कहते हैं:—

—"ऐसा श्रद्धारूपसे केवलज्ञान हुआ है;"

केवलज्ञान प्रगट नहीं है, तथापि उसकी श्रद्धा तो प्रगट हुई है, इसलिये श्रद्धारूपसे केवलज्ञान हुआ है। देखो, अज्ञानी तो कहते हैं कि—"भव्य-अभव्यका निर्णय अपनेसे नहीं हो सकता, वह केवली जानें," तब यहाँ तो कहते हैं कि केवलज्ञानका निर्णय हो गया है, श्रद्धामें केवलज्ञान हो गया है। जिसमेंसे केवलज्ञान प्रगट होना है—ऐसा अखंड ज्ञायकस्वभाव जहाँ प्रतीतिमें आ गया वहाँ श्रद्धारूपसे केवलज्ञान हुआ है।

❀ "श्रद्धा"की बात की, अब ज्ञान-चारित्रकी बात करते हैं।

—"विचारदशारूपसे केवलज्ञान हुआ है,"

—"इच्छादशारूपसे केवलज्ञान हुआ है,"

विचारदशारूपसे केवलज्ञान हुआ है इसलिये केवलज्ञान कैसा होता है वह ज्ञानमें आ गया है-सर्वज्ञताका निर्णय हो गया है। तथा इच्छादशारूपसे केवलज्ञान हुआ है अर्थात् भावना केवलज्ञानको

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ही वर्त रही है, रागकी या व्यवहारकी भावना नहीं है; किन्तु केवलज्ञानकी ही भावना है।

❀ इतनी बात तो केवलज्ञान पर्यायकी कही, किन्तु केवलज्ञान प्रगट कहाँसे होगा–वह बात भी साथमें बतलाते हैं।

"मुख्यनयके हेतुसे केवलज्ञान वर्तता है"

निश्चयनय अर्थात् मुख्यनय। अध्यात्ममें मुख्यनय तो निश्चयनय ही है। उस निश्चयमें वर्तमानमें ही शक्तिरूपसे केवलज्ञान वर्त रहा है।

शक्तिरूपसे केवलज्ञान तो सभी जीवोंके है, किन्तु ऐसा कहता कौन है?–कि जिसे उस शक्तिकी प्रतीति हुई है वह। इसलिये श्रद्धा तो प्रगट हुई है।

—इस प्रकार इसमें जैनशासन भर दिया है। शक्ति क्या है, व्यक्ति क्या है, शक्तिकी प्रतीति क्या है, केवलज्ञान क्या है,—यह सब इसमें आ जाता है।

❀ अहो, सम्यग्दर्शन होने पर सम्यक्त्वी कहता है कि—"श्रद्धारूपसे केवलज्ञान हुआ," यहाँ ज्ञायकोन्मुख होकर क्रमबद्धपर्यायका निर्णय किया उसमें भी श्रद्धारूपसे केवलज्ञान हुआ....प्रतीति तो वर्तमानमें प्रगट हुई है। जिस प्रकार केवलीभगवान ज्ञायकत्वका ही काम करते हैं, उसी प्रकार मेरा स्वभाव भी ज्ञायक है, मेरा ज्ञान भी ज्ञायकोन्मुख रहकर ज्ञातृत्वका ही कार्य करता है—ऐसी सम्यक्त्वीको प्रतीति हुई है—इस प्रकार श्रद्धारूपसे केवलज्ञान हुआ है।

❀ सर्वज्ञस्वभावके अवलम्बनसे ऐसी श्रद्धा होने पर जीव केवलज्ञान प्राप्त करने योग्य हुआ। उसके उल्लासमें भक्तिपूर्वक नमस्कार करते हुए कहते हैं कि अहो! सर्व अव्याबाध सुख प्रगट करनेवाला ऐसा केवलज्ञान जिनके योगसे सहजमात्रमें जीव प्राप्त करने योग्य हुआ उन सत्पुरुषके उपकारको सर्वोत्कृष्ट भक्तिसे नमस्कार हो.....नमस्कार हो.....!

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(१०१) "केवलज्ञानकी खड़ी" के तेरह प्रवचन...और केवलज्ञानके साथ संधिपूर्वक उनका अंतमंगल

—इस क्रमबद्धपर्याय पर पहलीबारके "आठ" और दूसरी-बारके "पाँच"—इस प्रकार कुल तेरह प्रवचन हुए। तेरहवाँ गुणस्थान केवलज्ञानका है और ज्ञायकोन्मुख होकर इस क्रमबद्धपर्यायका निर्णय करना वह "केवलज्ञानकी खड़ी" है; उसका फल केवलज्ञान है। जो इसका निर्णय करे उसे क्रमबद्धपर्यायमें अल्पकालमें केवलज्ञान हुए बिना नहीं रहेगा। इस क्रमबद्धका निर्णय करनेवाला "केवली-भगवानका पुत्र" हुआ, प्रतीतिरूपसे केवलज्ञान प्रगट हुआ, उसे अब विशेष भव नहीं हो सकते। ज्ञायकस्वभाव सन्मुख होकर यह निर्णय करनेसे अपूर्व सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, और फिर निर्मल क्रमबद्धपर्यायें होने पर अनुक्रमसे चारित्रदशा और केवलज्ञान होता है।

—इसप्रकार केवलज्ञानके साथ संधिपूर्वक ज्ञायकस्वभाव और क्रमबद्धपर्यायका अलौकिक रहस्य प्रगट करनेवाला यह विषय पूर्ण होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

"केवलज्ञान" के साथ क्रमबद्धपर्यायकी सन्धि करानेवाले यह तेरह प्रवचन

जयवंत प्रवर्तमान हो.....

ज्ञायकस्वभाव और क्रमबद्धपर्यायका अलौकिक रहस्य समझाकर,

केवलज्ञानको प्रकाशित करनेवाले

श्री कहान गुरुदेवकी जय हो....

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अनेकान्तगर्भित सम्यक् नियतवाद

क्रमबद्धपर्यायके निर्णयमें आजानेवाला अनेकान्तवाद

वस्तुमें तीनोंकालकी अवस्थायें क्रमबद्ध ही होती हैं; कोई अवस्था उल्टी-सीधी नहीं होती—ऐसा ही वस्तुस्वभाव है। वस्तु-स्वभावके इस महान सिद्धान्तका महान रहस्य न समझनेवाले अज्ञानी लोग, इस पर मिथ्या नियतवाद अथवा एकान्तवाद होनेका आरोप करते हैं; यहाँ उसका निराकरण किया जाता है।

नियतके साथ ही पुरुषार्थ, ज्ञान, श्रद्धादि धर्म भी विद्यमान ही हैं। नियतस्वभावके निर्णयके साथ विद्यमान सम्यक् पुरुषार्थको-सम्यक् श्रद्धाको, सम्यक् ज्ञानको, स्वभावको—आदिको स्वीकार न करे तभी एकान्त नियतवाद कहलाता है।

अज्ञानी तो, नियत वस्तुस्वभावके निर्णयमें आ जानेवाला ज्ञानका पुरुषार्थ, सर्वज्ञके निर्णयका पुरुषार्थ, स्वसन्मुख श्रद्धा-ज्ञानादिको स्वीकार करे बिना ही नियतकी (-जैसा होना होगा सो होगा—ऐसी) बात करते हैं, इसलिये उनके तो एकांत नियत कहा जाता है।

परन्तु ज्ञानी तो नियत वस्तुस्वभावके निर्णयमें साथ ही विद्यमान ऐसे सम्यक् पुरुषार्थको, स्वसन्मुख ज्ञान—श्रद्धाको, स्वभावको, कालको, निमित्तको—सभीको स्वीकार करते हैं; इसलिये वह मिथ्या नियत नहीं है परन्तु सम्यक् नियतवाद है, उसीमें अनेकान्तवाद आ जाता है।

नियतको और उसके साथ दूसरे अनियतको-(पुरुषार्थ, काल, स्वभाव, ज्ञान, श्रद्धा, निमित्तादिको) भी ज्ञानी स्वीकार करते हैं, इसलिये उनके नियत-अनियतका मेल हुआ। [यहाँ 'अनियत' का अर्थ 'अक्रमबद्ध' नहीं समझना, परन्तु नियतके साथ विद्यमान

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नियतके अतिरिक्त पुरुषार्थ आदि धर्मोंको यहाँ "अनियत" कहा है—ऐसा समझना।] इस प्रकार वस्तुमें "नियत" "अनियत" दोनों धर्म एक समय एक साथ हैं इसलिये अनेकान्त स्वभाव है, और उसकी श्रद्धामें अनेकान्तवाद है।

क्रमबद्धपर्यायमें पुरुषार्थ आदिका क्रम भी साथ ही है, इसलिये क्रमबद्धपर्यायकी प्रतीति भी आ ही जाती है। पुरुषार्थ कहीं क्रमबद्ध-पर्यायोंसे दूर नहीं रह जाता; इसलिये नियतके निर्णयमें पुरुषार्थ उड़ नहीं जाता परन्तु साथ ही आ जाता है। इसलिये नियत स्वभावकी श्रद्धा वह अनेकान्तवाद है—ऐसा समझना। जो वस्तुकी पर्यायोंका नियत–क्रमबद्ध होना न माने, अथवा तो क्रमबद्धपर्यायके निर्णयमें विद्यमान सम्यक्–पुरुषार्थको न माने उसे अनेकान्तमय वस्तुस्वभावकी खबर नहीं है, वह मिथ्यादृष्टि है।

(—श्री समयसार कलश २ पर श्री पूज्य कानजीस्वामीके प्रवचनसे।)

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

–: अनेकान्त :–

[प्रत्येक वस्तुको अनेकान्त 'अपनेसे पूर्ण' और 'परसे पृथक्' घोषित करता है]

—❀—

प्रत्येक वस्तु अनेकान्तरूपसे निश्चित् होती है। एक वस्तुमें वस्तुपनेको उत्पन्न करनेवाली अस्ति–नास्ति आदि परस्पर विरुद्ध दो शक्तियोंका प्रकाशित होना सो अनेकान्त है। प्रत्येक वस्तु अपने रूपसे अस्तिरूप है और पररूपसे नास्तिरूप है; ऐसे अस्ति–नास्तिरूप अनेकान्त द्वारा प्रत्येक वस्तुका स्वरूप निश्चित् होता है। इसी न्यायसे, उपादान–निमित्त, निश्चय–व्यवहार और द्रव्य–पर्याय, इस प्रत्येक बोलका स्वरूप भी अस्ति–नास्तिरूप अनेकान्त द्वारा निम्नानुसार निश्चित् होता है:—

निमित्त सम्बन्धी अनेकान्त

उपादान और निमित्त यह दोनों भिन्न–भिन्न पदार्थ हैं; दोनों पदार्थ अपने अपने स्वरूपसे अस्तिरूप हैं और दूसरेके स्वरूपसे नास्तिरूप हैं; इस प्रकार निमित्त स्व-रूपसे है और पर-रूपसे नहीं है; निमित्त निमित्तरूपसे है और उपादानरूपसे वह नास्तिरूप है। इसलिये उपादानमें निमित्तका अभाव है, इससे उपादानमें निमित्त कुछ नहीं कर सकता। निमित्त निमित्तका कार्य करता है, उपादानका कार्य नहीं करता—ऐसा अनेकान्तस्वरूप है। ऐसे अनेकान्तस्वरूपसे निमित्तको जाने तभी निमित्तका यथार्थ ज्ञान होता है। "निमित्त निमित्तका कार्य भी करता है और निमित्त उपादानका कार्य भी करता है"—ऐसा कोई माने तो उसका अर्थ यह हुआ कि निमित्त अपनेरूपसे अस्तिरूप है और पररूपसे भी अस्तिरूप है; ऐसा होनेसे निमित्त पदार्थमें अस्ति–नास्तिरूप परस्पर विरुद्ध दो धर्म सिद्ध

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं हुए, इसलिए वह मान्यता एकान्त है। इसलिये 'निमित्त उपादानका कुछ करता है'—ऐसा जिसने माना उसने अस्ति-नास्तिरूप अनेकान्त द्वारा निमित्तके स्वरूपको नहीं जाना किन्तु अपनी मिथ्या कल्पनासे एकान्त मान लिया है; उसने उपादान—निमित्तकी भिन्नता, स्वतंत्रता नहीं मानी किन्तु उन दोनोंकी एकता मानी है इसलिये उसकी मान्यता मिथ्या है।

उपादान सम्बन्धी अनेकान्त

उपादान स्व-रूपसे है और पररूपसे नहीं है; इस प्रकार उपादानका अस्ति-नास्तिरूप अनेकान्तस्वभाव है। उपादानके कार्यमें उपादानके कार्यकी अस्ति है और उपादानके कार्यमें निमित्तके कार्यकी नास्ति है।—ऐसे अनेकान्त द्वारा प्रत्येक वस्तुका भिन्न-भिन्न स्वरूप ज्ञात होता है, तो उपादानमें निमित्त क्या करे ? कुछ भी नहीं कर सकता। जो ऐसा जानता है उसने उपादानको अनेकांत-स्वरूपसे जाना है; किन्तु 'उपादानमें निमित्त कुछ भी करता है' —ऐसा जो माने उसने उपादानके अनेकान्तस्वरूपको नहीं जाना है किन्तु एकान्तस्वरूपसे माना है; इसलिये उसकी मान्यता मिथ्या है। निश्चय-व्यवहार भी मिथ्या है।

निश्चय और व्यवहार सम्बन्धी अनेकान्त

उपादान-निमित्तकी भाँति निश्चय और व्यवहारका भी अनेकान्तस्वरूप है। निश्चय है वह निश्चयरूपसे अस्तिरूप है और व्यवहाररूपसे नास्तिरूप है; व्यवहार है वह व्यवहाररूपसे अस्तिरूप है और निश्चयरूपसे नास्तिरूप है। इस प्रकार कथंचित् परस्पर विरुद्ध दो धर्म होनेसे वह अनेकान्तस्वरूप है। निश्चय और व्यवहार का एक-दूसरेमें अभाव है, परस्पर लक्षण भी विरुद्ध है—ऐसा अनेकान्त बतलाता है, तब फिर व्यवहार निश्चयमें क्या करेगा ?

व्यवहार व्यवहारका कार्य करता है और निश्चयका कार्य नहीं करता, अर्थात् व्यवहार बन्धनका कार्य करता है और अबन्ध-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पनेका कार्य नहीं करता—ऐसा व्यवहारका अनेकान्तस्वभाव है। इसके बदले व्यवहार व्यवहारका भी कार्य करता है और व्यवहार निश्चयका कार्य भी करता है—ऐसा जो मानता है उसने व्यवहारके अनेकान्तरूपको नहीं जाना है किन्तु व्यवहारको एकान्तरूपसे माना है। वह व्यवहाराभासमात्रका धारक मिथ्यादृष्टि है।

व्यवहार करते करते निश्चय होता है अर्थात् व्यवहार निश्चयका कारण होता है—ऐसा माना उसने निश्चय और व्यवहारको पृथक् नहीं जाना किन्तु दोनोंको एक ही माना है, इसलिये वह भी एकान्त मान्यता हुई।

द्रव्य और पर्याय सम्बन्धी अनेकान्त

द्रव्य-पर्याय सम्बन्धी अनेकान्तस्वरूप इस प्रकार है : द्रव्य द्रव्यरूपसे है और सम्पूर्ण द्रव्य एक पर्यायरूप नहीं है। पर्याय पर्यायरूप है और एक पर्याय सम्पूर्ण द्रव्यरूप नहीं है। उसमें द्रव्यके आश्रयसे धर्म होता है, पर्यायके आश्रयसे धर्म नहीं होता। पर्यायबुद्धिसे धर्म होता है–ऐसा मानना वह एकान्त है। स्व–द्रव्यके आश्रयसे धर्म होता है उसके बदले अंशके–पर्यायके आश्रयसे जिसने धर्म माना उसकी मान्यतामें पर्यायने ही द्रव्यका काम किया अर्थात् पर्याय ही द्रव्य हो गई; उसकी मान्यतामें द्रव्य–पर्यायका अनेकान्तस्वरूप नहीं आया है। द्रव्यदृष्टिसे (द्रव्यके आश्रयसे) ही धर्म होता है और पर्यायबुद्धिसे धर्म नहीं होता—ऐसा मानना सो अनेकान्त है।

इस प्रकार एकान्त-अनेकान्तका स्वरूप समझना चाहिये।

जो जीव ऐसा अनेकान्त वस्तुस्वरूप समझे वह जीव निमित्त, व्यवहार या पर्यायका आश्रय छोड़कर अपने द्रव्यस्वभावकी ओर ढले बिना नहीं रहता; अर्थात् स्वभावके आश्रयसे उसे सम्यग्दर्शन, ज्ञानादि धर्म होते हैं। इस प्रकार अनेकान्तकी पहिचानसे धर्मका प्रारम्भ होता है। जो जीव ऐसा अनेकान्तस्वरूप न जाने वह कभी परका आश्रय छोड़कर अपने स्वभावकी ओर नहीं ढलेगा और न उसे धर्म होगा।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

* अनेकान्तका प्रयोजन *

—❀—

'हमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि बाह्य व्यवहारके अनेक विधि-निषेधके कर्तृत्वकी महिमामें कोई कल्याण नहीं है। यह कहीं ऐकान्तिक दृष्टिसे लिखा है अथवा अन्य कोई हेतु है ऐसा विचार छोड़कर उन वचनोंसे जो भी अन्तर्मुखवृत्ति होनेकी प्रेरणा मिले उसे करनेका विचार रखना सो सुविचार दृष्टि है।....बाह्य क्रियाके अन्तर्मुखदृष्टिहीन विधि-निषेधमें कुछ भी वास्तविक कल्याण नहीं है।....अनेकान्तिक मार्ग भी सम्यक् एकान्त-निजपदकी प्राप्ति करानेके अतिरिक्त अन्य किसी भी हेतुसे उपकारी नहीं है; यह जानकर ही लिखा है। यह मात्र अनुकम्पाबुद्धिसे, निराग्रहसे, निष्कपट भावसे, निर्दम्भतासे और हितदृष्टिसे लिखा है; यदि इस प्रकार विचार करोगे तो यह यथार्थ दृष्टिगोचर होगा।...."

(श्रीमद् राजचन्द्र, गु. पृष्ठ ३४६-४७)

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जीव और कर्म दोनों स्वतंत्र हैं

श्री अमितगति आचार्य कृत योगसार (-अर्थात् अध्यात्म-तरंगिणी) के नववें अधिकारकी ४६ वीं गाथामें (पृष्ठ १८६) कहा है कि—

न कर्म हंति जीवस्य न जीवः कर्मणो गुणान् ।
वध्य घातक भावोऽस्ति नान्योन्यं जीव कर्मणोः ।।४६।।

अर्थः—न तो कर्म जीवके गुणोंको नष्ट करता है और न जीव ही कर्मके गुणोंको नष्ट करता है इसलिये जीव और कर्मका आपसमें वध्य-घातक सम्बन्ध नहीं ।

भावार्थः—"वध्य-घातक भाव" नामक विरोधमें वध्यका अर्थ मरनेवाला और घातका अर्थ मारनेवाला है, यह विरोध अहिन-कुल, अग्नि–जल आदिमें देखनेमें आता है अर्थात् नोला सर्पको मार देता है इसलिये सर्प वध्य और नोला घातक कहा जाता है तथा जल अग्निको बुझा देता है इसलिये अग्नि वध्य और जल घातक होता है; यहाँ पर जीव और कर्मोंमें यह विरोध देखनेमें नहीं आता, क्योंकि यदि कर्म जीवके गुणोंको नष्ट करता अथवा जीव कर्मके गुणोंको नष्ट करता तब तो जीव और कर्ममें वध्य-घातक भाव नामक विरोध होता । सो तो है नहीं, इसलिये जीव और कर्ममें वध्य-घातक भाव नामक विरोध नहीं हो सकता ।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अनन्त पुरुषार्थ

स्वभावका अनन्त पुरुषार्थ क्रमबद्धपर्यायकी श्रद्धामें आता है। क्रमबद्धपर्यायकी श्रद्धा नियतवाद नहीं किन्तु सम्यक् —पुरुषार्थवाद है।

(स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा गाथा ३२१-३२२-३२३ पर
पूज्य श्री कानजी स्वामीका प्रवचन)

['वस्तुकी पर्याय क्रमबद्ध ही होती है तथापि पुरुषार्थके बिना शुद्ध पर्याय प्रगट नहीं होती' इसी सिद्धान्त पर मुख्यतया यह प्रवचन है। इस प्रवचनमें निम्नलिखित विषयोंके स्वरूपका स्पष्टीकरण हो जाता है:—

१—पुरुषार्थ, २—सम्यग्दृष्टिकी धर्मभावना, ३-सर्वज्ञकी यथार्थ श्रद्धा, ४-द्रव्यदृष्टि, ५-जड़ और चेतन पदार्थोंकी क्रमबद्ध-पर्याय, ६-उपादान-निमित्त, ७-सम्यग्दर्शन, ८-कर्तृत्व और ज्ञातृत्व, १०-साधकदशा, ११-कर्ममें उदीरणा इत्यादिके प्रकार, १२-मुक्ति की निःसन्देह प्रतिध्वनि, १३-सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि, १४-अनेकान्त और एकान्त, १५-पाँच समवाय, १६-अस्ति-नास्ति, १७-नैमित्तिक संबंध, १८-निश्चय-व्यवहार, १९-आत्मज्ञ और सर्वज्ञ, २०-निमित्त की उपस्थिति होने पर भी निमित्तके बिना कार्य होता है। इसमें अनेक पहलुओंसे—प्रकारान्तरसे बारबार स्वतंत्र पुरुषार्थको सिद्ध किया है, और इस प्रकार पुरुषार्थस्वभावी आत्माकी पहचान कराई है। जिज्ञासु जन इस प्रवचनके रहस्यको समझकर आत्माके स्वतंत्र सत्य पुरुषार्थकी पहचान करके उस ओर उन्मुख हों यही भावना है।]

स्वामी कार्तिकेय आचार्यने तीन गाथाओं में यह बताया है कि सम्यग्दृष्टि जीव वस्तुस्वरूपका कैसा चिंतवन करते हैं, तथा किस प्रकार पुरुषार्थकी भावना करते हैं। यह विशेष ज्ञातव्य होनेसे यहाँ वर्णित किया जा रहा है। वे मूल गाथायें इस प्रकार हैं:—

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जं जस्स जम्मिदेसे जेण विहाणेण जम्मि कालम्मि ।
णादं जिणेण णियदं जम्मं वा अहव मरणं वा ।।३२१।।
तं तस्स तम्मिद्देसे तेणविहाणेण तम्मि कालम्मि ।
को सक्कइ चालेदुं इंदो वा अह जिणिंदो वा ।।३२२।।

अर्थः—जिस जीवको जिस देशमें, जिस कालमें, जिस विधिसे जन्म-मरण, सुख-दुःख तथा रोग और दारिद्र्य इत्यादि जैसे सर्वज्ञदेवने जाने हैं उसी प्रकार वे सब नियमसे होंगे । सर्वज्ञदेवने जिस प्रकार जाना है उसी प्रकार उस जीवके उसी देशमें, उसी कालमें और उसी विधिसे नियम पूर्वक सब होता है, उसके निवारण करनेके लिए इन्द्र या जिनेन्द्र तीर्थंकरदेव कोई भी समर्थ नहीं है ।

भावार्थः—सर्वज्ञदेव समस्त द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अवस्थाओंको जानते हैं । सर्वज्ञके ज्ञानमें जो कुछ प्रतिभासित हुआ है, वह सब निश्चयसे होता है; उसमें हीनाधिक कुछ भी नहीं होता इस प्रकार सम्यग्दृष्टि विचार करता है ।

(स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा पृष्ठ १२५)

इस गाथामें यह बताया है कि सम्यग्दृष्टिकी धर्मानुप्रेक्षा कैसी होती है । सम्यग्दृष्टि जीव वस्तुके स्वरूपका किस प्रकार चिंतवन करता है यह बात यहाँ बताई है । सम्यग्दृष्टिकी यह भावना दुःखमें धीरज दिलानेके लिये अथवा झूठा आश्वासन देनेके लिये नहीं है किन्तु जिनेन्द्रदेवके द्वारा देखा गया वस्तुस्वरूप जिस प्रकार है उसी प्रकार स्वयं चिंतवन करता है; वस्तुस्वरूप ऐसा ही है, वह कोई कल्पना नहीं है । यह धर्मकी बात है । 'जिस कालमें जो होने वाली अवस्था सर्वज्ञभगवानने देखी है उस कालमें वही अवस्था होती है दूसरी नहीं होती' इसमें एकान्तवाद या नियतवाद नहीं है किन्तु इसीमें सच्चा अनेकान्तवाद और सर्वज्ञताकी भावना तथा ज्ञानका अनन्त पुरुषार्थ आ जाता है ।

आत्मा सामान्य-विशेषस्वरूप वस्तु है, अनादि अनन्त ज्ञान-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वरूप है, उस सामान्य और उस ज्ञानमेंसे समय समय पर जो पर्याय होती है वह विशेष है। सामान्य स्वयं ध्रुव रहकर विशेषरूपमें परिणमन करता है; उस विशेष पर्यायमें यदि स्वरूपकी रुचि करे तो समय समय पर विशेषमें शुद्धता होती है, और यदि उस विशेष पर्यायमें ऐसी विपरीत रुचि करे कि 'जो रागादि, देहादि हैं वह मैं हूं' तो विशेषमें अशुद्धता होती है। इस प्रकार यदि स्वरूपकी रुचि करे तो शुद्ध पर्याय क्रमबद्ध प्रगट होती है; और यदि विकारकी—परकी रुचि होती है तो अशुद्ध पर्याय क्रमबद्ध प्रगट होती है; चैतन्यकी क्रमबद्धपर्यायमें अन्तर नहीं पड़ता, किन्तु क्रमबद्धका ऐसा नियम है कि जिस ओरकी रुचि करता उस तरफकी क्रमबद्ध दशा होती है, जिसे क्रमबद्धपर्यायकी श्रद्धा होती है उसे द्रव्यकी रुचि होती है और जिसे द्रव्यकी रुचि होती है उसकी क्रमबद्धपर्याय शुद्ध ही होती है; अर्थात् सर्वज्ञभगवानके ज्ञानके अनुसार क्रमबद्धपर्याय ही होती है उसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। इतना निश्चय करनेमें द्रव्यकी ओरका अनन्त पुरुषार्थ आ जाता है। यहाँ पर्यायका क्रम नहीं बदलना है किन्तु अपनी ओर रुचि करनी है।

प्रश्नः—जगतके पदार्थोंकी अवस्था क्रमबद्ध होती है। जड़ अथवा चेतन इत्यादि सभीमें एकके बाद दूसरी क्रमबद्ध अवस्था श्री सर्वज्ञदेवने देखी है उसीके अनुसार अनादि अनन्त समयबद्ध होती है, तब फिर इसमें पुरुषार्थ करनेकी बात ही कहाँ रही ?

उत्तरः—मात्र आत्माकी ओरका ही पुरुषार्थ किया जाता है तब ही क्रमबद्धपर्यायकी श्रद्धा होती है। जिसने अपने आत्मामें क्रमबद्धपर्यायका निर्णय किया कि अहो ! जड़ और चैतन्य सभीकी अवस्था क्रमबद्ध स्वयं हुआ करती है, मैं परमें क्या कर सकता हूँ ? मेरा ऐसा स्वरूप है कि मात्र जैसा होता है मैं वैसा ही जानता हूँ; ऐसे निर्णयमें परकी अवस्थामें अच्छा-बुरा मानना नहीं रह जाता किन्तु ज्ञातृत्व ही रहता है, अर्थात् विपरीत मान्यता और

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अनन्तानुबन्धी कषायका नाश हो जाता है। अनन्त पर द्रव्यके कर्तृत्वका महा मिथ्यात्वभाव दूर होकर अपने ज्ञातास्वभावकी अनन्त दृढ़ता हो गई। ऐसा अपनी ओरका अनन्त पुरुषार्थ क्रमबद्धपर्यायकी श्रद्धामें हुआ है।

समस्त द्रव्योंकी अवस्था क्रमबद्ध होती है। मैं उसे जानता हूँ किन्तु मैं किसीका कुछ नहीं करता ऐसी मान्यताके द्वारा मिथ्यात्वका नाश करके परसे पुनरावृत्त होकर जीव अपनी ओर झुकता है। सर्वज्ञदेवके ज्ञानमें जो प्रतिभासित हुआ है उसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता, समस्त पदार्थोंकी समय समय पर जो अवस्था क्रमबद्ध होती है वही होती है, ऐसे निर्णयमें सम्यग्दर्शन भी आ जाता है। इसमें पुरुषार्थ किस प्रकार आया सो बतलाते हैं।

१–परकी अवस्था उसके क्रमानुसार होती ही रहती है, मैं परका कुछ नहीं करता यह निश्चय किया कि सभी द्रव्योंका अभिमान दूर हो जाता है।

२—विपरीत मान्यताके कारण परकी अवस्थामें अच्छा बुरा मानकर जो अनन्तानुबन्धी राग–द्वेष करता था वह दूर हो गया। इस प्रकार क्रमबद्धपर्यायकी श्रद्धा करने पर परद्रव्यके लक्षसे हटकर स्वयं राग–द्वेष रहित अपने ज्ञातास्वभावमें आ गया अर्थात् अपने हितके लिये परमुखापेक्षा रुक गई और ज्ञान अपनी ओर प्रवृत्त हो गया। अपने द्रव्यमें भी एकके बाद दूसरी अवस्था क्रमबद्ध होती है। मैं तो तीनोंकालकी क्रमबद्ध अवस्थाओंका पिण्डरूप द्रव्य हूँ, वस्तु तो ज्ञाता ही है, एक अवस्था जितनी वस्तु नहीं है, अवस्थामें जो राग–द्वेष होता है वह पर वस्तुके कारण नहीं किन्तु वर्तमान अवस्थाकी दुर्बलतासे होता है, उस दुर्बलताको भी देखना नहीं रहा किन्तु पुरुषार्थसे परिपूर्ण ज्ञातास्वरूपमें ही देखना रहा। उस स्वरूपके लक्षसे पुरुषार्थकी दुर्बलता अल्प कालमें टूट जायेगी।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

क्रमबद्धपर्याय द्रव्यमेंसे आती है, पर पदार्थमेंसे नहीं आती, तथा एक पर्यायमेंसे दूसरी पर्याय प्रगट नहीं होती इसलिये अपनी पर्यायके लिये पर द्रव्यकी ओर अथवा पर्यायको नहीं देखना रहा किन्तु मात्र ज्ञातास्वरूपको ही देखना रहा। जिसकी ऐसी दशा हो जाती है, समझना चाहिये कि उसने सर्वज्ञके ज्ञानके अनुसार क्रमबद्धपर्यायका निर्णय किया है।

प्रश्नः—सर्वज्ञभगवानने देखा हो तभी तो आत्माकी रुचि होती है न ?

उत्तरः—यह किसने निश्चय किया कि सर्वज्ञभगवान सब कुछ जानते हैं ? जिसने सर्वज्ञभगवानकी ज्ञानशक्तिको अपनी पर्यायमें निश्चित् किया है उसकी पर्याय संसारसे और रागसे हटकर अपने स्वभावकी ओर लग गई है; तभी तो वह सर्वज्ञका निर्णय करता है। जिसकी पर्याय ज्ञानस्वभावकी ओर हो गई है उसे आत्माकी ही रुचि होती है। जिसने यह यथार्थतया निश्चय किया कि 'अहो ! केवलीभगवान तीनकाल और तीनलोकके ज्ञाता हैं; वे अपने ज्ञानसे सब कुछ जानते हैं किन्तु किसीका कुछ नहीं करते,' उसने अपने आत्माको ज्ञातास्वभावके रूपमें मान लिया और उसकी तीनकाल और तीनलोकके समस्त पदार्थोंकी कर्तृत्वबुद्धि दूर हो गई है अर्थात् अभिप्रायकी अपेक्षामें वह सर्वज्ञ हो गया है। ऐसा स्वभावका अनंत पुरुषार्थ क्रमबद्धपर्यायकी श्रद्धामें आता है। क्रमबद्धपर्यायकी श्रद्धा एकान्त नियतवाद नहीं है किन्तु पाँचों समवाय सहित सम्यक् पुरुषार्थवाद है।

प्रस्तुत द्रव्योंकी एकके बाद दूसरी जो अवस्था होती है उसका कर्ता स्वयं वही द्रव्य होता है; किन्तु मैं उसका कर्ता नहीं हूँ और न मेरी अवस्थाको कोई अन्य करता है। किसी निमित्तकारणसे राग-द्वेष नहीं होते। इस प्रकार निमित्त और राग-द्वेषको जाननेवाली मात्र स्वसन्मुख ज्ञानकी अवस्था रह जाती है, वह अवस्था ज्ञाता-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वरूपको जानती है, रागको जानती है और सभी परको भी जानती है, मात्र जानना ही ज्ञानका स्वरूप है। जो राग होता है वह ज्ञानका ज्ञेय है किन्तु राग उस ज्ञानका स्वरूप नहीं है—ऐसी श्रद्धामें ज्ञानका अनन्त पुरुषार्थ समाविष्ट रहता है। यह समझनेके लिये ही आचार्यदेवने यहाँ पर दो गाथायें देकर वस्तुस्वरूप बताया है। सम्यग्दृष्टिको अभी केवलज्ञान नहीं हुआ इससे पूर्व अपने केवलज्ञानकी भावनाको करता हुआ वस्तुस्वरूपका विचार करता है। सर्वज्ञताके होने पर वस्तुस्वरूप कैसा ज्ञात होगा इसका चिंतवन करता है।

आत्माकी अवस्था क्रमबद्ध होती है। जब आत्माकी जो अवस्था होती है तब उस अवस्थाके लिये अनुकूल निमित्तरूप पर वस्तु स्वयं उपस्थित होती ही है। आत्माकी क्रमबद्ध पर्यायको जो योग्यता हो उसके अनुसार यदि निमित्त न आये तो वह पर्याय कहीं अटक जायगी सो बात नहीं है। यह प्रश्न ही अज्ञानसे परिपूर्ण है कि यदि निमित्त न होगा तो यह कैसे होगा, उपादानस्वरूपकी दृष्टिवालेके यह प्रश्न ही नहीं उठ सकता। वस्तुमें अपने क्रमसे जब अवस्था होती है तब निमित्त होता ही है, ऐसा नियम है।

धूप परमाणुकी ही प्रकाशमान दशा है और छाया भी परमाणुकी काली दशा है। परमाणुमें जिस समय काली अवस्था होनी होती है उसी समय काली अवस्था उसके द्वारा स्वयं होती है; और उस समय सामने दूसरी वस्तु उपस्थित होती है। परमाणुकी काली दशाके क्रमको बदलनेके लिये कोई समर्थ नहीं है। धूपमें बीचमें हाथ रखने पर नीचे जो परछाईं पड़ती है वह हाथके कारण नहीं होती, किन्तु वहांके परमाणुकी ही उस उस समय क्रमबद्ध अवस्था काली होती है। अमुक परमाणुओंमें दोपहरको ३ बजे काली अवस्था होनी है ऐसा सर्वज्ञदेवने देखा है और यदि उस समय हाथ न आये तो उन परमाणुओंकी ३ बजे होनेवाली दशा अटक जायगी ? नहीं ! ऐसा बनता ही नहीं। परमाणुओंमें ठीक ३ बजे काली अवस्था होनी हो, तो ठीक उसी समय हाथ इत्यादि निमित्त

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वयं उपस्थित होते ही हैं; सर्वज्ञदेवने अपने ज्ञानमें यह देखा हो कि ३ बजे अमुक परमाणुओंकी काली अवस्था होनी है और यदि निमित्त-का अभाव होनेसे अथवा निमित्तके विलम्बसे आनेके कारण वह अवस्था विलम्बसे हो तो सर्वज्ञका ज्ञान गलत ठहरेगा; किन्तु यह असंभव है। जिस समय वस्तुकी जो क्रमबद्ध अवस्था होनी होती है उस समय निमित्त उपस्थित न हो, यह हो ही नहीं सकता। निमित्त होता तो है किन्तु वह कुछ करता नहीं है।

यहां पर पुद्गलका दृष्टांत दिया गया है, इसीप्रकार अब जीवका दृष्टांत देकर समझाते हैं। किसी जीवके केवलज्ञान प्रगट होना हो और शरीरमें वज्रवृषभनाराचसंहनन न हो तो केवलज्ञान रुक जायेगा ऐसी मान्यता बिलकुल असत्य पराधीनदृष्टिकी है। जीव केवलज्ञान प्राप्त करनेकी तैयारीमें हो और शरीरमें वज्रवृषभनाराचसंहनन न हो ऐसा कदापि हो ही नहीं सकता। जहाँ उपादान स्वयं सन्नद्ध हो वहाँ निमित्त स्वयं उपस्थित होता ही है। जिस समय उपादान कार्यरूपमें परिणमित होता है उसी समय दूसरी वस्तु निमित्तरूप उपस्थित होती है, निमित्त बादमें आता हो सो बात नहीं है। जिस समय उपादानका कार्य होता है उसी समय निमित्तकी उपस्थिति भी होती है; ऐसा होने पर भी निमित्त उपादानके कार्यमें किसी भी प्रकारको सहायता, असर, प्रभाव अथवा परिवर्तन नहीं करता। यह नहीं हो सकता कि निमित्त न हो; और निमित्तसे कार्य हो ऐसा भी नहीं हो सकता। चेतन अथवा जड़ द्रव्यमें उसकी अपनी जो क्रमबद्ध अवस्था जब होनी होती है तब अनुकूल निमित्त उपस्थित होते हैं। ऐसा जो स्वाधीनदृष्टिका विषय है उसे सम्यग्दृष्टि ही जानता है, मिथ्यादृष्टियोंको वस्तुकी स्वतंत्रताकी प्रतीति नहीं होती इसलिये उनकी दृष्टि निमित्त पर जाती है।

अज्ञानीको वस्तुस्वरूपका यथार्थ ज्ञान नहीं है इसलिये वस्तुकी क्रमबद्धपर्यायमें शंका करता है कि यह ऐसा कैसे हो गया ? उसे सर्वज्ञके ज्ञानकी और वस्तुकी स्वतंत्रताकी प्रतीति नहीं है; ज्ञानीको

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वस्तुस्वरूपमें शंका नहीं होती । वह जानता है कि जिस कालमें जिस वस्तुकी जो पर्याय होती है वह उसकी क्रमबद्ध अवस्था है, मैं तो मात्र जाननेवाला हूं; इसप्रकार ज्ञानीको अपने ज्ञातृत्वस्वभावकी प्रतीति है । इसलिये सर्वज्ञभगवानके द्वारा जाने गये वस्तुस्वरूपका चिंतवन करके वह अपने ज्ञानकी भावनाको बढ़ाता है कि जिस समय जो जैसा होता है उसका मैं वैसा ज्ञायक ही हूँ; अपने ज्ञायक-स्वरूपकी भावना करते करते मेरा केवलज्ञान प्रगट हो जायगा ।

ऐसी भावना केवली भगवानके नहीं होती किन्तु जिसे अभी अल्प राग-द्वेष होता है ऐसे चौथे, पाँचवें और छट्ठे गुणस्थानवाले ज्ञानी-की धर्मभावनाका यह विचार है; इसमें यथार्थ वस्तुस्वरूपकी भावना है यह कोई मिथ्या कल्पना या दुःखके आश्वासनके लिये नहीं है । सम्यग्दृष्टि किसी भी संयोग-वियोगको आपत्तिका कारण नहीं मानते किन्तु ज्ञानकी अपूर्णदशाके कारण अपनी दुर्बलतासे अल्प राग-द्वेष होता है—उस समय सम्पूर्ण ज्ञानदशा किस प्रकार की होती है उसका वे इस तरह चिंतवन करते हैं ।

जिस कालमें जिस वस्तुकी जो अवस्था सर्वज्ञदेवके ज्ञानमें ज्ञात हुई है उसी प्रकार क्रमबद्ध अवस्था होगी । भगवान तीर्थंकरदेव भी उसे बदलनेमें समर्थ नहीं हैं, देखिये इसमें सम्यग्दृष्टिकी भावनाकी निःशंकताका कितना बल है । भगवान भी उसे बदलनेमें समर्थ नहीं हैं' यह कहनेमें वास्तवमें अपने ज्ञानकी निःशंकता ही है । सर्वज्ञदेव मात्र ज्ञाता हैं किन्तु वे किसी भी तरहका परिवर्तन करनेमें समर्थ नहीं हैं, तब फिर मैं तो कर ही क्या सकता हूँ ? मैं भी मात्र ज्ञाता ही हूँ, इस प्रकार अपने ज्ञानकी पूर्णताकी भावनाका बल हूँ ।

जिस क्षेत्रमें जिस शरीरके जीवन या मरण, सुख या दुःखका संयोग इत्यादि जिस विधिसे होना है उसमें किंचित् मात्र भी अन्तर नहीं आ सकता । साँपका काटना, पानीमें डूबना, अग्निमें जलना

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इत्यादि जो संयोग होना है उसे बदलनेमें कोई भी तीनकाल और तीन-लोकमें समर्थ नहीं है। स्मरण रहे कि इसमें महानतम सिद्धान्त निहित है जो कि मात्र पुरुषार्थको सिद्ध करता है। इसमें स्वामी कार्तिकेय आचार्यने बारह भावनाका स्वरूप वर्णित किया है। वे महा सन्तमुनि थे, वे दो हजार वर्ष पूर्व हो गये हैं। वस्तुस्वरूप दृष्टिमें रखकर इस शास्त्रमें भावनाओंके स्वरूपका वर्णन किया गया है। यह शास्त्र सनातन जैन परम्परामें बहुत प्रचीन माना जाता है। स्वामी कार्तिकेयके सम्बन्धमें श्रीमद् राजचन्द्रने भी कहा है कि— नमस्कार हो उन स्वामी कार्तिकेयको'। इन महा सन्तमुनिके कथनमें बहुत गहन रहस्य भरा हुआ है।

'जो जिस जीवके' अर्थात् सभी जीवोंके लिये यही नियम है कि जिस जीवको जिस कालमें जीवन, मरण इत्यादिका कोई भी संयोग, सुख-दुःखका निमित्त आने वाला है उसमें परिवर्तन करने-के लिये देवेन्द्र, नरेन्द्र अथवा जिनेन्द्र इत्यादि कोई भी समर्थ नहीं हैं। यह सम्यग्दृष्टि जीवके यथार्थज्ञानकी पूर्णताकी भावनाका विचार है। वस्तुका स्वरूप ही ऐसा है, उसे अपने ज्ञानसे लिया जाता है किन्तु किसी संयोगके भयसे आड़ लेनेके लिये यह विचार नहीं है। एक पर्यायमें तीन काल और तीन लोकके पदार्थोंका ज्ञान इस प्रकार ज्ञात हो जाय सम्यग्दृष्टि इसका विचार करता है।

यहाँ सुख-दुःखके संयोगकी बात की गई है। संयोगके समय भीतर स्वयं जो शुभ या अशुभभाव होता है वह आत्माके वीर्यका कार्य है। पुरुषार्थकी दुर्बलतासे राग-द्वेष होता है, वहाँ सम्यग्दृष्टि अपनी पर्यायकी हीनताको स्व-लक्षसे जानता है, वह यह नहीं मानता कि संयोगके कारणसे निजको राग-द्वेष होता है; किन्तु वह यह मानता है कि जैसा सर्वज्ञदेवने देखा है वैसा ही संयोग-वियोग क्रमशः होता है। मिथ्यादृष्टि जीव यह मानता है कि पर संयोगके कारणसे निजको राग-द्वेष होता है इसलिये वह संयोगको बदलना चाहता है, उसे वीतरागशासनके प्रति श्रद्धा नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसे सर्वज्ञके ज्ञानकी भी श्रद्धा नहीं है, क्योंकि जो कुछ होता है वह सब सर्वज्ञदेवके ज्ञानके अनुसार होता है फिर भी वह शंका करता है कि ऐसा क्योंकर हुआ? यदि उसे सर्वज्ञकी श्रद्धा हो तो उसे यह निश्चय करना चाहिये कि जो कुछ सर्वज्ञदेवने देखा है उसीके अनुसार सब कुछ होता है, और ऐसा होनेसे यह मान्यता दूर हो जाती है कि संयोगके कारण अपनेमें राग-द्वेष होता है। और यह मान्यता भी दूर हो जाती है कि मैं संयोगको बदल सकता हूँ। जो इस सम्बन्धमें थोड़ा-सा भी अन्यथा मानता है, समझना चाहिये कि उसे वीतरागशासनके प्रति थोड़ी भी श्रद्धा नहीं है।

जिस जीवको जिस निमित्तके द्वारा जो अन्न-जल मिलना होता है उस जीवको उसी निमित्तके द्वारा वे ही रजकण मिलेंगे, उसमें एक समयमात्र अथवा एक परमाणुमात्रका परिवर्तन करनेके लिये कोई समर्थ नहीं है। जीवन-मरण, सुख-दुःख और दरिद्रता इत्यादि जो जब जैसा होने वाला है वैसा ही होगा, उसमें लाख प्रकारकी सावधानी रखनेपर भी किंचित् मात्र परिवर्तन नहीं हो सकता; उसे इन्द्र, नरेन्द्र, अथवा जिनेन्द्र आदि कोई भी बदलनेमें समर्थ नहीं हैं। इसमें नियतवाद नहीं है किन्तु मात्र ज्ञायकपनका पुरुषार्थवाद ही है।

"जैसा सर्वज्ञभगवानने देखा है वैसा ही होता है, उसमें किंचित् मात्र भी परिवर्तन नहीं होता' ऐसी दृढ़ प्रतीतिको नियतवाद नहीं कहते किन्तु यह तो सम्यग्दृष्टि धर्मात्माका पुरुषार्थवाद है। सम्यग्दर्शनके बिना यह बात नहीं जमती। परमें कुछ नहीं देखना है किन्तु निजमें ही देखना है। जिसकी दृष्टि मात्र परपदार्थ परही है उसे भ्रमसे ऐसा लगता है कि यह तो नियतवाद है; किन्तु यदि स्व-वस्तुकी ओरसे देखे तो उसमें मात्र स्वाधीन तत्त्वदृष्टिका पुरुषार्थ ही भरा हुआ है, वस्तुका परिणमन सर्वज्ञके ज्ञानके अनुसार क्रमबद्ध होता है, जहाँ ऐसा निश्चय किया कि जीव समस्त पर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

द्रव्योंसे उदास हो जाता है और इसलिये उसे द्रव्यमें ही देखना होता है और उसीमें सम्यक् पुरुषार्थ आ जाता है। इस पुरुषार्थमें मोक्षके पाँचों समवाय समाविष्ट हो जाते हैं। इस क्रमबद्धपर्यायकी श्रद्धाके भाव सर्वज्ञभगवानके ज्ञानका अवलम्बन करनेवाले हैं; यह भाव तीनकाल और तीनलोकमें बदलनेवाले नहीं हैं। यदि सर्वज्ञका केवलज्ञान गलत हो जाय तो यह भाव बदले, जो कि सर्वथा अशक्य है। जगत जगत ही है; यदि जगतके जीवोंके यह बात नही बैठती तो इससे क्या? जो वस्तुस्वरूप सर्वज्ञदेवने देखा है वह कभी नहीं बदल सकता। जैसा सर्वज्ञदेवने देखा है वैसा ही होता है, इसमें जो शंका करता है वह मिथ्यादृष्टि है। निमित्त और संयोगमें मैं परिवर्तन कर सकता हूँ ऐसा माननेवाला सर्वज्ञके ज्ञानमें शंका करता है, और इसलिये वह प्रगटरूप मिथ्यादृष्टि अज्ञानी मूढ़ है।

अहो! इस एक सत्यको समझ लेने पर जगतके समस्त द्रव्यों-के प्रति कितना उदासीनभाव हो जाता है। चाहे कम खानेका भाव करे या अधिक खानेका भाव करे, किन्तु जितने और जो पर-माणु आना हैं इतने और वे ही परमाणु आयेंगे, उनमेंसे एक भी परमाणुको बदलनेमें कोई जीव समर्थ नहीं है। बस, ऐसा जानकर शरीरका और परका कर्तृत्व छूटकर ज्ञानस्वभावकी प्रतीति होनी चाहिये। इसे माननेमें अनन्त वीर्य अपनी ओर कार्य करता है। जो जीव परका कर्तृत्व अन्तरंगसे मानता हो, परमें सुखबुद्धि हो और कहे कि जो होना है सो होगा, यह तो शुष्कता है; यह बात ऐसी नहीं है। जब अनन्त पर द्रव्योंसे पृथक् होकर जीव मात्र स्वभावमें संतोष मानता है तब यह बात यथार्थ बैठती है, इसकी स्वीकृतिमें तो सभी पर पदार्थोंसे हटकर ज्ञान, ज्ञानमें ही लगता है, अर्थात् मात्र वीतरागभावका पुरुषार्थ प्रगट हुआ है। नरेन्द्र, देवेन्द्र अथवा जिनेन्द्र तीनकाल और तीनलोकमें एक परमाणुको भी बदलनेमें समर्थ नहीं हैं। जिसके ऐसी प्रतीति है वह ज्ञानकी ओर उन्मुख हुआ है और

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसे सम्यग्दर्शन प्राप्त है, वह क्रमशः ज्ञानकी दृढ़ताके बलसे रागका नाश करके अल्प कालमें ही केवलज्ञानको प्राप्त कर लेगा, क्योंकि यह निश्चय किया हुआ है कि सब कुछ क्रमबद्ध ही होता है इसलिये वह अब ज्ञाताभावसे जानता ही है, ज्ञानकी एकाग्रताकी कचाईके कारण वर्तमानमें कुछ अपूर्ण जानता है और अल्प राग-द्वेष भी होता है, परन्तु मैं तो ज्ञान ही हूँ ऐसी श्रद्धाके बलसे पुरुषार्थको पूर्णता करके केवलज्ञान प्राप्त कर लेगा; इसलिये 'मैं तो ज्ञातास्वरूप हूँ, पर पदार्थोंकी क्रिया स्वतंत्र होती है उसका मैं कर्ता नहीं हूँ किन्तु ज्ञाता ही हूँ' इस प्रकारकी यथार्थ श्रद्धा ही केवलज्ञानको प्रगट करनेका एकमात्र अपूर्व और अफर (अप्रतिहत) उपाय है।

जो कुछ वस्तुमें होता है वह सब केवली जानते हैं और जो कुछ केवलीने जाना है वह सब वस्तुमें होता है। इस प्रकार ज्ञेय और ज्ञायकका परस्पर मेल-संबंध है। यदि ज्ञेय ज्ञायकका मेल न माने और कर्ता-कर्मका किंचितमात्र भी मेल माने तो वह जीव मिथ्यादृष्टि है। केवलज्ञानी सम्पूर्ण ज्ञायक हैं, उनके किसी भी पदार्थके प्रति कर्तृत्व या राग-द्वेषभाव नहीं होता। सम्यग्दृष्टिके भी ऐसी श्रद्धा होती है कि केवलज्ञानीकी तरह मैं भी ज्ञाता ही हूँ; मैं किसी भी वस्तुका कुछ नहीं कर सकता तथा किसी वस्तुके कारण मुझमें कुछ परिवर्तन नहीं होता; यदि अस्थिरतासे राग हो जाय तो वह मेरा स्वरूप नहीं है। इस प्रकार श्रद्धाकी अपेक्षासे सम्यग्दृष्टि भी ज्ञायक ही है। जिसने यह माना कि नियमपूर्वक वस्तुकी क्रमबद्धदशा होती है वह वस्तुस्वरूपका ज्ञाता है।

हे भाई ! यह नियतवाद नहीं है, किन्तु अपने ज्ञानमें समस्त पदार्थोंके नियति (क्रमबद्ध अवस्थाओं) का निर्णय करनेवाला पुरुषार्थ-वाद है। जब कि समस्त पदार्थोंकी क्रमबद्ध अवस्था होती है तो मैं उसके लिये क्या करूँ ? मैं किसीकी अवस्थाका क्रम बदलनेके लिये समर्थ नहीं हूँ, मेरी क्रमबद्ध अवस्था मेरे द्रव्यस्वभावमेंसे प्रगट होती है, इसलिये मैं अपने द्रव्यस्वभावमें एकाग्र रहकर सबका ज्ञाता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ही हूँ—ऐसी स्वभावदृष्टि (द्रव्यदृष्टि) में अनंत पुरुषार्थ आ जाता है ।

प्रश्नः—जब कि सभी क्रमबद्ध है और उसमें जीव कोई भी परिवर्तन नहीं कर सकता तो फिर जीवमें पुरुषार्थ कहाँ रहा ?

उत्तरः—सब कुछ क्रमबद्ध है, इस निर्णयमें ही जीवका अनन्त पुरुषार्थ समाविष्ट है, किन्तु उसमें कोई परिवर्तन करना आत्माके पुरुषार्थका कार्य नहीं है। भगवान जगतका सब कुछ मात्र जानते ही हैं किन्तु वे भी कोई परिवर्तन नहीं कर सकते, तब क्या इससे भगवानका पुरुषार्थ परिमित हो गया ? नहीं, नहीं, भगवानका अनन्त अपरिमित पुरुषार्थ अपने ज्ञानमें समाविष्ट है। भगवानका पुरुषार्थ निजमें है, परमें नहीं। पुरुषार्थ जीवद्रव्यकी पर्याय है इसलिये उसका कार्य जीवकी पर्यायमें होता है किन्तु जीवके पुरुषार्थका कार्य परमें नहीं होता।

जो यह मानता है कि सम्यग्दर्शन और केवलज्ञानदशा आत्माके पुरुषार्थके बिना होती है वह मिथ्यादृष्टि है। ज्ञानी प्रतिक्षण स्वभावकी पूर्णताके पुरुषार्थकी भावना करता है । अहो ! जिनका पूर्ण ज्ञायकस्वभाव प्रगट हो गया है वे केवलज्ञानी हैं; उनके ज्ञानमें सब कुछ एक ही साथ ज्ञात होता है। ऐसी प्रतीति करने पर स्वयं भी निज दृष्टिसे देखनेवाला ही रहा; ज्ञानके अतिरिक्त परका कर्तृत्व अथवा रागादिक सब कुछ अभिप्रायमेंसे दूर हो गया। ऐसी द्रव्यदृष्टिके बलसे ज्ञानकी पूर्णताकी भावनासे वस्तुस्वरूपका चिंतवन करता है। यह भावना ज्ञानीकी है, अज्ञानी मिथ्यादृष्टिकी नहीं है; क्योंकि मिथ्यादृष्टि जीव परका कर्तृत्व मानता है और कर्तृत्वकी मान्यतावाला जीव ज्ञातृत्वकी यथार्थ भावना नहीं कर सकता, क्योंकि कर्तृत्व और ज्ञातृत्वका परस्पर विरोध है।

'सर्वज्ञभगवानने अपने केवलज्ञानमें जैसा देखा है वही होता है। यदि हम उसमें कोई परिवर्तन नहीं कर सकते तो फिर उसमें पुरुषार्थ नहीं रहता,' इसप्रकार जो मानते हैं वे अज्ञानी हैं। हे भाई ! तू किसके ज्ञानसे बात करता है ? अपने ज्ञानसे या दूसरेके ज्ञानसे ?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यदि तू अपने ज्ञानसे ही बात करता है तो फिर जिस ज्ञानने सर्वज्ञका और सभी द्रव्योंकी अवस्थाका निर्णय कर लिया उस ज्ञानमें स्वद्रव्यका निर्णय न हो यह हो ही कैसे सकता है ? स्वद्रव्यका निर्णय करनेवाले ज्ञानमें अनन्त पुरुषार्थ है।

तूने अपने तर्कमें कहा है कि 'सर्वज्ञभगवानने अपने केवल-ज्ञानमें जैसा देखा हो वैसा होता है', तो वह मात्र बात करनेके लिये कहा है—अथवा तुझे सर्वज्ञके केवलज्ञानका निर्णय है। पहले तो यदि तुझे केवलज्ञानका निर्णय न हो तो सर्वप्रथम वह निर्णय कर और यदि तू सर्वज्ञके निर्णयपूर्वक कहता हो तो सर्वज्ञभगवानके केवलज्ञानके निर्णयवाले ज्ञानमें अनन्त पुरुषार्थ आ ही जाता है। सर्वज्ञका निर्णय करनेमें ज्ञानका अनन्तवीर्य कार्य करता है तथापि उससे इन्कार करके तू कहता है कि क्रमबद्धपर्यायमें पुरुषार्थ कहाँ रहा ? सच तो यह है कि तुझे पूर्ण केवलज्ञानके स्वरूपकी ही श्रद्धा नहीं है, और केवलज्ञानको स्वीकार करनेका अनन्त पुरुषार्थ तुझमें प्रगट नहीं हुआ। केवलज्ञानको स्वीकार करनेमें अनन्त पुरुषार्थका अस्तित्व आ जाता है तथापि यदि उसे स्वीकार नहीं करता तो कहना होगा कि तू मात्र बातें ही करता है किन्तु तुझे सर्वज्ञका निर्णय नहीं हुआ। यदि सर्वज्ञका निर्णय हो तो पुरुषार्थकी और भवकी शंका न रहे। यथार्थ निर्णय हो जाय और पुरुषार्थ न आये यह हो ही नहीं सकता।

अनन्त पदार्थोंको जाननेवाले, अनन्त पदार्थोंसे परिपूर्ण और भवरहित केवलज्ञानका जिस ज्ञानने अपने पुरुषार्थके द्वारा निर्णय किया उस ज्ञानने अपने पुरुषार्थके द्वारा निर्णय किया है या बिना ही पुरुषार्थके ? जिसने भवरहित केवलज्ञानको प्रतीतिमें लिया है उसने रागमें लिप्त होकर प्रतीति नहीं कि किन्तु रागसे पृथक् करके अपने ज्ञानस्वभावमें स्थिर होकर भवरहित केवलज्ञानकी प्रतीति की है। जिस ज्ञानने ज्ञानमें स्थिर होकर भवरहित केवलज्ञानकी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रतीति की है वह ज्ञान स्वयं भवरहित है और इसलिये उस ज्ञानमें भवकी शंका नहीं है। पहले केवलज्ञानकी प्रतीति नहीं थी तब वह अनन्त भवकी शंकामें झूलता रहता था और अब प्रतीति होने पर अनन्त भवकी शंका दूर हो गई है और एकाध भवमें मोक्षके लिये ज्ञान निःशंक हो गया है। उस ज्ञानमें अनन्त पुरुषार्थ निहित है। इस प्रकार 'सर्वज्ञभगवानने अपने केवलज्ञानमें जैसा देखा हो वैसा ही होता है,' ऐसी यथार्थ श्रद्धामें अपनी भवरहितताका निर्णय समाविष्ट हो जाता है, अर्थात् उसमें मोक्षका पुरुषार्थ आ जाता है। यथार्थ निर्णयके बलसे मोक्ष प्राप्त हो जाता है।

सभी द्रव्योंकी तरह अपने द्रव्यकी अवस्था भी क्रमबद्ध ही है। जैसे अन्य द्रव्योंकी क्रमबद्धपर्याय इस जीवसे नहीं होती वैसे ही इस जीवकी क्रमबद्धपर्याय अन्य द्रव्योंसे नहीं होती। अपनी क्रमबद्ध-पर्यायके स्वभावकी प्रतीति करने पर अपने द्रव्यस्वभावमें ही देखा जाता है कि अहो! मेरी पर्यायें तो मेरे द्रव्यमेंसे ही आती हैं, द्रव्यमें राग-द्वेष नहीं है, कोई परद्रव्य मुझे राग-द्वेष नहीं कराता। पर्यायमें जो अल्प राग-द्वेष है वह मेरी निर्बलताका कारण है; वह निर्बलता भी मेरे द्रव्यमें नहीं है। ऐसा होनेसे उस जीवको परमें न देखकर अपने स्वभावमें ही देखना रह जाता है अर्थात् द्रव्यदृष्टिमें स्थिर होना रह जाता है। स्वभावके बलसे अल्प कालमें रागको दूर करके वह केवलज्ञानको अवश्य प्राप्त करेगा। बस, इसीका नाम क्रमबद्ध-पर्यायकी श्रद्धा है; उस जीवने ही सर्वज्ञको यथार्थतया जाना है, और वही जीव स्वभावदृष्टिसे साधक हुआ है, उसका फल सर्वज्ञदशा है।

द्रव्यमें समय समय पर जो विशेष अवस्था होती है वह विशेष सामान्यमेंसे ही आती है, सामान्यमेंसे विशेष प्रगट होता है, इसमें केवलज्ञान भरा हुआ है। सामान्य-विशेषकी यह बात जैनको छोड़कर अन्यत्र कहीं भी नहीं है और सम्यग्दृष्टिके अतिरिक्त अन्य लोग उसे यथार्थतया समझ नहीं सकते। सामान्यमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

से विशेष होता है इतना सिद्धांत निश्चित् करने पर वह परिणमन निजकी ओर ढल जाता है। परमे मेरी पर्याय नहीं होती, निमित्तसे भी नहीं होती, विकल्पसे भी नहीं होती और पर्यायमेंसे भी मेरी पर्याय नहीं होती। इस प्रकार सबसे लक्ष हटाकर जो जीव मात्र द्रव्यकी ओर झुका है उस जीवको ऐसी प्रतीति हो गई है कि सामान्यमेंसे ही विशेष होता है। अज्ञानीको ऐसी स्वाधीनताकी प्रतीति नहीं होती।

भगवानने जैसा देखा है वैसा ही होता है यह निश्चय करनेवालेका वीर्य परसे हटकर निजमें स्तम्भित हो गया है ज्ञानने निजमें स्थिर होकर सर्वज्ञकी ज्ञानशक्तिका और समस्त द्रव्योंका निर्णय किया है। वह निर्णयरूप पर्याय न तो किसी परमेंसे आई है और न विकल्पमेंसे भी आई है। किन्तु वह निर्णयकी शक्ति द्रव्यमेंसे प्रगट हुई है, अर्थात् निर्णय करनेवालेने द्रव्यको प्रतीतिमें लेकर निर्णय किया है। ऐसा निर्णय करनेवाला जीव ही सर्वज्ञका सच्चा भक्त है। उसका झुकाव अपने सर्वज्ञस्वभावकी ओर हुआ है अतः वह कहीं भी न रुककर अल्प कालमें ही संपूर्ण सर्वज्ञ हो जायगा। इससे विरुद्ध अर्थात् कोई द्रव्य अन्य द्रव्यका कुछ कर सकता है, ऐसा जो मानता है वह वास्तवमें अपने आत्माको, सर्वज्ञके ज्ञानको, न्यायको तथा द्रव्य पर्यायको नहीं मानता।

१—अपना आत्मा परसे भिन्न है तथापि वह परका कुछ करता है इस प्रकार मानना सो आत्माको पर रूप मानना है अथवा आत्माको नहीं मानना ही है।

२—वस्तुकी अवस्था सर्वज्ञदेवके देखे हुए अनुसार होती है उसकी जगह मानना कि मैं उसे बदल सकता हूँ, सर्वज्ञके ज्ञानको यथार्थ न माननेके समान है।

३—वस्तुकी ही क्रमबद्ध अवस्था होती है, वहाँ निमित्त करता है अथवा निमित्त नई परिवर्तन कर डालता है यह बात कहाँ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रही ? निमित्त परका कुछ भी नहीं करता तथापि जो यह मानता है कि मेरे निमित्तसे परमें कोई परिवर्तन होता है वह सच्चे न्यायको नहीं मानता।

४—द्रव्यकी पर्याय द्रव्यमेंसे ही आती है, उसकी जगह जो यह मानता है कि परमेंसे द्रव्यकी पर्याय आती है (अर्थात् जो यह मानता है कि मैं परकी पर्यायको करता हूँ) वह द्रव्य–पर्यायके स्वरूपको ही नहीं मानता। इस प्रकार एक विपरीत मान्यतामें अनन्त असत्का सेवन आ जाता है।

वस्तुमेंसे क्रमबद्धपर्याय आती है, वह दूसरा कुछ नहीं करता, तथापि उस समय निमित्त अवश्य उपस्थित होता है, किन्तु निमित्तके द्वारा कोई भी कार्य नहीं होता। निमित्त सहायता करता हो सो बात नहीं है और न ऐसा ही होता है कि निमित्तकी उपस्थिति न हो। जैसे ज्ञान समस्त वस्तुको मात्र जानता है किन्तु किसीका कुछ करता नहीं है, इसी प्रकार निमित्त मात्र उपस्थित होता है, वह उपादानके लिये कोई असर, सहायता अथवा प्रेरणा नहीं करता और प्रभाव भी नहीं डालता।

जिस समय निजलक्षके पुरुषार्थके द्वारा आत्माकी सम्यग्दर्शन–पर्याय प्रगट होती है उस समय सच्चे देव, गुरु, शास्त्र निमित्तरूप आवश्यक होते हैं।

प्रश्नः—जीवको सम्यग्दर्शनके प्रगट होनेकी तैयारी हो और सच्चे देव, गुरु, शास्त्र न मिलें तो क्या सम्यग्दर्शन नहीं होता ?

उत्तरः—यह हो ही नहीं सकता कि जीवकी तैयारी हो और सच्चे देव, गुरु, शास्त्र न हों। जब उपादानकारण तैयार होता है तब निमित्तकारण स्वयमेव उपस्थित होता है, किन्तु कोई किसीका कर्ता नहीं होता। उपादानके कारण न तो निमित्त आता है और न निमित्तके कारण उपादानका कार्य होता है। दोनों स्वतन्त्ररूपमें अपने अपने कार्यके कर्ता हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अहो ! वस्तु कितनी स्वतन्त्र है ! समस्त वस्तुओंमें क्रम-वर्तित्व चल ही रहा है, एकके बाद दूसरी पर्याय कहो या क्रमबद्ध-पर्याय कहो, जो पर्याय होनी है वह होती ही रहती है। ज्ञानी जीव ज्ञाताके रूपमें जानता रहता है और अज्ञानी जीव कर्तृत्वका मिथ्याभिमान करता है। जो परका अभिमान करता है उसकी पर्याय क्रमबद्ध होन परिणमित होती है और जो ज्ञाता रहता है उसकी ज्ञानपर्याय क्रमशः विकसित होकर केवलज्ञानको प्राप्त हो जाती है।

वस्तु की अनादि अनन्त समयकी पर्यायमेंसे एक भी पर्यायका क्रम नहीं बदलता। अनादि अनन्त कालके जितने समय हैं उतनी ही प्रत्येक वस्तुकी पर्यायें हैं। पहले समयकी पहली पर्याय, दूसरे समयकी दूसरी पर्याय और तीसरे समयकी तीसरी पर्यायके क्रमसे जितने समय हैं उतनी ही पर्यायें क्रमबद्ध होती हैं। जिसने ऐसा स्वीकार किया उसकी दृष्टि एक एक पर्यायसे हटकर अभेद द्रव्य पर हो गई और वह परसे उदास हो गया। यदि कोई यह कहे कि मैं परकी पर्यायको कर दूं तो इसका मतलब यह हुआ कि वह वस्तु की अनादि अनन्त कालकी पर्यायोंमें परिवर्तन करना मानता है, अर्थात् वह वस्तुस्वरूपको विपरीतरूपमें मानता है, और इसलिये वह मिथ्यादृष्टि है।

वस्तु और वस्तुके गुण अनादि अनन्त हैं। अनादि अनन्त कालके जितने समय हैं उतनी ही उस उस समयकी पर्यायें वस्तुमेंसे क्रमबद्ध प्रगट होती हैं। जिस समयकी जो पर्याय है उस समय वही पर्याय प्रगट होती है, उल्टी-सीधी नहीं होती तथा आगे पीछे भी नहीं होती। पर्यायके क्रममें परिवर्तन करनेके लिये कोई भी समर्थ नहीं है। इस क्रमबद्धपर्यायके सिद्धान्तमें केवलज्ञान खड़ा हो जाता है। यह तो दृष्टिके चिरस्थायी प्याले हैं उन्हें पचानेके लिये श्रद्धाज्ञानमें अनन्त पुरुषार्थ चाहिए। जब अनादि अनन्त अखण्ड द्रव्यको प्रतीतिमें लेते हैं तब क्रमबद्धपर्यायकी श्रद्धा होती है; क्योंकि क्रमबद्ध-पर्यायका मूल तो वही है। जो क्रमबद्धपर्यायकी श्रद्धा करता है वह

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अनादि अनन्त पर्यायोंका ज्ञायक और चैतन्यके केवलज्ञानकी प्रतीति-वाला हो जाता है। मेरी पर्याय मेरे द्रव्यमेंसे आती है, इसप्रकार द्रव्यकी ओर झुकने पर साधकपर्यायमें अपूर्णता रहने पर भी उसे अब द्रव्यकी ओर ही देखना रहा और उसी द्रव्यके बल पर पूर्णता हो जायगी।

वस्तुका सत्यस्वरूप तो ऐसा ही है, इसे समझे बिना छुटकारा नहीं है, वस्तुका स्वाधीन परिपूर्ण स्वरूप ध्यानमें लिये बिना पर्यायमें शान्ति कहाँ से आयेगी, यदि सुखदशा चाहिए हो तो वह वस्तुस्वरूप जानना पड़ेगा जिसमें से सुखदशा प्रगट हो सके।

अहो ! मेरी पर्याय भी क्रमबद्ध ही होती है इस प्रकार जिसने निश्चय किया उसे अपनेमें समभाव—ज्ञाताभाव हो जाता है, उसे पर्यायको बदलनेकी आकुलता नहीं रहती। किन्तु जो जो पर्यायें होती हैं उनका ज्ञाताके रूपमें जाननेवाला होता है। जो ज्ञाताके रूपमें जाननेवाला होता है उसे केवलज्ञान होनेमें विलम्ब कैसा ? जिसे स्वभावमें समभावी ज्ञान नहीं है अर्थात् जिसे अपने द्रव्यकी क्रमबद्ध-दशाकी प्रतीति नहीं है उस जीवकी रुचि परमें जाती है और उसके विषमभावसे क्रमबद्धरूपमें विकारी पर्याय होती है। ज्ञातृत्वका विरोध करके जो पर्याय होती है वह विषमभावसे है (विकारी है) और निजमें दृष्टि करके ज्ञातृत्वके रूपमें रहने पर जो पर्याय होती है वह समभावसे क्रमबद्ध विशेषशुद्ध होती है।

इसमें तो सब कुछ अपनी पर्यायमें ही समाविष्ट हो जाता है। यदि अपनी क्रमबद्धपर्यायको स्वदृष्टिसे करे तो शुद्ध हो और यदि पर दृष्टिसे करे तो अशुद्ध हो। परके साथ सम्बन्ध न रहने पर भी दृष्टि किस ओर जाती है इस पर क्रमबद्धपर्यायका आधार है। कोई जीव शुभभाव करनेसे पर वस्तु (देव, शास्त्र, गुरु अथवा मन्दिर इत्यादि) को प्राप्त नहीं कर सकता और अशुभभाव करनेसे कोई रुपया पैसा इत्यादि पर वस्तुको प्राप्त नहीं कर सकता। जो पर वस्तु जिस कालमें और जिस क्षेत्रमें आनी होती है वह वस्तु उस

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

काल और उस क्षेत्रमें स्वयं आ जाती है, वह आत्मभावके कारण नहीं आती। समस्त वस्तुकी पर्यायें अपने क्रमबद्ध नियमानुसार ही होती हैं उनमें कोई फर्क नहीं आता। इस समझमें वस्तुकी प्रतीति और केवलज्ञानस्वभावका अनन्त वीर्य प्रगट होता है। इसे मानने पर अनन्त पर द्रव्योंके कर्तृत्वको छेदकर अकेला ज्ञाता हो जाता है। इसमें सम्यग्दर्शनका ऐसा अपूर्व पुरुषार्थ भरा हुआ है कि जैसा अनन्त कालमें कभी भी नहीं किया था।

जैसे आत्मामें सभी पर्याय क्रमबद्ध होती हैं उसी प्रकार जड़में भी जड़की सभी अवस्थायें क्रमबद्ध होती हैं। कर्मकी जो जो अवस्था होती है उसे आत्मा नहीं करता किन्तु वह परमाणुकी क्रमबद्धपर्याय है। कर्मके परमाणुओंमें उदय, उदीरणा इत्यादि जो दस अवस्थायें (कारण) हैं वे भी परमाणुकी क्रमबद्ध दशायें हैं। आत्माके शुभ परिणामके कारण कर्मके परमाणुओंकी दशा बदल नहीं गई, किन्तु परमाणुओंमें ही उस समय वह दशा होनेकी योग्यता थी इसलिये वह दशा हुई है। जीवके पुरुषार्थके कारण कर्मकी क्रमबद्ध अवस्थामें भंग नहीं पड़ जाता; जीव अपनी दशामें पुरुषार्थ करता है और उस समय कर्मके परमाणुओंकी क्रमबद्धदशा उपशम, उदीरणादिरूप स्वयं होती है, परमाणुमें उसकी अवस्था उसकी योग्यतासे, उसके कारणसे होती है, किन्तु आत्मा उसका कुछ नहीं करता।

प्रश्न :—यदि कर्म उस परमाणुकी क्रमबद्धपर्याय ही है तो फिर जैनोंमें तो कर्मसिद्धान्तके विपुल शास्त्र भरे पड़े हैं उसके संबंधमें क्या समझा जाय ?

उत्तर :—हे भाई ! वह सभी शास्त्र आत्माको ही बतानेवाले हैं। कर्मका जितना वर्णन है उसका आत्माके परिणामके साथ मात्र निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध है। आत्माके परिणाम किस किस प्रकारके होते हैं यह समझानेके लिये उपचारसे कर्ममें भेद करके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

समझाया है। निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्धका ज्ञान करनेके लिये कर्मका वर्णन किया है किन्तु जड़कर्मके साथ आत्माका कर्ता-कर्म सम्बन्ध किंचित्मात्र भी नहीं है।

प्रश्न :—बंध, उदय, उदीरणा, उपशम अपकर्षण, उत्कर्षण, संक्रमण, सत्ता, निद्धत्त, और निकाचित्त, ऐसे दस प्रकारके करण (कर्मकी अवस्थाके प्रकार) क्यों कहे हैं ?

उत्तर:—अहो, इसमें भी वास्तवमें तो चैतन्यको ही पहचान कराई गई है। कर्मके जो दस प्रकार बताये हैं वे आत्माके परिणामोंके प्रकार बतानेके लिये ही हैं। आत्माका पुरुषार्थ वैसे दस प्रकारसे हो सकता है यह बतानेके लिये कर्मके भेद करके समझाये हैं। आत्माके पुरुषार्थके समय प्रस्तुत परमाणु उसकी योग्यताके अनुसार स्वयं परिणमन करता है। इसमें तो दोनोंके निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्धका ज्ञान कराया है परन्तु यह बात नहीं की है कि कर्म आत्माका कुछ करते हैं।

एक कर्म परमाणु भी द्रव्य है, उसमें जो अनादि अनन्त पर्याय होती हैं वही समय समय पर क्रमबद्ध होती हैं।

प्रश्न:—आपने तो यह कहा है न कि कर्मकी उदीरणा होती है ?

उत्तर :—उदीरणाका अर्थ यह नहीं है कि बादमें होने वाली अवस्थाको उदीरणा करके जल्दी लाया गया हो; कर्मकी क्रमबद्ध अवस्था ही उस तरहकी होनी है जीवने अपनेमें पुरुषार्थ किया है यह बतानेके लिये उपचारसे ऐसा कहा है कि कर्ममें उदीरणा हुई है। वास्तवमें कर्मकी अवस्थाका क्रम बदल नहीं गया, परन्तु जीवने अपनी पर्यायमें उस प्रकारका पुरुषार्थ किया है—उसका ज्ञान करानेके लिये ही उदीरणा कही जाती है।

जहाँ यह कहा जाता है कि जीव अधिक पुरुषार्थ करे तो अधिक कर्म खिर जाते हैं वहाँ भी वास्तवमें जीवने कर्मोंको खिरानेका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पुरुषार्थ नहीं किया किन्तु अपने स्वभावमें रहनेका पुरुषार्थ किया है। जीवके विशेष पुरुषार्थका ज्ञान करानेके लिये उपचारसे ऐसा कहा जाता है कि बहुत समयके कर्मपरमाणुओंको अल्प कालमें ही नष्ट कर दिया है। इस आरोपित कथनमें यथार्थ वस्तुस्वरूप तो यह है कि जीवने स्वभावमें रहनेका पुरुषार्थ किया और उस समय जिन कर्मोंकी अवस्था स्वयं खिरने रूप थी वह खिर गई। परमाणु की अवस्थाके क्रममें भंग नहीं पड़ता। बहुत कालके कर्म क्षण भरमें टाल दिये इसका अर्थ इतना ही समझना चाहिये कि जीवने बहुतसा पुरुषार्थ अपनी पर्यायमें किया है।

छहों द्रव्य परिणमनस्वभावी हैं और वे अपने आप क्रमबद्ध-पर्यायमें परिणमित होते हैं। छहों द्रव्य परकी सहायताके बिना स्वयं परिणमित होते हैं, यह श्रद्धा करनेमें ही अनन्त पुरुषार्थ है। षुरुषार्थके बिना जीवकी एक भी पर्याय नहीं होती। मात्र पुरुषार्थ की उन्मुखता अपनी ओर करनेकी जगह जीव परकी ओर करता है, यही अज्ञान है। यदि स्वभावको रुचि करे, तो स्वभावको ओर ढले, अर्थात् पर्याय क्रमशः शुद्ध हो जाय।

इस बातकी समझमें आत्माके मोक्षका उपाय निहित है इसलिये इस बातको खूब विश्लेषण करके समझना चाहिये, उसे जरा भी ढकना नहीं चाहिये। उसे निर्णयपूर्वक स्पष्ट करके जानना चाहिये, परम सत्को ढकना नहीं चाहिये किन्तु ऊहापोह करके बराबर विश्लेषणपूर्वक निश्चय करना चाहिये। सत्यमें किसी की लज्जा नहीं होती यह तो वस्तुस्वरूप है।

सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा अपने सम्यग्ज्ञानसे यह जानता है कि सर्वज्ञभगवानने अपने ज्ञानमें जो जाना है उस प्रकार प्रत्येक वस्तु क्रमबद्ध परिणमित होती है। मेरी केवलज्ञान पर्याय भी क्रमबद्धरूपमें मेरे स्वद्रव्यमेंसे ही प्रगट होगी। ऐसी सम्यक् भावनासे उसका ज्ञान बढ़कर स्वभावमें एकाग्र होता है और ज्ञाताशक्ति प्रति पर्यायमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निर्मल होती जाती है तथा विकारी पर्याय क्रमशः दूर होती जाती है। कौन कहता है कि इसमें पुरुषार्थ नहीं है। ऐसे स्वभावमें निःशंक है वह सम्यग्दृष्टि है और इस स्वभावमें जो तनिक भी संदेहका वेदन करता है वह मिथ्यादृष्टि है; उसे सर्वज्ञके ज्ञानकी और अपने ज्ञाता-स्वभावकी श्रद्धा नहीं है।

अहो! इस सम्यग्दृष्टि जीवकी भावना तो देखो वह स्वभावसे ही प्रारंभ करता है और स्वभावमें ही लाकर पूर्ण करता है। उसने जहाँसे प्रारम्भ किया था वहीं का वहीं ला रखा है। आत्मामें स्वाश्रयसे साधकदशा प्रारम्भ की है और पूर्णता भी स्वाश्रयसे आत्मामें ही होती है। केवलज्ञान सम्पूर्णतया निजमें ही समाविष्ट हो जाता है। साधक धर्मात्मा अपनेमें ही समाविष्ट होना चाहता है। उसने बाहरसे न तो कहींमेंसे प्रारम्भ किया है और न बाह्यमें कहीं रुकनेवाला है। आत्माका मार्ग आत्मामेंसे निकलकर आत्मामें ही समाविष्ट हो जाता है।

यहाँ मात्र जीवकी ही बात नहीं है किन्तु सभी पदार्थोंकी अवस्था क्रमबद्ध होती है। यहाँ मुख्यतया जीवकी बात समझाई है, आत्माकी अवस्था आत्मामें ही क्रमबद्ध प्रगट होती है वह निश्चय करनेमें अनन्त वीर्य है। वह निश्चय करने पर पहले अनन्त पदार्थों को अच्छा-बुरा मानकर जो राग-द्वेष होता था वह सब दूर हो गया, पर निमित्तका स्वामित्व मानकर जो वीर्य परमें रुक जाता था वह अब अपने आत्मस्वभावको देखनेमें लग गया है, राग, निमित्त वगैरह की ओरकी दृष्टि गई और स्वभावमें दृष्टि हो गई। स्वभावदृष्टिमें अपनी पर्यायकी स्वाधीनताकी कैसी प्रतीति होती है तत्संबंधी यह बात है। स्वभावदृष्टिको समझे बिना व्रत, तप, भक्ति, दान और पठन-पाठन यह सब बिना एकाईके शून्यके समान व्यर्थ हैं। मिथ्यादृष्टि जीवके यह कुछ सच्चे नहीं होते।

हे जीव! तेरी वस्तुमें भगवान जितनी ही परिपूर्ण शक्ति है, भगवानपना वस्तुमें ही प्रगट होता है। यदि ऐसे अवसर पर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यथार्थवस्तुको दृष्टिमें न लें तो वस्तुके स्वरूपको जाने बिना जन्म-मरणका अन्त नहीं हो सकता। वस्तुके जानने पर अनन्त संसार दूर हो जाता है। वस्तुमें संसार नहीं है, वस्तुकी प्रतीति होने पर मोक्षपर्यायकी तैयारीकी प्रतिध्वनि होने लगती है। भगवन्! यह तेरे स्वभावकी बात है, एकबार हाँ तो कह। तेरे स्वभावकी स्वीकृतिमेंसे स्वभावदशाकी अस्ति आयेगी; स्वभावसामर्थ्यसे इन्कार मत कर। सब प्रकारसे अवसर आ चुका है, अपने द्रव्यमें दृष्टि करके देख, द्रव्यमेंसे सादि---अनन्त मोक्षदशा प्रगट होती है, उस द्रव्यकी प्रतीतिके बलसे मोक्षदशा प्रगट हो जाती है ।।३२१-३२२।।

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन छहों द्रव्य में क्रमबद्धपर्याय है। यदि जीव अपनी क्रमबद्धपर्यायकी श्रद्धा करे तो उसकी क्रमबद्ध मोक्षपर्याय हुए बिना न रहे; क्योंकि क्रमबद्धकी श्रद्धाका भार निजमें आता है। जिस वस्तुमेंसे अपनी अवस्था आती है उस वस्तु पर दृष्टि रखनेसे मोक्ष होता है। पर द्रव्य मेरी अवस्थाको कर देगा ऐसी दृष्टिके टूट जानेसे और निज द्रव्यमें दृष्टि रखनेसे रागकी उत्पत्ति नहीं होती, अर्थात् वस्तुकी क्रमबद्ध अवस्था होती है ऐसी दृष्टि होने पर स्वयं ज्ञाता-दृष्टा हो जाता है और ज्ञाता-दृष्टिके बलसे अस्थिरताको तोड़कर संपूर्ण स्थिर होकर अल्पकालमें ही मुक्तिको प्राप्त कर लेता है। इसमें अनन्त पुरुषार्थ समागत है।

पुरुषार्थके द्वारा स्वरूपकी दृष्टि करनेसे और उस दृष्टिके बलसे स्वरूपमें रमणता करनेसे चैतन्यमें शुद्ध क्रमबद्धपर्याय होती है चैतन्यकी शुद्ध क्रमबद्धपर्याय प्रयत्नके बिना नहीं होती। मोक्षमार्गके प्रारम्भसे मोक्षकी पूर्णता तक सर्वत्र, सम्यक् पुरुषार्थ और ज्ञानका ही कार्य है।

बाह्य वस्तुका जो होना हो सो हो इस प्रकार क्रमबद्धताका निश्चय करना वास्तवमें तब कहलाता है जब बाह्य वस्तुसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उदास होकर सबका ज्ञाता मात्र रह जाय; तभी उसके क्रमबद्धका सच्चा निर्णय होता है। जो जीव अपनेको परका कर्ता मानता है और यह मानता है कि परसे अपनेको सुख-दुःख होता है उसे क्रमबद्धपर्यायकी किंचित् मात्र भी प्रतीति नहीं है।

मैं द्रव्य हूँ और मेरे अनन्तगुण हैं, वे गुण पलटकर समय समय पर एकके बाद एक अवस्था होती है, वह उल्टी-सीधी नहीं होती और न एक ही साथ दो अवस्थायें एकत्रित होती हैं; कोई भी समय अवस्थाके बिना—खाली नहीं जाता। केवलज्ञान और मोक्षदशा भी मेरे गुणमेंसे ही क्रमबद्ध प्रगट होती है। इस प्रकार क्रमबद्धपर्यायकी श्रद्धा होने पर अपनी पर्याय प्रगट होनेके लिये किसी पर वस्तु पर लक्ष नहीं रहेगा, और इसलिये किसी पर वस्तु पर राग-द्वेष करनेका कारण नहीं रहेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि समस्त पर पदार्थोंका लक्ष छोड़कर आत्मनिरीक्षणमें ही लग जाता है। ऐसा होने पर अपनेमें भी ऐसा आकुलताका विकल्प नहीं रहेगा कि "मेरी पूर्ण शुद्धपर्याय कब प्रगट होगी" क्योंकि तीनकालकी क्रमबद्धपर्यायसे भरा हुआ द्रव्य उसकी प्रतीतिमें आ गया है। तात्पर्य यह है कि जो क्रमबद्धपर्यायकी श्रद्धा करता है वह जीव अवश्य ही आसन्न मुक्तिगामी होता है।

क्रमबद्धपर्यायकी श्रद्धा होने पर द्रव्यकी अवस्था चाहे जिससे हो किन्तु उसमें यह विचार (राग-द्वेष) कदापि नहीं होता कि—"यह ऐसा क्यों हुआ ? यदि ऐसा हुआ होता तो मुझे ठीक होता।" क्रमबद्धपर्यायका निश्चय करनेवालेके यह श्रद्धा होती है कि इस द्रव्यकी इस समय ऐसी ही क्रमबद्ध अवस्था होनी थी, वैसा ही हुआ है; तब फिर वह उसमें राग या द्वेष क्यों करेगा ? मात्र जिस समय जिस वस्तुकी जो अवस्था होती जाती है उसका वह मात्र ज्ञान ही करता है, बस वह ज्ञाता हो गया; ज्ञातारूपमें रहकर वह अल्पकालमें ही केवलज्ञान प्राप्त करके मुक्तिको प्राप्त करेगा। यह है क्रमबद्धपर्यायकी श्रद्धाका फल।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

क्रमबद्ध अवस्थाका निर्णय उसी ज्ञायकभावका अर्थात् वीतरागस्वभावका निर्णय है और वह निर्णय अनन्त पुरुषार्थसे हो सकता है। पुरुषार्थको स्वीकार किये बिना मोक्षके ओरकी क्रमबद्ध-पर्याय नहीं होती। जिसके ज्ञानमें पुरुषार्थका स्वीकार नहीं होता वह अपने पुरुषार्थको प्रारम्भ नहीं करता और इसलिये पुरुषार्थके बिना उसे सम्यग्दर्शन और केवलज्ञान नहीं होता। पुरुषार्थको स्वीकार न करनेवालेकी क्रमबद्धपर्याय निर्मल नहीं होती, किन्तु विकारी होगी अर्थात् पुरुषार्थको स्वीकार न करनेवाला अनन्त संसारी है और पुरुषार्थको स्वीकार करनेवाला निकट मोक्षगामी है। चाहे क्रमबद्ध अवस्थाका निर्णय कहो या पुरुषार्थवाद कहो–वह यही है।

प्रश्नः—यदि क्रमबद्धपर्याय जब जो होनी हो वही हो तो फिर विकारीभाव भी जब होने हों तभी होंगे न ?

उत्तरः—अरे भाई! तेरा प्रश्न विपरीतको लेकर उपस्थित हुआ है। जिसने अपने ज्ञानमें यह प्रतीति कर ली है कि 'विकारी पर्याय जब होनी थी तब हुई' तो उसकी रुचि कहाँ जाकर अटकी है ? विकारको जाननेवालेके ज्ञानकी रुचि है या विकारकी रुचि है ? विकारको यथार्थतया जाननेका काम करनेवाला वीर्य तो अपने ज्ञानका है और उस ज्ञानका वीर्य विकारसे हटकर स्वभावके ज्ञानमें अटक रहा है; स्वभावके ज्ञानमें अटका हुआ वीर्य विकारकी या परकी रुचिमें कदापि नहीं अटकता, किन्तु स्वभावके बलसे विकारका अल्प कालमें क्षय होता है। जिसे विकारकी रुचि है उसकी दृष्टिका बल (वीर्यका भार) विकारकी ओर जाता है। "जो होनी होती है वही पर्याय क्रमबद्ध होती है" इस प्रकार किसका वीर्य स्वीकार करता है, यह स्वीकार करनेवालेके वीर्यमें परमें सुखबुद्धि नहीं होती किन्तु स्वभावमें ही सन्तोष होता है।

जैसे किसी बड़े आदमीके यहाँ शादीका अवसर हो और वह सबको आचूल निमंत्रण देकर विविध प्रकारके मिष्टान्न जिमाये,—

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इसी प्रकार यहाँ सर्वज्ञदेवके घरमें आचूल निमंत्रण है; 'मुक्तिके मंडपमें' सबका आमंत्रण है। मुक्तिमंडपके हर्ष-भोजमें सर्वज्ञभगवानके द्वारा दिव्यध्वनिमें परोसे गये न्यायोंमेंसे उच्च प्रकारके न्याय परोसे जाते हैं जिन्हें पचानेसे आत्मा पुष्ट होता है।

यदि तुझे सर्वज्ञ भगवान होना हो तो तू भी इस बातको मान, जो इस बातको स्वीकार करता है उसकी मुक्ति निश्चित् है। लो! यह मुक्तिमंडप और इसका हर्ष-भोज, इसे स्वीकार करो! अब, गाथा ३२१-३२२ में जो वस्तुस्वरूप बताया है उसकी विशेष दृढ़ताके लिये ३२३ वीं गाथा कहते हैं। जो जीव पहले गाथा ३२१-३२२ में कहे गए वस्तुस्वरूपको जानता है वह सम्यग्दृष्टि है और जो उसमें संशय करता है वह मिथ्यादृष्टि है—

एवं जो णिच्चयदो जाणदि दव्वाणि सव्वपज्जाए।
सो सदिट्ठि सुद्धो जो शंकदि सो हु कुदिट्ठि ।। ३२३ ।।

अर्थ—इस प्रकार निश्चयसे सर्व द्रव्यों (जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल) तथा उन द्रव्योंकी समस्त पर्यायोंको जो सर्वज्ञके आगमानुसार जानता है-श्रद्धा करता है वह शुद्ध सम्यग्दृष्टि है, और जो ऐसी श्रद्धा नहीं करता-शंका संदेह करता है वह सर्वज्ञके आगमके प्रतिकूल है—प्रगटरूपमें मिथ्यादृष्टि है।

सर्वज्ञदेवने केवलज्ञानके द्वारा जानकर जिन द्रव्यों और उनकी अनादि अनन्तकालकी समस्त पर्यायोंको आगममें कहा है वे सब जिनके ज्ञानमें और प्रतीतिमें जम गये हैं, वे "सदिट्ठि सुद्धो" अर्थात् शुद्ध सम्यग्दृष्टि हैं। मूल पाठमें 'सो सत्दृष्टिः शुद्धा" यह कह कर भार दिया है। पहली बात अस्तिकी अपेक्षासे कही है और फिर नास्तिकी अपेक्षासे कहते हैं कि "शंकदि सो हु कुदिट्ठि" अर्थात् जो उसमें शंका करता है वह प्रगटरूपमें मिथ्यादृष्टि है—सर्वज्ञका शत्रु है।

स्वामी कार्तिकेय आचार्यदेवने इस ३२१-३२२-३२३ वीं गाथाओंमें गूढ़ रहस्य संकलित करके रख दिया है। सम्यग्दृष्टि जीव

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बराबर जानता है कि त्रैकालिक समस्त पदार्थोंकी अवस्था क्रमबद्ध है। सर्वज्ञदेव और सम्यग्दृष्टिमें इतना अन्तर है कि सर्वज्ञदेव समस्त द्रव्यों की क्रमबद्धपर्यायोंको प्रत्यक्ष ज्ञानसे जानते हैं और सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा समस्त द्रव्योंकी क्रमबद्धपर्यायको आगमप्रमाणसे प्रतीतिमें लेता है अर्थात् परोक्षज्ञानसे निश्चय करता है। सर्वज्ञके वर्तमान राग-द्वेष सर्वथा दूर हो गये हैं। सम्यग्दृष्टिके भी अभिप्रायमें राग-द्वेष सर्वथा दूर हो गये हैं। सर्वज्ञभगवान केवलज्ञानसे त्रिकालको जानते हैं; सम्यग्दृष्टि जीव यद्यपि केवलज्ञानसे नहीं जानता तथापि वह श्रुतज्ञानके द्वारा त्रिकालके पदार्थोंकी प्रतीति करता है। उसका ज्ञान भी निःशंक है। पर्याय प्रत्येक वस्तुका धर्म है, वस्तु स्वतन्त्रतया अपनी पर्यायरूपमें होती है। जानने पर 'यों कैसे हुई' ऐसी शंका करनेवालेको वस्तुके स्वतन्त्र 'पर्यायधर्म' की और ज्ञानके कार्यकी खबर नहीं है। ज्ञानका कार्य मात्र जानना है, जाननेमें यों कैसे हुआ, इसप्रकारकी शंका को स्थान ही कहाँ है? 'ऐसा कैसे' ऐसी शंका करनेका ज्ञानका स्वरूप ही नहीं है, किन्तु 'जो पर्याय होती है वह वस्तुके धर्मानुसार ही होती है,' इस प्रकार ज्ञानस्वभावका निर्णय करके ज्ञानी सबको निःशंक रूपमें जानता रहता है। ऐसे ज्ञानके बलसे केवलज्ञान और अपनी पर्यायके बीचके अन्तरको तोड़कर पूर्ण केवलज्ञानको अल्प कालमें ही प्रगट कर लेगा।

जो जीव वस्तुकी क्रमबद्ध स्वतन्त्र पर्यायको नहीं मानता और यह मानता है कि "मैं परका कुछ कर सकता हूँ—उसमें परिवर्तन कर सकता हूँ और पर मुझे राग-द्वेष करता है" उसे सर्वज्ञके ज्ञानकी श्रद्धा नहीं है, तथा वह सर्वज्ञके आगमसे प्रतिकूल प्रगट मिथ्यादृष्टि है। जो यह मानता है कि जो सर्वज्ञके ज्ञानमें प्रतिभासित हुआ है उसमें मैं परिवर्तन कर दूँ वह सर्वज्ञके ज्ञानको नहीं मानता। जो सर्वज्ञके ज्ञानकी और उनकी श्री मुखवाणीके न्यायोंको नहीं मानता वह प्रगटरूपमें मिथ्यादृष्टि है। सर्वज्ञदेव तीनकाल

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

और तीनलोकके समस्त द्रव्योंकी समस्त पर्यायोंको जानते हैं और सभी वस्तुकी पर्यायें प्रगट रूपमें उसीसे स्वयं होती हैं तथापि जो उससे विरुद्ध मानता है (सर्वज्ञके ज्ञानसे और वस्तुके स्वरूपसे विरुद्ध मानता है) वह सर्वज्ञका और अपने आत्माका विरोधी एवं प्रगट रूपमें मिथ्यादृष्टि है।

यद्यपि पर्याय क्रमबद्ध होती है किन्तु वह बिना पुरुषार्थके नहीं होती। जिस ओरका पुरुषार्थ करता है उस ओरकी क्रमबद्ध-पर्याय होती है। यदि कोई कहे कि इसमें तो नियत आ गया, तो उसके उत्तरमें कहते हैं कि हे भाई! त्रिकालकी नियत पर्यायका निर्णय करनेवाला कौन है? जो त्रिकालकी पर्यायोंको निश्चित् करता है वह मानों द्रव्यको ही निश्चित् करता है। जो परके लक्षसे निजका नियत मानता है वह एकान्तवादी बातूनी और अपने स्वभावके लक्षसे स्वयं स्वभावमें मिलकर—स्वभावकी एकता करके, रागको दूर करके ज्ञायक हो गया है उसके अपने स्वभावके पुरुषार्थमें नियत समाविष्ट हो जाता है। जहाँ स्वभावका पुरुषार्थ है वहाँ नियमसे मोक्ष है अर्थात् पुरुषार्थमें ही नियत आ जाता है। जहाँ पुरुषार्थ नहीं है वहाँ मोक्षपर्यायका नियत भी नहीं है।

अहो! महा सन्त मुनिश्वरोंने जंगलमें रह कर आत्मस्वभावका अमृत प्रवाहित किया है। आचार्यदेव धर्मके स्तंभ हैं, आचार्यदेवोंने पवित्र धर्मको सहारा देकर उसे स्थिर रखा है। एक एक आचार्य-देवने अद्भुत कार्य किया है। साधकदशामें स्वरूपकी शान्तिका वेदन करते हुए, परिषहोंको जीतकर परम सत्यको जीवित रखा है। आचार्यदेवके कथनमें केवलज्ञानकी प्रतिध्वनि गर्जित हो चुकी है। ऐसे महान शास्त्रोंकी रचना करके आचार्योंने अनेकानेक जीवों पर अपार उपकार किया है। उनकी रचना तो देखो, पद पद पर कितना गम्भीर रहस्य भरा है। यह तो सत्यकी घोषणा है, इसके संस्कार अपूर्व वस्तु हैं, और इसे समझना मानों मुक्तिको वरण करनेका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

श्रीफल है—जो इसे समझ लेता है उसका मोक्ष निश्चित् है।

प्रश्नः—जो होना होता है, सो होता है, ऐसा माननेमें अनेकान्तस्वरूप कहाँ आया ?

उत्तरः—जो होना होता है वह वैसा होता है अर्थात् परका परसे होता है और मेरा मुझसे होता है—यह जाकर परसे हटकर जो अपनी ओर सन्मुख हुआ, उसने स्वभावके लक्षसे माना है; उसकी मान्यतामें अनेकान्तस्वरूप है और 'मेरी पर्याय मेरे द्रव्यमें से क्रमबद्ध आती है, मेरी पर्यायमेंसे नहीं आती' इस प्रकार अनेकान्त है। तथा 'परकी पर्याय परके द्रव्यमेंसे क्रमबद्ध जो होनी होती है, सो होती है, मैं उसको पर्यायको नहीं करता' इस प्रकार अनेकान्त है। 'जो होना होता है वही होता है' यह जानकर अपने द्रव्यकी ओर उन्मुख होना चाहिये परन्तु 'जो होना होता है सो होता है' इस प्रकार जो मात्र परसे मानता है किन्तु अपने द्रव्यकी पर्याय कहाँसे आती है इसकी प्रतीति नहीं करता अर्थात् पर लक्ष को छोड़कर स्वलक्ष नहीं करता वह एकान्तवादी है।

प्रश्नः—भगवानने तो मोक्षमार्गके पाँच समवाय कहे हैं और आप तो मात्र पुरुषार्थ-पुरुषार्थ ही रटा करते हो तो फिर उसमें अन्य चार समवाय किस प्रकार आते हैं ?

उत्तरः—जहाँ जीव सच्चा पुरुषार्थ करता है वहाँ स्वयं अन्य चारों समवाय होते हैं। पांच समवायोंका संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है—

१—मैं परका कुछ करनेवाला नहीं हूँ, मैं तो ज्ञायक हूँ मेरी पर्याय मेरे द्रव्यमेंसे आती है, इस प्रकार स्वभावदृष्टि करके परकी दृष्टिको तोड़ना सो पुरुषार्थ है।

२—स्वभावदृष्टिका पुरुषार्थ करते हुए जो निर्मलदशा प्रगट होती है वह दशा स्वभावमें थी सो वही प्रगट हुई है, अर्थात् जो शुद्धता प्रगट होती है वह स्वभाव है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

३—स्वभावदृष्टिके पुरुषार्थसे स्वभावमेंसे जो क्रमबद्ध-पर्याय उस समय प्रगट होनी थी वही शुद्धपर्याय उस समय प्रगट हुई सो नियति है। स्वभावकी दृष्टिके बलसे स्वभावमें जो पर्याय प्रगट होनेकी शक्ति थी वही पर्याय प्रगट हुई है। बस, स्वभावमेंसे जिस समय जो दशा प्रगट हुई वही पर्याय उसकी नियति है। पुरुषार्थ करनेवाले जीवके स्वभावमें जो नियति है वही प्रगट होती है, बाहरसे नहीं आती।

४—स्वदृष्टिके पुरुषार्थके समय जो दशा प्रगट हुई वही उस वस्तुका स्वकाल है। पहले परकी ओर झुकता था उसकी जगह स्वोन्मुख हुआ सो यही स्वकाल है।

५—जब स्वभावदृष्टिसे यह चार समवाय प्रगट हुए तब निमित्तरूप कर्म उसकी अपनी योग्यतासे स्वयं हट गये, यह कर्म है।

इसमें पुरुषार्थ, स्वभाव, नियति और काल यह चार समवाय अस्तिरूप हैं अर्थात् वे चारों उपादानकी पर्यायसे सम्बद्ध हैं और पाँचवाँ समवाय नास्तिरूप है, वह निमित्तसे सम्बद्ध है। यदि पाँचवाँ समवाय आत्मामें लागू करना हो तो वह इस प्रकार है—परोन्मुखतासे हटकर स्वभावकी ओर झुकने पर प्रथमके चारों अस्तिरूपमें और कर्मको नास्तिरूपमें—इस प्रकार आत्मामें पाँचों समवायोंका परिणमन हो गया है अर्थात् निजके पुरुषार्थमें पाँचों समवाय अपनी पर्यायमें समाविष्ट हो जाते हैं। प्रथम चार अस्तिसे और पाँचवाँ नास्तिसे अपनेमें है।

जब जीवने सम्यक् पुरुषार्थ नहीं किया तब विकारीभावके लिये कर्म निमित्त कहलाया और जब सम्यक् पुरुषार्थ किया तब कर्मका अभाव निमित्त कहलाया। जीव अपनेमें पुरुषार्थके द्वारा चार समवायोंको प्रकट करे और प्रस्तुत कर्मकी दशा बदलनी न हो ऐसा हो ही नहीं सकता। जीव निज लक्ष करके चार समवायरूप परिणमित होता है और कर्मकी ओर लक्ष करके परिणमित नहीं होता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(अर्थात् उदयमें युक्त नहीं होता) तब कर्मकी अवस्थाको निर्जरा कहा जाता है। जीव जब स्वसन्मुख परिणमित होता है तब भले ही कर्म उदयमें हो किन्तु जीवके उस समयके परिणमनमें कर्मके निमित्तकी नास्ति है। स्वयं निजमें एकमेक हुआ और कर्मकी ओर नहीं गया सो यही कर्मकी नास्ति अर्थात् उदयका अभाव है।

आत्मामें एक समयकी स्व-सन्मुखदशामें पाँचों समवाय आ जाते हैं। जीव जब पुरुषार्थ करता है तब उसके पाँचों ही समवाय एक ही समयमें होते हैं, स्वकी प्रतीतिमें परकी प्रतीति आ ही जाती है। ऐसी क्रमबद्ध वस्तुस्वरूपकी प्रतीतिमें केवलज्ञानका पुरुषार्थ आ गया है।

प्रश्न :—जीव केवलज्ञानको प्रगट करनेका पुरुषार्थ करे किन्तु उस समय कर्मकी क्रमबद्ध अवस्था अधिक समय तक रहनी हो तो जीवके केवलज्ञान कैसे प्रगट होगा।

उत्तर :—अद्भुत है तुम्हारी शंका, तुझे अपने पुरुषार्थका ही विश्वास नहीं है इसलिये तेरी दृष्टि कर्मकी ओर प्रलंबित हुई है। जो ऐसी शंका करता है कि 'सूर्यका उदय होगा और फिर भी यदि अन्धकार नष्ट न हुआ तो ?' वह मूर्ख है, इसी प्रकार "मैं पुरुषार्थ करूँ और कर्मकी स्थिति अधिक समय तक रहनी हो तो ?" जो ऐसी शंका करता है उसे पुरुषार्थकी प्रतीति नहीं है, वह मिथ्यादृष्टि है। कर्मकी क्रमबद्धपर्याय ऐसी हीं है कि जब जीव पुरुषार्थ करता है तब वह स्वयं ही दूर हो जाती है 'कर्म अधिक काल तक रहना हो तो ?' यह दृष्टि तो परकी ओर प्रलंबित हुई है और ऐसी शंका करनेवालेने अपने पुरुषार्थको पराधीन माना है। तुझे अपने आत्माके पुरुषार्थकी प्रतीति है या नहीं ? मैं अपने स्वभावके पुरुषार्थसे केवलज्ञान प्रगट करता हूँ और जब मैं अपनी केवलज्ञानदशा प्रगट करता हूँ तब घातियाकर्म होते ही नहीं, ऐसा नियम है। जिसे उपादानकी श्रद्धा हो उसे निमित्तकी शंका नहीं होती। जो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निमित्तकी शंकामें अटक गया है उसने उपादानका पुरुषार्थ ही नहीं किया है। जो उपादान है सो निश्चय है और जो निमित्त है सो व्यवहार है।

निश्चयनय संपूर्ण द्रव्यको लक्षमें लेता है। संपूर्ण द्रव्यकी श्रद्धामें केवलज्ञानसे कमीकी स्वीकृति ही कहाँ है? क्रमबद्धपर्यायकी श्रद्धामें द्रव्यकी श्रद्धा है और द्रव्यकी श्रद्धामें केवलज्ञानसे हीन दशाकी प्रतीति ही नहीं है। इसलिये क्रमबद्धपर्यायकी श्रद्धामें केवलज्ञान ही है।

सर्वज्ञ तो सभी वस्तुकी पर्यायोंके क्रमको जानता है इसलिये जो निम्नदशामें भी यह प्रतीतिमें लाता है कि 'सभी वस्तुओंकी पर्यायें क्रमबद्ध हैं' वह जीव सर्वज्ञताको स्वीकार करता है, और जो सर्वज्ञताको स्वीकार करता है वह आत्मज्ञ ही है, क्योंकि सर्वज्ञता कभी भी आत्मज्ञताके बिना नहीं होती। जो जीव वस्तुकी सम्पूर्ण क्रमबद्ध-पर्यायोंको नहीं मानता वह सर्वज्ञताको नहीं मानता और जो सर्वज्ञताको नहीं मानता वह आत्मज्ञ नहीं हो सकता।

आत्माकी सम्पूर्ण ज्ञानशक्तिमें सभी वस्तुओंकी तीनोंकालकी पर्यायें जैसी होनी होती हैं वैसी ही ज्ञात होती हैं और जैसी ज्ञात होती हैं उसी प्रकार होती हैं—जिसे ऐसी प्रतीति हो जाती है उसे क्रमबद्धपर्यायको और सर्वज्ञकी शक्तिकी प्रतीति हो जाती है और वह आत्मज्ञ हो जाता है; आत्मज्ञ जीव सर्वज्ञ अवश्य होता है।

वस्तुके प्रत्येक गुणकी पर्याय प्रवाहबद्ध चलती ही रहती है। एक ओर सर्वज्ञका केवलज्ञान परिणमित हो रहा है दूसरी ओर जगतके सर्व द्रव्योंकी पर्याय अपने अपने भीतर क्रमबद्ध परिणमित हो रही है। अहो! इसमें एक दूसरेका क्या कर सकता है समस्त द्रव्य अपने आपमें ही परिणमित हो रहे हैं। बस! ऐसी प्रतीति

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

करने पर ज्ञान अलग ही रह गया; सबमेंसे राग-द्वेष उड़ गया और मात्र ज्ञान रह गया, यही केवलज्ञान है।

परमार्थसे निमित्तके बिना ही कार्य होता है। विकाररूपमें या शुद्धरूपमें जीव स्वयं ही निज पर्यायमें परिणमित होता है और उस परिणमनमें निमित्तकी तो नास्ति है। कर्म और आत्माका सम्मिलित परिणमन होकर विकार नहीं होता। एक वस्तुके परिणमनके समय परवस्तुकी उपस्थिति हो तो इससे क्या ? पर वस्तुका और निज वस्तुका परिणमन तो बिलकुल भिन्न ही है, इसलिये जीवकी पर्याय निमित्तके बिना अपने आपसे ही होती है, निमित्त कहीं जीवकी राग-द्वेषादि पर्यायमें घुस नहीं जाता। इसलिये निमित्तके बिना ही राग-द्वेष होता है। निमित्तकी उपस्थिति होती है सो तो ज्ञान करनेके लिये है; ज्ञानकी सामर्थ्य होनेसे जीव निमित्तको जानता भी है, परन्तु निमित्तके कारण उपादानमें कुछ भी नहीं होता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वस्तु विज्ञान–अंक

इसमें श्री प्रवचनसारकी ९९ वीं गाथाके प्रवचन प्रगट किये गये हैं। इस गाथाकी गहराईमें भरा हुआ वस्तुस्वरूपका यथार्थ विज्ञान पूज्य श्री कानजीस्वामीने विशिष्ट सूक्ष्मता और स्पष्टताके साथ इन प्रवचनोंमें प्रगट किया है; इससे इसका नाम "वस्तुविज्ञान–अंक" रखा गया है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वीतरागी विज्ञानमें ज्ञात होता विश्वके ज्ञेय पदार्थोंका स्वभाव

[श्री प्रवचनसार गाथा ९९ पर पूज्य स्वामीजीके प्रवचनोंका सार]

सदवट्ठिदं सहावे दव्वं दव्वस्स जो हि परिणामो ।
अत्थेसु सो सहावो ट्ठिदिसंभवणाससंबद्धो ।। ९९ ।।
सदवस्थितं स्वभावे द्रव्यं द्रव्यस्य यो हि परिणामः ।
अर्थेषु स स्वभावः स्थितिसंभवनाशसंबद्धः ।। ९९ ।।

"द्रव्यो स्वभाव विषे अवस्थित, तेथी "सत्" सौ द्रव्य छे;
उत्पाद-ध्रौव्य-विनाशयुत परिणाम द्रव्यस्वभाव छे" ।९९।

यह गाथा अलौकिक है। इस गाथामें आचार्यदेवने वस्तुके स्वभावका रहस्य भर दिया है। उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्त परिणाम वह वस्तुका स्वभाव है और उस स्वभावमें द्रव्य नित्य अवस्थित है, इसलिये द्रव्य सत् है।

यहां द्रव्यके समय-समयके परिणाममें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य समझानेके लिये आचार्यदेव क्षेत्रका उदाहरण देते हैं। द्रव्यका—(आत्माका) असंख्यप्रदेशी क्षेत्र एक साथ खुला-फैला हुआ है, इससे वह झट लक्षमें आ जाये इसलिये उस क्षेत्रका उदाहरण देकर परिणामके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य समझाते हैं।

जिस प्रकार द्रव्यको सम्पूर्ण विस्तारक्षेत्ररूपसे लक्षमें लिया जाये तो उसका वास्तु (क्षेत्र) एक है, उसी प्रकार सम्पूर्ण द्रव्यके तीनोंकालके समय-समयके परिणामोंको एक साथ लक्षोंमें लिया जाये तो उसकी वृत्ति एक है; तथापि, जिस प्रकार क्षेत्रमें प्रदेशक्रम है उसी प्रकार द्रव्यके परिणमनमें प्रवाहक्रम है। द्रव्यके विस्तारक्रमका अंश वह प्रदेश है उसी प्रकार द्रव्यके प्रवाहक्रमका अंश सो परिणाम है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

देखो, यह ज्ञेय अधिकार है। समस्त ज्ञेय सत् हैं और उन्हें जाननेवाला ज्ञान है। समस्त ज्ञेय जैसे हैं वैसे एक साथ ज्ञानमें ज्ञात होते हैं। यहाँ आत्मा ज्ञानका सागर है और सामने स्व-पर समस्त ज्ञेयोंका सागर भरा पड़ा है। बस, इसमें मात्र वीतरागता ही आई; ज्ञेयमें 'यह ऐसा क्यों' ऐसा राग-द्वेष या फेरफार करना नहीं रहा। अहो! आचार्यदेवने प्रत्येक गाथामें वीतरागी बरफीके पर्त लगाये हैं, प्रत्येक गाथामेंसे वीतरागताके टुकड़े निकलते हैं।

समयसारके सर्वविशुद्ध ज्ञान अधिकारमें द्रव्य अपने क्रमबद्ध-परिणामसे उत्पन्न होता है—यह बात करके वहाँ सम्यग्दर्शनका सम्पूर्ण विषय बतलाया है—द्रव्यदृष्टि कराई है। और यहाँ ज्ञानप्रधान कथन है इससे समस्त द्रव्य परिणमनस्वभावमें स्थिर हैं—ऐसा कहकर पूर्ण ज्ञान और पूर्ण ज्ञेय बतलाये हैं;—ऐसे सर्व ज्ञेयोंके स्वभाव और उन्हें जाननेवाले ज्ञानस्वभावकी श्रद्धा करना सो सम्यग्दर्शन है।

प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक परमाणु और धर्मास्तिकाय आदि द्रव्य पृथक् पृथक् स्वयंसिद्ध पदार्थ हैं। सामान्यतया देखने पर उस प्रत्येक द्रव्यका क्षेत्र अखण्ड एक है, तथापि उस क्षेत्रके विस्तारका जो सूक्ष्म अंश है वह प्रदेश है। छह द्रव्योंमेंसे परमाणु और कालका क्षेत्र तो एक प्रदेश ही है। आत्माका असंख्यप्रदेशी क्षेत्र है। वह समग्रपने द्वारा एक होने पर भी उसका अंतिम अंश प्रदेश है। इस प्रकार यहाँ क्षेत्रका दृष्टान्त है और सिद्धान्तरूपमें वस्तुके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य परिणामोंको समझाना है। जिस प्रकार असंख्य-प्रदेशी विस्तार एक साथ लेनेसे द्रव्यका क्षेत्र एक है उसी प्रकार प्रत्येक द्रव्यकी अनादि-अनन्त परिणमनधारा समग्रपनेके द्वारा एक है और उस संपूर्ण प्रवाहका छोटेसे छोटा एक अंश सो परिणाम है। प्रत्येक परिणामको पृथक् किये बिना समग्ररूपसे द्रव्यके अनादि-अनन्त प्रवाहको देखने पर वह एक है; अनादि निगोदसे लेकर अनन्त सिद्धदशा तक द्रव्यका परिणमनप्रवाह एक ही है। जिस प्रकार सम्पूर्ण क्षेत्र एक साथ फैला हुआ पड़ा हुआ है, उसमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रदेशभेदसे न देखा जाये तो द्रव्यका क्षेत्र एक ही है। उसी प्रकार त्रिकाली द्रव्यके प्रवाहमें परिणामका भेद न किया जाय तो संपूर्ण प्रवाह एक ही है, और उस त्रैकालिक प्रवाहक्रमका प्रत्येक अंश सो परिणाम है।

यहाँ प्रदेशोंका विस्तारक्रम क्षेत्र अपेक्षासे है और परिणामोंका प्रवाहक्रम परिणमन अपेक्षासे है। यहाँ क्षेत्रका दृष्टान्त देकर आचार्यदेव परिणामोंका स्वरूप समझाना चाहते हैं।

यह, ज्ञानमें ज्ञात होने योग्य ज्ञेयपदार्थोंका वर्णन है। कोई कहे कि ऐसी सूक्ष्म बात कैसे ज्ञात हो ?—किन्तु भाई ! यह सब ज्ञेय हैं इसलिये अवश्य ज्ञात हो सकते हैं; और तेरा ज्ञानस्वभाव समस्त ज्ञेयोंको जान सकता है। आत्मा ज्ञाता है और स्वयं स्वज्ञेय भी है। तथा अन्य जीव—पुद्गलादि परज्ञेय हैं। उस ज्ञान और ज्ञेयको कैसा प्रतीतिमें लेनेसे सम्यक्त्व होता है उसकी यह बात है।

धर्मास्तिकाय आदिके असंख्यप्रदेश ऐसे के ऐसे बिछे-फैले हुए हैं, आकाशके अनन्त प्रदेश ऐसे के ऐसे बिछे-फैले हुए हैं; उनमें कभी एक भी प्रदेशका क्रम आगे-पीछे नहीं होता; उसी प्रकार द्रव्यका अनादि अनन्त प्रवाहक्रम भी कभी खण्डित नहीं होता। प्रवाहक्रम कहकर आचार्यदेवने अनादिअनन्त ज्ञेयोंको एक साथ स्तब्ध बतला दिया है। 'प्रवाहक्रम' कहनेसे समस्त परिणामोंका क्रम व्यवस्थित ही है, कोई भी परिणाम-कोई भी पर्याय आगे-पीछे नहीं होती। इस प्रतीतिमें ही द्रव्यदृष्टि और वीतरागता है।

समय-समयके परिणामोंका एकदम सूक्ष्म सिद्धान्त समझानेके लिये प्रदेशोंका उदाहरण दिया है वह भी सूक्ष्म मालूम होता है। भीतर अपने लक्षमें यदि वस्तुका ख्याल आये तो समझमें आ सकता है। 'यह स्वरूप इस प्रकार कहना चाहते हैं'—ऐसा अंतरमें अपनेको भास होना चाहिये। समझनेके लिये जीने (सीढ़ी) का दृष्टान्त लेते हैं:—जिस प्रकार क्षेत्रसे देखने पर पूरा जीना ऐसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

का ऐसा स्थित है, उसका छोटा अंश प्रदेश है; और जीनेको लम्बाई से देखने पर एक के बाद एक सीढ़ियोंका प्रवाह है, पूरे जीनेका प्रवाह एक है, उसको एक-एक सोढ़ी उसके प्रवाहका अंश है। उन सीढ़ियोंके प्रवाहका क्रम टूटता नहीं है। दो सोढ़ियोंके बीचमें भी छोटे छोटे भाग किये जायें तो अनेक भाग होते हैं, उस चढ़ते हुये प्रत्येक सूक्ष्म भागको परिणाम समझना चाहिये। उसी प्रकार आत्मा असंख्य प्रदेशोंमें फैला हुआ एक है, और उसके क्षेत्रका प्रत्येक अंश सो प्रदेश है; और संपूर्ण द्रव्यका अस्तित्व अनादि-अनन्त प्रवाहरूपसे एक है तथा उस प्रवाहके प्रत्येक समयका अंश सो परिणाम है। उन परिणामोंका प्रवाहक्रम जीनेकी सीढ़ियोंकी भांति क्रमबद्ध है, उन परिणामोंका क्रम आगे-पीछे नहीं होता। इसलिये सब कुछ जैसा है वैसा जानना ही आत्माका स्वभाव है। इसके अतिरिक्त बीचमें दूसरा कुछ डाले तो उसे वस्तुके सत्स्वभावकी श्रद्धा नहीं है। वस्तु जैसो हो वैसा जाने-माने तो ज्ञान–श्रद्धा सच्चे हों न! वस्तु जैसो हो उससे अन्य प्रकारसे माने तो ज्ञान–श्रद्धा सच्चे नहीं होते इसलिये धर्म नहीं हो सकता।

यहाँ क्षेत्रके दृष्टान्तसे परिणामका स्वरूप समझाया है।

जिसप्रकार द्रव्यका क्षेत्र सो विस्तार, और विस्तारक्रमके अंश सो प्रदेश। उसी प्रकार द्रव्यका परिणमन सो प्रवाह और प्रवाहक्रमके अंश सो परिणाम।

इस प्रकार क्षेत्रके दृष्टांत द्वारा परिणाम सिद्ध करके एक बात पूरी की; अब उन परिणामोंका एक दूसरेमें अभाव बतलाते हैं।

"जिसप्रकार विस्तारक्रमका कारण प्रदेशोंका परस्पर व्यतिरेक है, उसी प्रकार प्रवाहक्रमका कारण परिणामोंका परस्पर व्यतिरेक है।"

द्रव्यमें विस्तारक्रम अर्थात् क्षेत्र अपेक्षासे विस्तारका कारण प्रदेशोंका परस्पर भिन्नत्व है। पहले प्रदेशका दूसरेमें अभाव, दूसरे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

का तीसरेमें अभाव—इस प्रकार प्रदेशोंके भिन्न-भिन्नपनेके कारण विस्तारक्रम रचा हुआ है। यदि प्रदेशोंका एक—दूसरेमे अभाव न हो, और एक प्रदेश दूसरे प्रदेशमें भी भावरूपसे वर्तता हो अर्थात् सब मिलकर एक ही प्रदेश हो तो द्रव्यका विस्तार ही न हो, किन्तु द्रव्य एकप्रदेशी ही हो जाये। इसलिये विस्तारक्रम करनेसे ही प्रदेश एक-दूसरेके रूपसे नहीं है ऐसा आ जाता है। 'विस्तारक्रम' अनेकताका सूचन करता है क्योंकि एकमें क्रम नहीं होता। अब, अनेकता कब निश्चित होती है ? सबमें एकता न हो किन्तु भिन्नता हो, तभी अनेकता निश्चित होती है, और अनेकता हो तभी विस्तारक्रम होता है; इसलिये विस्तारक्रमका कारण प्रदेशोंका परस्पर व्यतिरेक है।

इसी प्रकार अब विस्तारक्रमकी भाँति प्रवाहक्रमका स्वरूप कहा जाता है। 'प्रवाहक्रम' कहते ही परिणामोंकी अनेकता सिद्ध होती है, और परिणामोंकी अनेकता कहते ही एकका दूसरेमें अभाव सिद्ध होता है। क्योंकि यदि एकका दूसरेमे अभाव हो तभी अनेकता हो। यदि ऐसा न हो तो सब एक ही हो जाये। इसलिये विस्तारक्रममें जिस प्रकार एक प्रदेशका दूसरेमें अभाव है उसी प्रकार प्रवाहक्रममें एक परिणामका दूसरेमें अभाव है। इस प्रकार परिणामोंमें एकका दूसरेमें अभाव होनेसे अनादिअनंत प्रवाहक्रम रचा हुआ है ऐसा द्रव्यका स्वभाव है; ऐसे परिणामस्वभावमें द्रव्य स्थित है।

यहाँ विस्तारक्रम तो दृष्टांतरूप है। और प्रवाहक्रम सिद्धांतरूप है। दृष्टान्त सर्वप्रकारसे लागू नहीं होता। पुद्गल और काल द्रव्यका विस्तार तो एकप्रदेशी ही है इसलिये उसमें प्रदेशोंके परस्पर व्यतिरेकका दृष्टान्त लागू नहीं होता, किन्तु प्रवाहक्रमका जो सिद्धान्त है वह समस्त द्रव्योंमें समान रीतिसे लागू होता है।

जैसे—२५ कमरोंके विस्तारवाली दालान कब होती है ? यदि वे कमरे क्रमानुसार एक-दूसरेसे पृथक् हों तब। उसी प्रकार आत्मामें असंख्यप्रदेशी विस्तारवाला क्षेत्र कब होता है ? जब कि एक

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रदेशका दूसरे प्रदेशमें अभाव हो और वे समस्त प्रदेश विस्तारक्रममें अखण्डरूपसे एक-दूसरेके साथ सम्बन्धित हों।

इसी प्रकार (-प्रदेशोंके विस्तारक्रमकी भाँति) द्रव्यका अनादि-अनंत लम्बा प्रवाहक्रम कब होता है। जब कि एक परिणामका दूसरे परिणाममें अभाव हो तब। पहला परिणाम दूसरे परिणाम में नहीं है, दूसरा तीसरेमें नहीं है—इस प्रकार परिणामोंमें व्यतिरेक होनेसे द्रव्यमें प्रवाहक्रम है। द्रव्यके अनादि-अनंत प्रवाहमे एकके बाद एक परिणाम क्रमशः होते रहते हैं; ऐसे द्रव्य सो ज्ञेय हैं। ज्ञेय द्रव्यकी यथावत् प्रतीति करनेसे श्रद्धामें निर्विकल्पता और वीतरागता हो वह मोक्षका मार्ग है।

अहो! एक ही द्रव्यके एक परिणाममें दूसरे परिणामका भी जहाँ अभाव है वहाँ एक द्रव्यकी अवस्थामें दूसरा द्रव्य कुछ करे —यह तो बात ही कहाँ रहती है? एक तत्त्व दूसरे तत्त्वमें कुछ करता है अथवा एक द्रव्यके क्रमपरिणामोंमें परिवर्तन किया जा सकता है—ऐसा जो मानता है उसे ज्ञेयतत्त्वकी खबर नहीं है और ज्ञेयोंको जाननेवाले अपने ज्ञानतत्त्वकी भी खबर नहीं है।

कोई ऐसा माने कि 'मैंने अपनी बुद्धिसे पैसा कमाया' तो ऐसा नहीं है; क्योंकि बुद्धिके जो परिणाम हुऐ वह आत्माके प्रवाहक्रममें आया हुआ परिणाम है और पैसा आया वह पुद्गलके प्रवाहक्रममें आया हुआ पुद्गलका परिणाम है। दोनों द्रव्य अपने अपने प्रवाहक्रममें भिन्न भिन्नरूपसे वर्त रहे हैं। आत्मा अपने परिणामप्रवाहमें स्थिर है, और जड़ पदार्थ जड़के परिणामप्रवाहमें स्थित हैं। दोनों पदार्थोंका अस्तित्व भिन्न भिन्न है। जिसने पदार्थोंका ऐसा स्वरूप जाना उसके 'मैं परमें कुछ फेरफार करता हूँ या परके कारण मुझमें कुछ फेरफार होता है,—ऐसी मिथ्याबुद्धि तो दूर हो गई, इसलिये वह समस्त द्रव्योंका ज्ञाता रह गया। केवली भगवान वीतरागरूपसे सबके ज्ञाता हैं; उसी प्रकार यह भी ज्ञाता ही है। अभी साधक

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है इसलिये अस्थिरताके राग-द्वेष होते हैं किन्तु वह भी ज्ञाताका ज्ञेय है। ज्ञान और रागकी एकतापूर्वक राग-द्वेष नहीं होते किन्तु ज्ञानके ज्ञेयरूपसे राग-द्वेष होते हैं। इसलिये अभिप्रायसे (श्रद्धासे) तो वह साधक भी पूर्ण ज्ञाता ही है।

यथार्थ वस्तु स्वरूपको जाननेसे स्वयं छहों द्रव्योंका ज्ञाता हो गया और छहों द्रव्य ज्ञानमें ज्ञेय हुए। इस ओर स्वयं एक ज्ञाता और सामने छहों द्रव्य-ज्ञेय;—ऐसा ज्ञातापना बतलानेके लिये 'स्वात्मानुभव मनन'में कहा है कि—आत्मा सप्तम द्रव्य हो जाता है।

अहो ! ज्ञान ज्ञातास्वरूपसे है, उस ज्ञानकी प्रतीति निर्विकल्प-सम्यक्त्वका कारण है। प्रतिसमय उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप ऐसे द्रव्य-स्वभावको निश्चय करे तो ज्ञान जाननेका ही कार्य करे; और ज्ञेयमें 'ऐसा क्यों' ऐसा मिथ्याबुद्धिका विकल्प न आये। अस्थिरताका विकल्प आये वह तो ज्ञानका ज्ञेय हो जाता है, क्योंकि ज्ञानमें स्व-परप्रकाशक सामर्थ्य प्रगट हो गया है इसलिये वह रागको भी ज्ञानसे भिन्न ज्ञेयरूपसे जानता है, इसलिये उस विकल्पमें 'ऐसा विकल्प क्यों ?' ऐसा विकल्पका जोर नहीं आता; किन्तु 'यह राग भी ज्ञेयरूपसे सत् है'—ऐसा ज्ञान जान लेता है इसलिये ज्ञानकी ही अधिकता रहती है;—दूसरे प्रकारसे कहा जाये तो ज्ञान और रागका भेदज्ञान हो जाता है। और पश्चात् भी ऐसे ज्ञानस्वभावके आधारसे ज्ञेयोंको जाननेसे उस ज्ञानका विकास होकर उसकी सूक्ष्मता और वीतरागता बढ़ती जाती है, और क्रमशः पूर्ण वीतरागता और केवलज्ञान होनेसे संपूर्ण लोकालोक ज्ञेयरूपसे एक साथ ज्ञानमें डूब जाता है।—ऐसा यह अधिकार है।

यहाँ आत्मामें केवलज्ञानका सारा दल, और सामने लोकालोक ज्ञेयका दल। बस ! ज्ञेय-ज्ञायकस्वभाव रह गया। ज्ञेय-ज्ञायकपनेमें राग-द्वेष या फेरफार करना कहाँ रहा ? अहो ! ऐसे स्वभावका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वीकार तो कर ! इसकी स्वीकृतिमें वीतरागी श्रद्धा है और उसीमें वीतरागता तथा केवलज्ञानके बीज हैं।

❀

दो बातें हुई हैं:—(१) प्रथम तो, क्षेत्रके दृष्टान्तसे द्रव्य के अनादि-अनन्त प्रवाहकी एक समग्रवृत्ति बतलाई, और इस प्रवाह-क्रमके सूक्ष्म अश सो परिणाम हैं—ऐसा बतलाया। इस प्रकार द्रव्यको सत् सिद्ध किया। 'उसमें, अखण्ड अस्तित्वकी अपेक्षासे एकत्व और परिणामोंकी अपेक्षासे अनेकत्व,—इस प्रकार सत्में एकत्व-अनेकत्व भी सिद्ध किया।

(२) उसके पश्चात् परिणामोंका परस्पर व्यतिरेक सिद्ध किया।

इस प्रकार दो बातें सिद्ध कीं; अब उनका विस्तार करके उसमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य निकालते हैं।

'जिस प्रकार वे प्रदेश अपने स्थानमें स्व-रूपसे उत्पन्न और पूर्वरूपसे विनष्ट होनेसे तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूतिसे रचित एक वास्तुपने द्वारा अनुत्पन्न—अविनष्ट होनेसे उत्पत्ति-संहार-ध्रौव्यात्मक हैं, उसी प्रकार वे परिणाम अपने अवसरमें स्व-रूपसे उत्पन्न और पूर्वरूपसे विनष्ट होनेसे तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूतिसे रचित एक प्रवाहपने द्वारा अनुत्पन्न-अविनष्ट होनेसे उत्पत्ति-संहार-ध्रौव्यात्मक हैं।'

इसमें प्रदेशोंकी बात दृष्टान्तरूप और परिणामोंकी बात सिद्धान्तरूप है।

प्रश्न:—यह कौनसा विषय चल रहा है ?

उत्तर:—यह वस्तुस्वभावकी बात हो रही है। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप परिणाम—वह पदार्थोंका स्वभाव है, और उस स्वभावमें सदैव स्थित द्रव्य सत् है—यह बात यहाँ सिद्ध करना है। उसमें प्रथम इतनी बात तो सिद्ध कर चुके हैं कि—द्रव्यकी वृत्ति अनादि-अनन्त अखण्डरूपसे एक होने पर भी, उसके प्रवाहक्रमका अंश सो परिणाम है। वे-वे परिणाम एक दूसरेमें नहीं वर्तते किन्तु उनका एक-दूसरेमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अभाव है । उसमेंसे अब विस्तार करके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य निकालते हैं । उसमें भी प्रथम क्षेत्रका दृष्टान्त देते हैं ।

संपूर्ण द्रव्यके एक क्षेत्रको लें तो उसके प्रदेश उत्पत्ति-विनाश रहित हैं, और उन प्रदेशोंका परस्पर व्यतिरेक होनेसे, वे अपने अपने स्वक्षेत्रमें अपनेसे सत् और पूर्व प्रदेशरूपसे असत् हैं;—अर्थात् वे प्रदेश अपनेसे उत्पादरूप हैं और पूर्वके प्रदेशकी अपेक्षासे व्ययरूप हैं; इस प्रकार समस्त प्रदेश उत्पाद-व्ययरूप हैं और सर्व प्रदेशोंका विस्तार साथमें ले लेनेसे द्रव्यके प्रदेश ध्रौव्यरूप हैं। इस प्रकार समस्त प्रदेश एक समयमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप हैं । (यहाँ प्रदेशोंके जो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य कहे हैं वे क्षेत्र अपेक्षासे समझना ।) इस उदाहरणके अनुसार समय समयके परिणामोंमें भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपना है। अनादि-अनन्त एक प्रवाहकी अपेक्षासे परिणाम उत्पत्ति-विनाशरहित ध्रुव हैं, और वे परिणाम अपने अपने स्वकालमें उत्पादरूप हैं तथा पूर्वपरिणामकी अपेक्षासे व्ययरूप हैं । इस प्रकार समस्त परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप हैं और ऐसे उत्पाद-व्यय-ध्रुव-रूप परिणाम वह वस्तुका स्वभाव है ।

यहाँ प्रथम समुच्चय क्षेत्रकी और समुच्चय परिणामोंकी इकट्ठी बात लेकर उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सिद्ध किये हैं । एक परिणाम पृथक् करके उसकी बात फिर करेंगे । यह बात अकेले आत्माकी नहीं किन्तु समस्त द्रव्योंके स्वभावकी है । किन्तु यहाँ आत्माकी मुख्यतासे बातकी जाती है ।

जिस प्रकार आत्माके असंख्य प्रदेशोंमें एक समयमें क्षेत्र अपेक्षासे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य लागू होता है, उसी प्रकार आत्माके प्रवाहक्रममें वर्तनेवाले समस्त परिणाम अपने अपने अवसरमें स्वरूपसे उत्पन्न हैं, पूर्वरूपसे विनष्ट हैं और अखण्ड धारावाही प्रवाहरूपसे वे उत्पन्न या विनष्ट नहीं हैं, इसलिये वे परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप हैं ।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रदेशोंके उदाहरणमें क्षेत्र-अपेक्षासे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य है और सिद्धान्तमें परिणाम-अपेक्षासे (प्रवाह-अपेक्षासे, काल-अपेक्षासे) उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य है।

देखो तो ! क्रमबद्ध अपने अवसरमें समस्त परिणामोंके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य कहकर पूर्ण त्रैकालिक द्रव्यको ज्ञेयरूपसे सामने रख दिया है। सर्वज्ञकी और ज्ञानस्वभावकी प्रतीतिके बिना किसी प्रकार यह बात भीतर नहीं जम सकती। इसकी प्रतीतिमें सम्यग्दर्शन है, और चौंसठपुटी पीपर घुंट रही हो इस प्रकार इसके घोंटनेमें अकेली वीतरागता ही घुंटती है। अहो ! अद्भुत बात रखी है।

द्रव्यके समस्त परिणाम अपने अपने अवसरमें स्व-रूपसे उत्पन्न हैं, पूर्वरूपसे विनष्ट हैं और एक अखण्डप्रवाहकी अपेक्षासे वे उत्पत्ति-विनाश रहित ध्रौव्य हैं।

यहाँ परिणामोंका स्वअवसर कहकर आचार्यदेवने अद्भुत बातकी है। जितने एक द्रव्यके परिणाम उतने ही तीनकालके समय, और जितने तीनकालके समय उतने ही एक द्रव्यके परिणाम। बस ! इतना निश्चित करे तो अपने ज्ञायकपनेकी प्रतीति हो जाये। द्रव्यके प्रत्येक परिणामका अपना अपना अवसर भिन्न है। तीनकालके परिणाम एकसाथ ज्ञेय हैं और यहाँ आत्मा उनका ज्ञाता है। ऐसे ज्ञेय-ज्ञायकपनेमें बीचमें राग नहीं रहा, अकेली वीतरागता ही आई। प्रथम ऐसी श्रद्धा करनेसे वीतरागी श्रद्धा होती है और पश्चात् ज्ञानस्वभावमें स्थिरता होनेसे वीतरागी चारित्र होता है।

अहो ! द्रव्यके परिणामोंका स्वअवसर कहो अथवा क्रम-बद्धपरिणाम कहो, उसकी प्रतीति करनेसे परिणामी-ऐसे त्रिकाली द्रव्य पर ही दृष्टि जाती है। परिणामोंके स्वअवसरकी यह बात स्वीकार करनेसे तो—निमित्त आये तो परिणाम होता है, या निमित्तके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कारण यहाँ परिणाममें फेरफार होता है, कर्मके उदयसे विकार होता है, या व्यवहार करते करते परमार्थ प्रगट होता है, अथवा तो पर्यायके आधारसे पर्याय होती है'—ऐसी कोई बात बनी ही नहीं रहती। समस्त परिणाम अपने अपने अवसरमें द्रव्यमेंसे प्रगट होते हैं। जहाँ द्रव्यका प्रत्येक परिणाम अपने अपने अवसरमें 'सत्' है वहाँ निमित्तके सन्मुख देखना ही कहाँ रहा ?—और 'मैं परमें फेरफार करूँ या परसे मुझमें फेरफार हो'—यह बात भी कहाँ रही ?—मात्र ज्ञाता और ज्ञेयपना ही रहता है, यही मोक्षमार्ग है, यही सम्यक् पुरुषार्थ है।

तो तीनकालके परिणाम हैं वे द्रव्यके प्रवाहरूपी सांकलकी कडियाँ हैं। जिस प्रकार सांकलकी कड़ियाँ आगे-पीछे नहीं होती, जैसी हैं वैसी ही रहती हैं; उसीप्रकार द्रव्यके अनादि-अनन्त परिणाम अपने अवसरसे आगे-पीछे नहीं होते, प्रत्येक परिणाम अपने अपने अवसरमें सत् है। इसमें तीनकालके परिणामोंकी एक अखण्ड सांकर लेकर उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यकी बात है। द्रव्य अपने परिणामस्वभावमें स्थित है। इस समय परिणामका स्वभाव क्या है वह बात चल रही है। प्रथम परिणामोंका उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभाव सिद्ध करते हैं, और पश्चात् द्रव्य उस परिणामस्वभावमें स्थित होनेसे वह द्रव्य भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त सत् है—ऐसा अन्तमें सिद्ध करेंगे। ज्ञाता, वस्तुके ऐसे स्वभावको जाने और ज्ञेयोंमें फेरफार करना न माने वह सम्यक्त्व है, और पदार्थोंके स्वभावका ज्ञाता रहे उसमें वीतरागता है।

इस प्रवचनसारमें पहले तो ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापनमें आत्माका ज्ञानस्वभाव निश्चित् किया है, और पश्चात् दूसरे अधिकारमें ज्ञेय-तत्त्वोंका वर्णन किया है। आत्माका स्वभाव ज्ञान ही है, और जीव—अजीवमें अपने अपने अवसरमें होनेवाले तीनकालके परिणाम ज्ञेय हैं;—ऐसी प्रतीति करनेसे कहीं फेरफार या आगे-पीछे करने

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

की बुद्धि नहीं रही, इसलिये ज्ञान स्वमें स्थिर हुआ। यही वीतरागता और केवलज्ञानका कारण है।

पदार्थोंका जैसा सत्स्वभाव हो वैसा माने तो सत्मान्यता कहलाये; किन्तु पदार्थोंके सत्स्वभावसे अन्य प्रकार माने तो वह मान्यता मिथ्या है। यह 'सत्' की श्रद्धा कराते हैं। 'सत्' द्रव्यका लक्षण है और वह उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला है। द्रव्यके ऐसे सत्-स्वभावकी प्रतीति करना सो सम्यग्दर्शन है यही सच्चा 'तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्' है। इस समय बात तो परिणामों की चल रही है, किन्तु परिणामके निर्णयमें परिणामी द्रव्यका निर्णय भी आ जाता है। परिणाम तो क्षणिक हैं, किन्तु वह परिणाम किसके! कहते हैं कि-त्रिकाली द्रव्यके। परिणाम अद्धरसे नहीं होते किन्तु परि-णामीके परिणाम हैं; इसलिये परिणामका निर्णय करनेसे परिणामी द्रव्यका ही निर्णय होता है, और अकेले परिणामके ऊपरसे रुचि हटकर त्रिकाली द्रव्यस्वभावकी ओर रुचि और ज्ञान झुकता है;—यही सम्यग्दर्शन और वीतरागताका मूल है।

यह ९९ वीं गाथा अत्युत्तम है; इसमें वस्तुस्थितिके स्वरूपका अलौकिक रीतिसे वर्णन किया है। समस्त द्रव्य 'सत्' है, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यसहित परिणाम उसका स्वभाव है, और ऐसे स्वभावमें सदैव प्रवर्तमान होनेसे द्रव्य भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला है;—ऐसा इस गाथामें सिद्ध करना है।

(१) टीकामें, प्रथम तो द्रव्यमें समग्रपने द्वारा अनादि-अनन्त प्रवाह की एकता, और प्रवाहक्रमके सूक्ष्म अंश सो परिणाम-ऐसा बतलाया।

(२) फिर प्रवाहक्रममें प्रवर्तमान परिणामोंका परस्पर व्यतिरेक सिद्ध किया।

(३) पश्चात् समुच्चयरूपसे सम्पूर्ण द्रव्यके त्रिकाली परिणामोंको उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक सिद्ध किया। (उसके दृष्टान्त

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

में, द्रव्यके समस्त प्रदेशोंको क्षेत्र-अपेक्षासे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक सिद्ध किया।)

(४) तत्पश्चात् एक ही परिणाममें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक-पना बतलाया। (उसके दृष्टान्तमें, प्रत्येक प्रदेशमें क्षेत्र-अपेक्षासे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य बतलाये।)

(५) इस प्रकार परिणामके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सिद्ध करनेके पश्चात् अन्तमें—उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मकपरिणामके प्रवाहमें निरन्तर वर्त रहा है इसलिये द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सहित होनेसे सत् है—इस प्रकार सम्पूर्ण द्रव्य लेकर उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सिद्ध किये हैं।

ऊपर जो पाँच बोल कहे हैं, उनमेंसे इस समय यह तीसरे बोलका विवेचन हो रहा है। अपने अपने अवसरमें त्रैकालिक समस्त परिणामोंके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यको एक ही साथ बात करके यहाँ अकेला ज्ञायकभाव ही बतलाया है। यहाँ सम्पूर्ण ज्ञायकभाव और सामने सम्पूर्ण ज्ञेय एकसाथ ले लिया है।

यहाँ परिणामोंमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य समझानेके लिये प्रदेशोंका उदाहरण लिया है। कोई ऐसा कहे कि—दूसरा कोई सरल उदाहरण न देकर आचार्यदेवने प्रदेशोंका ऐसा सूक्ष्म उदाहरण क्यों दिया ?—तो कहते हैं कि—भाई ! तू शान्त हो ! आचार्यदेवने प्रदेशोंका उदाहरण योग्य ही दिया है। क्योंकि द्रव्यका सारा क्षेत्र एकसाथ अक्रमसे फैला पड़ा है और परिणामोंकी व्यक्ता तो क्रमशः होती है, इसलिये प्रदेशोंका उदाहरण शीघ्र ही समझमें आ सकता है, और परिणामोंकी बात उससे सूक्ष्म है। यहाँ परिणामोंके उत्पाद-व्यय ध्रौव्यकी सूक्ष्म एवं गम्भीर बात समझाना है इसलिये उदाहरण भी प्रदेशोंका सूक्ष्म ही लेना पड़ा है। यदि बाह्य—स्थूल उदाहरण दें तो सिद्धान्तकी जो सूक्ष्मता और गम्भीरता है वह ख्यालमें नहीं आयेगी; इसलिये ऐसे सूक्ष्म उदाहरणकी ही यहाँ आवश्यकता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मा ज्ञानस्वभाव है। उस ज्ञानका स्वभाव 'जानना' है, अर्थात् ज्ञान जाननेका ही कार्य करता है। आत्मामें और परमें क्रमशः जो अवस्था हो वह ज्ञेय है, उसे जैसी हो वैसा मात्र जानना ज्ञानका स्वभाव है किन्तु उसमें कुछ भी फेरफार करे ऐसा ज्ञानका स्वभाव नहीं है। ज्ञान करे क्या ? ज्ञान तो जानता है। जाननेके अतिरिक्त अन्य कोई ज्ञानका कार्य नहीं है। रागादि परिणाम हुए उन्हें भी जानना ज्ञानका कार्य है, किन्तु उस रागको अपना त्रिकाली-स्वभाव माने या हितकर माने ऐसा ज्ञानका कार्य नहीं है, और उस राग-परिणामको बदलकर आगे-पीछे करे ऐसा भी ज्ञानका कार्य नहीं है। बस ! स्व या पर, विकारी या अविकारी, समस्त ज्ञेयोंको जानना ही ज्ञानका कार्य है; मैं रागादि परिणामों जितना ही हूँ—ऐसा ज्ञान नहीं मानता।—ऐसे ज्ञानस्वभावकी प्रतीति ही वीतरागताका मूल है।

इस जगतमें अनंत जीव, अनंत पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और असंख्यात कालाणु—ऐसे छह प्रकारके पदार्थ हैं। उनमेंसे प्रत्येक आत्माका ज्ञानगुण छहों पदार्थोंकी क्रमशः होनेवाली समस्त अवस्थाओंको तथा द्रव्य-गुणको जाननेवाला है; ऐसा प्रत्येक आत्माका ज्ञानस्वभाव है। ऐसे ज्ञातास्वभावको जो जानता है वह जीव रागपरिणामको जानता अवश्य है, किन्तु उस रागको अपना मूल स्वरूप नहीं मानता,—रागको धर्म नहीं मानता, रागको उपादेय नहीं मानता और रागपरिणामको आगे-पीछे करनेवाला भी स्वभाव नहीं मानता। उसके अवसरमें वह रागपरिणाम भी सत् है, और उसे जाननेवाला ज्ञान भी सत् है; द्रव्यके त्रिकाली प्रवाहक्रममें वह रागपरिणाम भी सत्रूपसे आ जाता है, इसलिये वह भी ज्ञानका ज्ञेय है। राग था इसलिये रागका ज्ञान हुआ—ऐसा नहीं है किन्तु ज्ञानका ही स्वभाव जाननेका है। पूर्ण स्वज्ञेयको जाननेवाला ज्ञान उस रागको भी स्वज्ञेयके अंशरूपसे जानता है; त्रिकाली अंशीके ज्ञानसहित अंशका भी ज्ञान करता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। यदि रागको स्वज्ञेयके अंशरूपसे सर्वथा न जाने तो उस ज्ञानमें संपूर्ण स्वज्ञेय पूर्ण नहीं होता, इसलिये वह ज्ञान सच्चा नहीं होता; और यदि उस रागरूप अंशको ही पूर्ण स्वज्ञेय मान ले और त्रिकाली द्रव्य–गुणको स्वज्ञेय न बनाये तो वह ज्ञान भी मिथ्या है। द्रव्य–गुण और समस्त पर्यायें–यह तीनों मिलकर स्वज्ञेय पूरा होता है; उसमें अंशी–त्रिकाली द्रव्य–गुणकी रुचि सहित अंशको और परज्ञेयको जाननेका कार्य सम्यग्ज्ञान करता है। यथार्थ ज्ञानमें ज्ञेयोंका स्वभाव कैसा ज्ञात होता है उसका यह वर्णन है।

समस्त पदार्थोंका स्वभाव उत्पाद–व्यय–ध्रौव्ययुक्त है; प्रत्येक पदार्थमें प्रतिसमय परिणाम होते हैं, वे परिणाम क्रमानुसार अनादि–अनन्त होते रहते हैं, इसलिये स्वअवसरमें होनेवाले परिणामोंका प्रवाह अनादि–अनन्त है। उस प्रवाहक्रमका छोटेसे छोटा प्रत्येक अंश भी उत्पाद–व्यय–ध्रौव्यरूप स्वभाववाला है। अनादि–अनन्त कालके प्रत्येक समयमें उस–उस समयका परिणाम स्वयं सत् है। ऐसे सत् परिणामोंको ज्ञान जानता है किन्तु उनमें कुछ भी फेरफार नहीं कर सकता। जैसे–अग्नि या बरफ आदि पदार्थोंको आँख देखती है किन्तु उनमें कुछ भी फेरफार नहीं करती; उसी प्रकार ज्ञानकी पर्याय भी ज्ञेयोंको सत्‌रूपसे जैसे हैं वैसा जानती ही है, उनमें कुछ फेरफार नहीं करती। स्वअवसरमें जब जो परिणाम है उस समय वही परिणाम होता है–अन्य परिणाम नहीं होते–ऐसा जहाँ ज्ञानमें निश्चित किया वहाँ किसी भी ज्ञेयको उल्टा–सीधा करनेकी मिथ्याबुद्धिपूर्वकके राग-द्वेष नहीं होते।

अहा ! देखो तो ! क्रमबद्धपर्यायके निर्णयमें कितनी गंभीरता है ! द्रव्यकी पर्याय परसे बदलती है—यह बात तो है ही नहीं, किन्तु द्रव्य स्वयं अपनी पर्यायको उल्टा–सीधा करना चाहे तो भी नहीं हो सकती। जिस प्रकार त्रिकाली द्रव्य पलटकर अन्यरूप नहीं हो जाता, उसी प्रकार उसका प्रत्येक समयका अंश—परिणाम भी बदलकर अन्यरूप नहीं होता। 'मैं जीव नहीं रहना चाहता किन्तु

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अजीव हो जाना है'–इस प्रकार जीवको बदलकर कोई अजीव करना चाहे तो क्या वह बदल सकता है ? नहीं बदल सकता। जीव पलटकर कभी भी अजीवरूप नहीं होता। जिस प्रकार त्रिकाली सत् नहीं बदलता उसी प्रकार उसका वर्तमान सत् भी नहीं बदलता। जिस प्रकार त्रिकाली द्रव्य नहीं बदलता उसी प्रकार उसकी प्रत्येक समयकी अनादि-अनन्त अवस्थायें भी जिस समय जो हैं उनमें फेरफार या आगा-पीछा नहीं हो सकता। त्रिकाली प्रवाहके वर्तमान अंश अपने अपने कालमें सत् हैं। बस, परमें या स्वमें कहीं भी फेरफार करनेकी बुद्धि न रही इसलिये ज्ञान ज्ञाता ही रह गया। पर्यायबुद्धिमें रुकना न रहा। इस प्रकार ज्ञान जाननेका कार्य करता है;— ऐसे ज्ञानस्वभावकी प्रतीति करना सो सम्यग्दर्शन है। अभी केवलज्ञान होनेसे पूर्व वह जीव केवलीभगवानका लघुनन्दन हो गया। श्रद्धा अपेक्षासे तो वह साधक भी सर्वका ज्ञायक हो गया है।

समस्त पदार्थोंके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभावको निश्चित् करनेसे स्वमें या परमें फेरफार करनेकी बुद्धि नहीं रही किन्तु ज्ञानमें जाननेका ही कार्य रहा। इसलिये ज्ञानमेंसे 'ऐसा क्यों'— ऐसी हाय-हाय (-खलबलाहट) निकल गई और ज्ञान ज्ञाता होकर अपनेमें स्थिर हुआ—इसीमें ज्ञानका परमपुरुषार्थ है; इसीमें मोक्ष-मार्गका और केवलज्ञानका पुरुषार्थ आ जाता है। परमें कर्तृत्व-बुद्धिवालेको ज्ञानस्वभावकी प्रतीति नहीं बैठती, और न उसे ज्ञानके स्वभावका—ज्ञायकपनेका पुरुषार्थ भी ज्ञात होता है।

अहो ! समस्त द्रव्य अपने अपने अवसरमें होनेवाले परिणामोंमें वर्त रहे हैं; उसमें तू कहाँ परिवर्तन करेगा ? भाई ! तेरा स्वभाव तो देखनेका है। तू देखनेवालेको दृष्टा ही रख; दृष्टाको हाय-हाय करनेवाला न बना। दृष्टास्वभावकी प्रतीति ही सम्यग्दर्शन है। मैं परमें फेरफार करता हूँ और पर मुझमें फेरफार करता है— ऐसा मिथ्यादृष्टिका भाव है, उसे ज्ञान और ज्ञेयके स्वभावकी प्रतीति

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं है। जगतके जड़ या चेतन समस्त द्रव्य अपने प्रवाहमें वर्तते हैं, उनमें जो-जो अंश वर्तमानमें वर्त रहा है उसे कोई आगे-पीछे नहीं कर सकता। मैं ध्यान रखकर शरीरको बराबर रखूँ-ऐसा कोई माने तो मिथ्यादृष्टि है। शरीरका प्रत्येक परमाणु उसके अपने प्रवाहक्रममें वर्त रहा है, उसके क्रमको कोई बदल नहीं सकता। कहीं भी फेरफार करनेका आत्माके किसी भी गुणका कार्य नहीं है, किन्तु स्वको जानते हुए परको जाने-ऐसा उसके ज्ञान-गुणका स्व-परप्रकाशक कार्य है। इसकी प्रतीति ही मुक्तिका कारण है।

प्रत्येक द्रव्य त्रिकाल परिणमित होता रहता है; उसके त्रिकालके प्रवाहमें स्थित समस्त परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप हैं। अपने स्वकालमें वे सब परिणाम अपनी अपेक्षासे उत्पादरूप हैं; पूर्वके परिणामकी अपेक्षासे व्ययरूप हैं और परस्पर सम्बन्धवाले अखण्डप्रवाहकी अपेक्षासे वे ध्रौव्य हैं। द्रव्यके समस्त परिणाम अपने अपने कालमें सत् हैं। वे परिणाम स्वयं अपनी अपेक्षासे असत् (व्ययरूप) नहीं हैं, किन्तु अपने पहलेके-पूर्वपरिणामकी अपेक्षासे वे असत् (व्ययरूप) हैं। और प्रथम पश्चात् के भेद किये बिना अखण्डप्रवाहको देखो तो समस्त परिणाम ध्रौव्य हैं। जब देखो तब द्रव्य अपने वर्तमान परिणाममें वर्त रहा है। द्रव्य त्रिकाल होने पर भी जब देखो तब वह वर्तमान परिणाममें वर्त रहा है—कहीं भूतमें या भविष्यमें नहीं वर्तता। द्रव्यके तीनोंकालके जो वर्तमान परिणाम हैं वे अपनेसे पहलेके परिणामके अभावस्वरूप हैं; और स्वपरिणामरूपसे उत्पादरूप हैं, तथा वे ही अखण्डप्रवाहरूपसे ध्रौव्यरूप हैं।

देखो, इसमें यह बात आ गई कि पूर्वके परिणाम अभाव-स्वरूप वर्तमान परिणाम हैं इसलिये पूर्वके संस्कार वर्तमान पर्यायमें नहीं आते, और न पूर्वका विकार वर्तमान में आता है; पहले विकार

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

किया था इसलिये इस समय विकार हो रहा है-ऐसा नहीं है। वर्तमान परिणाम स्वतन्त्रतया द्रव्यके आश्रयसे होते हैं। यह निर्णय होनेसे ज्ञान और श्रद्धा द्रव्यस्वभावोन्मुख हो जाते हैं। जिस प्रकार त्रिकाली जड़ द्रव्य बदलकर चेतन या चेतन द्रव्य बदलकर जड़ नहीं होता उसी प्रकार उसका वर्तमान प्रत्येक अंश भी बदलकर दूसरे अंशरूप नहीं होता। जिस-जिस समयका जो अंश है उस-उस रूप ही सत् रहता है। बस, भगवान सर्वज्ञरूपसे ज्ञाता हैं उसी प्रकार ऐसी प्रतीति करनेवाला स्वयं भी प्रतीतिमें ज्ञाता ही रहा।

परके कारण परमें कुछ होता है-यह बात तो दूर रही, परन्तु द्रव्य स्वयं अपने अंशको आगे-पीछे करे ऐसी उस द्रव्यकी शक्ति नहीं है; पहलेका अंश पीछे नहीं होता, पीछेका अंश पहले नहीं होता।—ऐसा निर्णय करनवालेको अंशबुद्धि दूर होकर अंशीकी दृष्टि होनेसे सम्यक्त्वपरिणामका उत्पाद और मिथ्यात्वपरिणामका व्यय हो जाता है।

प्रभु! तू आत्मा वस्तु है, तेरा ज्ञानगुण तेरे आधारसे टिका है वह ज्ञाता स्वभाववाला है। और तेरे तीनकालके परिणाम अपने अवसरके अनुसार द्रव्यमेंसे होते रहते हैं। तेरे अपने वर्तमानमें प्रवर्तमान अंशको कम-अधिक या आगे-पीछे कर सके-ऐसा तेरा स्वभाव नहीं है; और न परके परिणाममें भी फेरफार हो सकता है। स्व-पर समस्त ज्ञेयोंको यथावत् जाननेका ही तेरा स्वभाव है। ऐसे ज्ञातास्वभावकी प्रतीतिमें ही आत्माका सम्यक्त्व है।

प्रश्नः—मिथ्यात्वपरिणामको बदलकर सम्यक्त्व करूँ—ऐसा तो लगता है न?

उत्तरः—देखो, ज्ञातास्वभावकी प्रतीति करनेसे सम्यग्दर्शन हुआ उसमें मिथ्यात्व दूर हो ही गया है। सम्यक्त्वपरिणामका उत्पाद हुआ उस समय मिथ्यात्वपरिणाम वर्तमान नहीं होते, इसलिये

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उन्हें बदलना भी कहाँ रहा ? मिथ्यात्वको हटाकर सम्यक्त्व करूँ—ऐसे लक्षसे सम्यक्त्व नहीं होता, किन्तु द्रव्यसन्मुख दृष्टि होनेसे सम्यक्त्वका उत्पाद होता है उसमें पूर्वके मिथ्यात्वपरिणामका अभाव हो ही गया है। इसलिये उस परिणामको भी बदलना नहीं रहता। मिथ्यात्व दूर होकर सम्यक्त्वपर्याय प्रगट हुई उसे भी आत्मा जानता है, किन्तु परिणामके किसी भी क्रमको वह आगे-पीछे नहीं करता।

अहो ! जिस-जिस पदार्थका जो वर्तमान अंश है वह कभी नहीं बदलता।—इसमें अकेला वीतरागीविज्ञान ही आता है। पर्यायको बदलनेकी बुद्धि नहीं है और 'ऐसा क्यों'—ऐसा विषमभाव नहीं है इसलिये श्रद्धा और चारित्र दोनोंका मेल बैठ गया। इस ९९ वीं गाथामें दो नौ इकट्ठे होते हैं और उनमेंसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्चारित्र दोनों इकट्ठे हो जायें ऐसा उच्च भाव निकलता है। जिस प्रकार नौ का अंक अफर (जो फिर न सके) माना जाता है उसी प्रकार यह भाव भी अफर हैं।

त्रिकाली द्रव्यके प्रत्येक समयके परिणाम सत् हैं—ऐसा सर्वज्ञदेवने कहा है; द्रव्य सत् है और पर्याय भी सत् है; यह 'सत्' जिसे नहीं बैठा और पर्यायोंमें फेरफार करना मानता है उसे वस्तुके स्वभावकी, सर्वज्ञदेवकी, गुरुकी या शास्त्रकी बात नहीं जमी है, और वास्तवमें उसने उन किसीको नहीं माना है।

त्रिकाली वस्तुका वर्तमान कब नहीं होता ?—सदैव होता है। वस्तुका कोई भी वर्तमान अंश ख्यालमें लो वह उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप है। वस्तुको जब देखो तब वह वर्तमानमें वर्त रही है। इस वर्तमानको यहाँ स्वयंसिद्धि सत् सिद्ध करते हैं। जिस प्रकार त्रिकाली सत् पलटकर चेतनमेंसे जड़ नहीं हो जाता, उसी प्रकार उसका प्रत्येक वर्तमान अंश है वह सत् है, वह अंश भी पलटकर आगे-पीछे नहीं होता। जिसने ऐसे वस्तुस्वभावको जाना उसको अपने अकेले

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञायकपनेकी प्रतीति हुई, वही धर्म हुआ। और उसने देव-गुरु-शास्त्रको भी यथार्थरूपसे माना कहा जायेगा।

तीनोंकालके समयमें तीनोंकालके परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य हैं; कोई भी एकसमयका जो परिणाम है वह पहले नहीं था और फिर उत्पन्न हुआ, इसलिये पूर्वपरिणामके पश्चात्‌रूपसे वह उत्पादरूप है, और उस परिणामके समय पूर्वके परिणामका व्यय है,—पूर्वपरिणामका व्यय होकर वह परिणाम उत्पन्न हुआ है इसलिये पूर्व-परिणामकी अपेक्षा वही परिणाम व्ययरूप है, और तीनोंकालके परिणामके अखण्डप्रवाहकी अपेक्षासे वह परिणाम उत्पन्न भी नहीं हुआ है और विनाशरूप भी नहीं है—है वैसा है अर्थात् ध्रौव्य है। इसप्रकार अनादि-अनंत प्रवाहमें जब देखो तब प्रत्येक परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभावरूप है।

किसी भी वस्तुकी पर्यायमें फेरफार करनेकी उमंग सो पर्याय-बुद्धिका मिथ्यात्व है; उसे ज्ञानस्वभावकी प्रतीति नहीं है और ज्ञेयोंके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभावकी भी खबर नहीं है। अरे भगवान्! वस्तु "सत्" है न? तो तू उस सत्‌के ज्ञानके अतिरिक्त दूसरा उसमें क्या करेगा? तू सत्‌में फेरफार करना मानेगा तो सत् तो नहीं बदलेगा किन्तु तेरा ज्ञान असत् होगा। जिस प्रकार वस्तु सत् है उसी प्रकार उसे भगवानने केवलज्ञानमें जाना है, वही वाणी द्वारा कहा गया है—नवीन नहीं कहा गया। भगवानने तो जैसा सत् था वैसा मात्र ज्ञान किया है; वाणी जड़ है उसे भी भगवानने नहीं निकाला भगवानका आत्मा अपने केवल ज्ञानपरिणाममें वर्त रहा है, और वाणीकी पर्याय परमाणुओंके परिणमनप्रवाहमें वर्त रही है, तथा समस्त पदार्थ अपने सत्‌में वर्त रहे हैं। ज्ञायकमूर्ति आत्मा तो जाननेका कार्य करता है कि-'सत् ऐसा है।' बस, इसीका नाम सम्यग्दर्शन और वीतरागताका मार्ग है।

भगवान कैसे हैं?—"सर्वज्ञ"—सर्वके ज्ञाता; किसीमें राग-द्वेष या फेरफार करनेवाले नहीं हैं। भगवानकी भाँति मेरे आत्माका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वभाव भी जाननेका है—इस प्रकार तू भी अपने ज्ञातास्वभावकी श्रद्धा कर और पदार्थोंमें फेरफार करनेकी बुद्धि छोड़ ! जिसने अपने ज्ञानस्वभावकी श्रद्धा की वह अस्थिरताके राग-द्वेषका भी ज्ञाता ही रहा। जिसने ऐसे ज्ञानस्वभावको माना, उसीने अरिहंतदेवको माना, उसीने आत्माको माना, उसीने गुरुको तथा शास्त्रको माना, उसीने नवपदार्थोंको माना, उसीने छह द्रव्योंको तथा उनके वर्तमान अंशको माना; उसीका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है।

'जानना' आत्माका स्वभाव है। बस, जानना ही आत्माका पुरुषार्थ है, वही आत्माका धर्म है, उसीमें मोक्षमार्ग और वीतरागता है। अनन्त सिद्धभगवंत भी प्रतिसमय पूर्ण जाननेका ही कार्य कर रहे हैं।

ज्ञानमें स्व-पर दोनों ज्ञेय हैं। 'ज्ञान ज्ञाता है'-ऐसा जाना वहाँ ज्ञान भी स्वज्ञेय हुआ। ज्ञानको रागादिका कर्ता माने या बदलनेवाला मान तो उसने ज्ञानके स्वभावको नही जाना है—स्वयं अपनेको स्वज्ञेय नहीं बनाया इसलिये उसका ज्ञान मिथ्या है। वस्तुके समस्त परिणाम अपने अपने समयमें सत् हैं—ऐसा कहते ही अपना स्वभाव ज्ञायक ही है—ऐसा उसमें आ जाता है।

❀

इस गाथामें क्षेत्रका उदाहरण देकर पहले द्रव्यका त्रिकाली सत्पना बतलाया, उसके त्रिकाली प्रवाहक्रमके अंश बतलाये, और उन अंशोंमें (परिणामोंमें) अनेकतारूप प्रवाहक्रमका कारण उनका परस्पर व्यतिरेक है—ऐसा सिद्ध किया। तत्पश्चात् सम्पूर्ण द्रव्यके समस्त परिणामोंको स्व-अवसरमें वर्तनेवाला, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप बतलाया। इतनी बात पूर्ण हुई।

अब, प्रत्येक समयके वर्तमान परिणामको लेकर उसमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपना बतलाते हैं। पहले समय परिणामोंकी बात थी और अब यहाँ एक ही परिणामकी बात है। और फिर अन्तमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परिणामी द्रव्यकी ही बात लेकर द्रव्यके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य बतलायेंगे।

पुनश्च, 'जिस प्रकार वस्तुका जो छोटेसे छोटा (अन्तिम) अंश पूर्वप्रदेशके विनाशरूप है वही (अंश) तत्पश्चात्के प्रदेशके उत्पादस्वरूप है तथा वही परस्पर अनुस्यूतिसे रचित एकवास्तुपने द्वारा अनुभयस्वरूप है (अर्थात् दोमेंसे एक स्वरूप भी नहीं है।) उसी प्रकार प्रवाहका जो छोटेसे छोटा अंश पूर्वपरिणामके विनाश-स्वरूप है वही तत्पश्चात्के परिणामके उत्पादस्वरूप है तथा वही परस्पर अनुस्यूतिसे रचित एक प्रवाहपने द्वारा अनुभयस्वरूप है।'

असंख्यप्रदेशी आत्माका कोई भी एक प्रदेश लो तो वह प्रदेश, क्षैत्र अपेक्षासे पूर्वके प्रदेशके व्ययरूप है, स्वयं अपने क्षैत्रके उत्पादरूप है और अखण्ड क्षैत्र अपेक्षासे वही ध्रौव्य है।—यह दृष्टान्त है। उसी प्रकार अनादि-अनन्त प्रवाहक्रममें वर्तमान प्रवर्तित कोई भी एक परिणाम पूर्वके परिणामके व्ययरूप है, तत्पश्चात्के परिणामकी अपेक्षासे उत्पादस्वरूप है, और पहले-पीछेका भेद किये बिना सम्पूर्ण प्रवाहक्रमके अंशरूपसे देखें तो वह परिणाम ध्रौव्य-रूप है। इस प्रकार प्रत्येक परिणाममें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य है।

समस्त परिणामोंके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यकी बात ली तब 'अपने अपने अवसरमें'—ऐसा कहकर उस प्रत्येकका स्वतंत्र स्वकाल बतलाया था। और यहाँ एक परिणामकी विवक्षा लेकर बात करनेसे उन शब्दोंका उपयोग नहीं किया; क्योंकि वर्तमान एक ही परिणाम लिया उसीमें उसका वर्तमान स्वकाल आ गया।

वर्तमान वर्तनेवाला परिणाम पूर्वपरिणामके अभावरूप ही है; इसलिये पूर्वके विकारका अभाव करूं—यह बात नहीं रहती; और वर्तमानमें सत्रूप है इसमें भी फेरफार करना नहीं रहता। ऐसा समझने पर मात्र वर्तमान परिणामकी दृष्टिसे परिणाम और परिणामीकी एकता होने पर सम्यक्त्वका उत्पाद होता है, उसमें पूर्वके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मिथ्यात्वका व्यय है ही, मिथ्यात्वको दूर नहीं करना पड़ता। किसी भी परिणामको मैं नहीं बदल सकता, मात्र जानता हूँ—ऐसा मेरा स्वभाव है;—इस प्रकार ज्ञानस्वभावकी प्रतीतिमें सम्यक्त्व-परिणामका उत्पाद और उसीमें मिथ्यात्वका व्यय है ही। इसलिये मिथ्यात्वको दूर करूँ और सम्यक्त्व प्रगट करूँ—यह बात ही नहीं रहती। जहाँ ऐसी बुद्धि वहाँ उस समयका सत्परिणाम स्वयं ही सम्यक्त्वके उत्पादरूप और मिथ्यात्वके व्ययरूप है, तथा एक-दूसरेके साथ सम्बन्धित परिणामोंके अखण्डप्रवाहरूपसे वह परिणाम ध्रौव्य है। इस प्रकार प्रत्येक परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त सत् है।

जिस प्रकार वस्तु सत् है उसी प्रकार उसका वर्तमान भी सत् है। वस्तुके त्रिकाली प्रवाहमें प्रत्येक समयका अंश सत् है; वर्तमान समयका परिणाम पूर्वके कारण नहीं है किन्तु पूर्वके अभावसे ही अपनेरूपसे सत् है। वह वर्तमान अंश परसे नहीं किन्तु अपनेसे है। प्रत्येक समयका वर्तमान अंश निरपेक्षरूपसे अपनेसे ही उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सत् है।

सर्वज्ञके अतिरिक्त वस्तुस्वरूपका ऐसा वर्णन अन्यत्र नहीं हो सकता। भाई! तू क्या करेगा? जगतके तत्त्व सत् हैं, उनकी पहली पर्यायके कारण भी दूसरी पर्याय नहीं होती, तब फिर तू उसमें क्या करेगा? तू तो मात्र ज्ञाता रह! इसके अतिरिक्त दूसरा कुछ मानेगा तो, वस्तुमें तो कुछ भी फेरफार नहीं होगा किन्तु तेरा ज्ञान मिथ्या होगा।

वस्तुका वर्तमान अंश है वह सत् है;—इस प्रकार यहाँ तो वर्तमान प्रत्येक समयके परिणामको सत् सिद्ध करना है। द्रव्यके आधारसे अंश है—यह बात इस समय नहीं लेना है। यदि द्रव्यके कारण परिणामका सत्पना हो तब तो सभी परिणाम एक-समान ही हों; इसलिये द्रव्यके कारण परिणामका सत् है ऐसा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

न लेकर प्रत्येक समयका परिणाम स्वयं सत् है, द्रव्य ही उस वर्तमान परिणामरूपसे वर्तता हुआ सत् है—ऐसा लिया है। प्रवाहका वर्तमान अंश उस अंशके कारण ही है। अहो! प्रत्येक समयका अकारणीय सत् सिद्ध किया है। समय समयका सत् अहेतुक है। समस्त पदार्थोंके तीनोंकालके वर्तमानका प्रत्येक अंश निरपेक्ष सत् है; ज्ञान उसे जैसेका तैसा–यथावत्–जानता है, किन्तु बदलता नहीं है। ज्ञानने जाना इसलिये वह अंश वैसा है—ऐसी बात नहीं है। वह स्वयं सत् है।

वर्तमान परिणाम पूर्व परिणामके व्ययरूप है, इसलिये वर्तमान परिणामको पूर्व परिणामकी भी अपेक्षा नहीं रही, तब फिर परपदार्थके कारण उसमें कुछ हो यह बात कहाँ रही। केवली भगवानको पहले समय केवलज्ञान हुआ इसलिये दूसरे समय वह केवलज्ञान रहा–ऐसा नहीं है, किन्तु दूसरे समयके उस वर्तमान परिणामका केवलज्ञान उस समयके अंशसे ही सत् है। पहले समयके सत्के कारण दूसरे समयका सत् नहीं है। इसी प्रकार सिद्धभगवानको पहले समयकी सिद्धपर्याय थी इसलिये दूसरे समय सिद्धपर्याय हुई—ऐसा नहीं है। सिद्धमें और समस्त द्रव्योंमें प्रत्येक समयका अंश सत् है।

यहाँ एक अंशके परिणामके उत्पाद–व्यय–ध्रौव्यमें 'अपने अवसरमें'—ऐसी भाषाका उपयोग नहीं किया; क्योंकि वर्तमान प्रवर्तित एक परिणामकी बात है, और वर्तमानमें जो परिणाम वर्तता है वही उसका स्वकाल है। तीनोंकालके प्रत्येक परिणामका जो वर्तमान है वह वर्तमान ही उसका स्वकाल है। अपने वर्तमानको छोड़कर वह आगे–पीछे नहीं होता। इस प्रकार वर्तमान प्रत्येक परिणामका उत्पाद–व्यय–ध्रौव्यस्वभाव है।

❀ ❀ ❀

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इस गाथामें अभी तक चार बोल आये:—

(१) द्रव्यका अखण्ड प्रवाह एक है और उसके क्रमशः होनेवाले अंश सो परिणाम हैं।

(२) उन परिणामोंमें अनेकता है, क्योंकि परस्पर व्यतिरेक है।

(३) तीनोंकालके परिणामोंका पूरा दल लेकर समस्त परिणामोंमें सामान्यरूपसे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपना कहा

(४) सम्पूर्ण प्रवाहका एक अंश लेकर प्रत्येक परिणाममें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य कहे।

—ऐसे चार प्रकार हुए। इस प्रकार परिणामका उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपना निश्चित् करके, अब अन्तमें परिणामी द्रव्यमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सिद्ध करते हैं।

इस प्रकार स्वभावसे ही त्रिलक्षण परिणामपद्धतिमें (परिणामोंकी परम्परामें) प्रवर्तमान द्रव्यस्वभावका अतिक्रमण न करनेसे सत्त्वको त्रिलक्षण ही अनुमोदना।

द्रव्यके समस्त परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप हैं, और उन परिणामोंके क्रममें प्रवर्तमान द्रव्य भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त ही है। यदि परिणामकी भाँति द्रव्य भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त न हो तो वह परिणामोंकी परम्परामें वर्त ही नहीं सकता। जो द्रव्य है सो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप समस्त परिणामोंकी परम्परामें वर्तता है इससे उसके भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य हैं। परिणामोंकी पद्धति कही है अर्थात् जिस प्रकार सांकलकी कड़ियाँ आगे-पीछे नहीं होती, उसी प्रकार परिणामोंका प्रवाहक्रम नहीं बदलता; जिस समय द्रव्यका जो परिणाम प्रवाहक्रममें हो उस समय उस द्रव्यका वही परिणाम होता है—दूसरा परिणाम नहीं होता। देखो, यह वस्तुके सत् स्वभावका वर्णन है। वस्तुका सत्स्वभाव है, सत् उत्पाद-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

व्यय-ध्रौव्ययुक्त परिणाम है, और उसे भगवान द्रव्यका लक्षण कहते हैं—'सत् द्रव्य लक्षणं।' तेरा स्वभाव जाननेका है। जैसा सत् है वैसा तू जान। सत्को उलटा-सीधा करनेकी बुद्धि करेगा तो तेरे ज्ञानमें मिथ्यात्व होगा। वस्तुएँ सत् हैं और मैं उनका ज्ञाता हूँ—ऐसी श्रद्धा होनेके पश्चात् अस्थिरताका विकल्प उठता है, किन्तु उसमें मिथ्यात्वका जोर नहीं आता। इसलिये ऐसी ज्ञान और ज्ञेयकी श्रद्धाके बलसे उस अस्थिरताका विकल्प भी टूटकर वीतरागता और केवलज्ञान होगा ही!—ऐसी यह अलौकिक बात है।

यह विषय अत्यन्त सूक्ष्म, परम सत्य एवं गम्भीर है।

सर्वज्ञदेवने केवलज्ञानमें वस्तुका स्वभाव जैसा है वैसा पूर्ण जाना, और वैसा ही वाणीमें आ गया। जैसा वस्तुका स्वभाव है वैसा जानकर माने तो ज्ञान और श्रद्धा सम्यक् हो; वस्तुके स्वभावको यथावत् न जाने तथा अन्य रीतिसे माने तो सम्यक्ज्ञान और सम्यक्श्रद्धा नहीं होते, और उनके बिना व्रत-तपादि सच्चे नहीं होते। वस्तुके स्वभावकी स्थिति क्या है और उसके नियम कैसे सत्य हैं, उसका यह वर्णन है। इसे समझनेके लिये ज्ञानमें एकाग्र होनेकी आवश्यकता है।

देखो, अभीतक क्या कहा गया है? प्रत्येक चेतन और जड़ पदार्थ स्वयं सत् है, उसमें एक-एक समयमें परिणाम होता है; वह परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त है। मूल वस्तु त्रिकाल है, वह वस्तु असंयोगी—स्वयंसिद्ध है, वह किसीसे निर्मित नहीं है और न कभी उसका नाश होता है; जब देखो तब वह सत्रूपसे वर्तमान वर्त रही है।

प्रत्येक समयके परिणाममें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होता है उसमें वस्तु वर्त रही है। प्रत्येक द्रव्यमें तीनकालके जितने समय हैं उतने ही परिणाम हैं। जैसे—स्वर्णके सौ वर्ष लिये जायें तो उन सौ वर्षोंमें हुई कड़ा, कुंडल हार इत्यादि समस्त अवस्थाओंका एक पिंड सोना है; उसी प्रकार प्रत्येक द्रव्य तीनकालके समस्त परिणामोंका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पिण्ड है। वे परिणाम क्रमशः—एकके बाद एक होते हैं। तीनकालके समस्त परिणामोंका प्रवाह वह द्रव्यका प्रवाहक्रम है, और उस प्रवाहक्रमका एक समयका अंश सो परिणाम है। तीनकालके जितने समय हैं उतने ही प्रत्येक द्रव्यके परिणाम हैं। उस प्रत्येक परिणाममें उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य—ऐसे तीन प्रकार सिद्ध किये हैं। अपने अपने निश्चित् अवसरमें प्रत्येक परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला है। किसीसे किसीके परिणामका उत्पाद हो या कोई परिणाम आगे-पीछे हो—यह बात तो यहाँसे कहीं दूर उड़ गई; कोई परिणाम आगे-पीछे नहीं होते इस निर्णयमें तो सर्वज्ञताका निर्णय और ज्ञायक द्रव्यकी दृष्टि हो जाती है।

आत्मामें वर्तमान जो ज्ञानअवस्था है उस अवस्थामें ज्ञानगुण वर्त रहा है, दूसरी अवस्था होगी तब उसमें वर्तमान वर्तेगा। और तीसरी अवस्थाके समय उसमें भी वर्तमान वर्तेगा। इस प्रकार दूसरी-तीसरी-चौथी सभी अवस्थाओंके प्रवाहका पिण्ड सो ज्ञानगुण है। ऐसे अनन्तगुणोंका पिण्ड सो द्रव्य है। द्रव्यके प्रतिसमय जो परिणाम होते हैं वे परिणाम अपनी अपेक्षासे उत्पादरूप हैं, पूर्वके अभावकी अपेक्षासे व्ययरूप हैं, और अखण्ड प्रवाहमें वर्तनेवाले अंशरूपसे ध्रौव्य हैं। ऐसा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला परिणाम है वह प्रत्येक द्रव्यका स्वभाव है; और ऐसे स्वभावमें द्रव्य नित्य प्रवर्तमान है इसलिये द्रव्य स्वयं भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभाववाला है—ऐसा अनुमोदन करना।

प्रत्येक वस्तु पलटती हुई-नित्य है। यदि वस्तु अकेली 'नित्य' ही हो तो उसमें सुख-दुःख इत्यादि कार्य नहीं हो सकते; और यदि वस्तु एकान्त 'पलटती' ही हो तो वह त्रिकालस्थायी नहीं रह सकती, दूसरे ही क्षण उसका सर्वथा अभाव हो जायेगा। इसलिये वस्तु अकेली नित्य, या अकेली पलटती नहीं है, किन्तु नित्यस्थायी रहकर प्रतिक्षण पलटती है। इस प्रकार नित्य पलटती हुई वस्तु कहो या 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त सत्' कहो, उसका यह वर्णन है। अल्पसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अल्पकालमें होनेवाले परिणाममें वर्तता-वर्तता द्रव्य नित्यस्थायी है। उसके प्रत्येक परिणाममें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपना है-यह बात हो गई है। और वह द्रव्य स्वयं भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला है।—यह बात चल रही है।

समस्त पदार्थ सत् हैं। पदार्थ 'है'—ऐसा कहते ही उसका सत्पना आ जाता है। पदार्थोंका सत्पना पहले (७८ वीं गाथामें) सिद्ध कर चुके हैं। पदार्थ सत् हैं और सत् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यसहित है। कोई भी वस्तु हो वह वर्तमान—वर्तमानरूपसे वर्तती रहेगी न ? कहीं भूत या भविष्यमें नहीं रहेगी। वस्तु तो वर्तमानमें ही वर्तती है और वह प्रत्येक समयका वर्तमान भी यदि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला न हो तो वस्तुका त्रिकाल परिवर्तनपना सिद्ध नहीं होगा। इस लिये प्रतिसमय होने वाले उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाले परिणाममें ही वस्तु वर्तती है। जिस प्रकार द्रव्य त्रिकाली सत् है उसी प्रकार उसके तीनोंकालके परिणाम भी प्रत्येक समयका सत् है। प्रत्येक परिणाम को उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त सत् सिद्ध करके, यहाँ परिणाममें वर्तनेवाले द्रव्यको उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त सिद्ध करते हैं।

द्रव्यका एक वर्तमान प्रवर्तित परिणाम अपनेसे उत्पादरूप है, अपने पहलेके परिणामकी अपेक्षासे व्ययरूप है और अखण्ड प्रवाहमें वह ध्रौव्य है।—इस प्रकार परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला है और उस परिणाममें द्रव्य वर्तता है इसलिये द्रव्य भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-वाला ही है। परिणामके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सिद्ध करनेसे, उस परिणाममें वर्तनेवाले परिणामीके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सिद्ध हो जाते हैं इसलिये कहा है कि द्रव्यको त्रिलक्षण अनुमोदना। अनुमोदना अर्थात् रुचिपूर्वक मानना, सानंद संमत करना।

यदि समय-समयके परिणामकी यह बात समझ ले तो परमें खटपट करनेका अहंकार न रहे और अकेले रागादि परिणामों पर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भी दृष्टि न रहे किन्तु परिणामी ऐसे त्रिकाली द्रव्यको दृष्टि हो जाये; और द्रव्यदृष्टि होनेसे आनन्दका अनुभव हुए बिना न रहे। इसलिये कहा है कि....'सानंद संमत करना।'

जिस प्रकार त्रिकाली सत्में जो चैतन्य है वह चैतन्य ही रहता है और जड़ है वह जड़ ही रहता है; चैतन्य मिटकर जड़ नहीं होता और न जड़ मिटकर चैतन्य होता है। उसी प्रकार एक समयके सत्में भी—जो परिणाम जिस समयमें सत् है वह परिणाम उसी समय होता है–आगे–पीछे नहीं होता। जिस प्रकार त्रिकाली सत् है उसी प्रकार वर्तमान भी सत् है। जिस प्रकार त्रिकाली सत् पलटकर अन्यरूप नहीं हो जाता उसी प्रकार वर्तमान सत् पलटकर भी भूत या भविष्यरूप नहीं हो जाता। तीनों कालके समय समयके वर्तमान परिणाम अपना स्वसमय (स्व–काल) छोड़कर पहले या पीछेके समय नहीं होते। जितने तीन कालके समय हैं उतने ही द्रव्यके परिणाम हैं; उनमें जिस समयका जो वर्तमान परिणाम है वह परिणाम अपना वर्तमानपना छोड़कर भूत या भविष्यमें नहीं होता। बस, प्रत्येक परिणाम अपने अपने कालमें वर्तमान सत् है। उस सत्को कोई बदल नहीं सकता। सत्को बदलना माने वह मिथ्यादृष्टि है; उसे ज्ञातास्वभावकी प्रतीति नहीं है। जिस प्रकार चेतनको बदलकर जड़ नहीं किया जा सकता उसी प्रकार द्रव्यके त्रिकाली प्रवाहमें उस–उस समयके वर्तमान परिणामको आगे–पीछे नहीं किया जा सकता। अहो! लोगोंको अपने ज्ञानस्वभावकी प्रतीति नहीं है इसलिये ज्ञेयोंके ऐसे व्यवस्थित स्वभावकी प्रतीति नहीं बैठती।

जिस प्रकार वस्तु अनादि–अनन्त है उसी प्रकार उसका प्रत्येक समयका वर्तमान भी प्रवाहरूपसे अनादि-अनंत है। वस्तु और वस्तुका वर्तमान—वह पहले–पीछे नहीं है। वस्तुका वर्तमान कब नहीं होता? कभी भी वर्तमान बिना वस्तु नहीं होती। दोनों ऐसेके ऐसे अनादि-अनंत हैं। तीनों कालमेंसे एक भी समयके वर्तमानको

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निकाल दें तो त्रिकाली वस्तु ही सिद्ध नहीं हो सकती। तीनों कालके वर्तमानका पिण्ड सो सत् द्रव्य है, और उन तीनों कालका प्रत्येक वर्तमान परिणाम अपने अवसरमें सत् है, वह अपनेसे उत्पादरूप है, पूर्वकी अपेक्षासे व्ययरूप और अखण्ड वस्तुके वर्तमानरूपसे ध्रौव्यरूप है। ऐसे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त परिणाम सो सत् है और वह द्रव्यका स्वभाव है। ऐसे सत्को कौन बदल सकता है? सत्को जैसेका तैसा जान सकता है किन्तु उसे कोई बदल नहीं सकता।

वस्तुके द्रव्य-गुण-पर्यायका जैसा स्वभाव है वैसा ज्ञान जानता है। अंशको अंशरूपसे जानता है और त्रिकालीको त्रिकालीरूपसे जानता है;—ऐसा स्वभाव जानने पर अकेले अंशकी रुचि न रहनेसे त्रिकाली स्वभावकी रुचिकी ओर श्रद्धा ढल जाती है। अंशको अंशरूपसे और अंशीको अंशीरूपसे श्रद्धामें लेने पर श्रद्धाका सारा बल अंश परसे हटकर त्रिकाली द्रव्य-गुणकी ओर ढल जाता है, यही सम्यग्दर्शन है।

द्रव्य, गुण और पर्याय-यह तीनों स्वज्ञेय हैं। एक समयमें द्रव्य-गुण-पर्यायका पिण्ड वह सम्पूर्ण स्वज्ञेय है। उसमें पर्याय एक समयपर्यन्तकी है-ऐसा जाननेसे उसपर एक समयपर्यंतका ही बल रहा; और द्रव्य भी त्रिकाली जाननेसे उसपर त्रिकाली बल आया, इसलिये उसकी मुख्यता हुई और उसकी रुचिमें श्रद्धाका बल ढल गया। इस प्रकार स्वज्ञेयको जाननेसे सम्यक्त्व आ जाता है। इसलिये इस ज्ञेय-अधिकारका दूसरा नाम सम्यक्त्व-अधिकार भी है।

स्वज्ञेय परज्ञेयसे बिलकुछ भिन्न है। यहाँ राग भी स्वज्ञेयमें आता है। समयसारमें द्रव्यदृष्टिकी प्रधानतासे कथन है, वहाँ स्वभावदृष्टिमें रागकी गौणता हो जाती है, इसलिये वहाँ तो 'राग आत्मामें होता ही नहीं, राग जड़के साथ तादात्म्यवाला है'—ऐसा कहा जाता है। वहाँ दृष्टि अपेक्षासे रागको परमें डाल दिया और द्रव्यको दृष्टि कराई। और यहाँ, इस प्रवचनसारमें ज्ञान अपेक्षासे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कथन है, इसलिये सम्पूर्ण स्वज्ञेय बतानेके लिये रागको भी स्वज्ञेयमें लिया है। दृष्टि अपेक्षासे राग परमें जाता है और ज्ञान-अपेक्षासे वह स्वज्ञेयमें आता है; परन्तु रागमें ही स्वज्ञेय पूरा नहीं हो जाता। रागरहित द्रव्य-गुण-स्वभाव भी स्वज्ञेय है। इस प्रकार द्रव्य-गुण-पर्याय तीनोंको स्वज्ञेयरूपसे जाना वहाँ रागमेंसे एकत्वबुद्धि छूटकर रुचिका बल द्रव्यकी ओर ढल गया। अकेले रागको सम्पूर्ण तत्त्व स्वीकार करनेसे स्वज्ञेय सम्पूर्ण प्रतीतिमें नहीं आता था। और द्रव्य-गुण-पर्यायरूप सम्पूर्ण स्वज्ञेयकी प्रतीति होनेसे उस प्रतीतिका बल त्रिकालीकी ओर बढ़ जाता है, इसलिये त्रिकालीकी मुख्यता होकर उस ओर रुचिका बल ढलता है। इस प्रकार इसमें भी द्रव्यदृष्टि आ जाती है।

स्वद्रव्य-गुण-पर्याय यह सब मिलकर स्वज्ञेय है; राग भी स्वज्ञेय है। किन्तु ऐसा जाननेसे रुचिका बल रागसे हटकर अन्तरमें ढल जाता है। त्रिकाली तत्त्वको भूलकर मात्र अंशको ही स्वीकार करती थी; वह मिथ्यारुचि थी; द्रव्य-गुण-पर्याय तीनोंको ज्ञेयरूप जानकर अव्यक्त—शक्तिरूप अंतरस्वभावोन्मुख हो जाता है तभी स्वज्ञेयको पूर्ण प्रतीतिमें लिया है और तभी उसने भगवान कथित द्रव्य-गुण-पर्यायका स्वरूप सुना—ऐसा कहा जाता है।

जैसे—गुड़को गुड़रूपसे जाने और विषको विषरूपसे जाने तो वह ज्ञान बराबर है, किन्तु गुड़को विषरूपसे जाने और विषको गुड़रूपसे जाने तो वह ज्ञान मिथ्या है। उसी प्रकार द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों मिलकर एक समयमें सम्पूर्ण स्वज्ञेय है, उसमें द्रव्यको द्रव्यरूपसे जाने, गुणको गुणरूपसे जाने और पर्यायको पर्यायरूपसे जाने तो ज्ञान सच्चा हो; किन्तु जैसा है वैसा न जाने या क्षणिक पर्यायको ही सम्पूर्ण तत्त्व मान ले अथवा तो क्षणिक पर्यायको सर्वथा ही न जाने-तो वह ज्ञान सच्चा नहीं होता। पदार्थके सच्चे ज्ञान बिना श्रद्धा भी सच्ची नहीं होती, और ज्ञान-श्रद्धान बिना सम्यक्चारित्र, वीतरागता या मुक्ति नहीं होती।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

त्रिकाली तत्त्वकी रुचिकी ओर उन्मुख होकर सम्पूर्ण स्वज्ञेय प्रतीतिमें आया तब परज्ञेयको जाननेकी ज्ञानकी यथार्थ शक्ति विकसित हुई। ज्ञानकी वर्तमान दशा रागसन्मुख रुककर उसे सम्पूर्ण स्वज्ञेय मानती थी. वह ज्ञान मिथ्या था, उसमें स्व-परप्रकाशक ज्ञान-सामर्थ्य नहीं था। और ज्ञानकी वर्तमानदशामें अन्तरकी सम्पूर्ण वस्तुको ज्ञेय बनाकर उस ओर उन्मुख हो जानेसे वह ज्ञान सम्यक् हुआ, और उसमें स्व-परप्रकाशकशक्ति विकसित हुई।

परिणामके प्रवाहक्रममें वर्तनेवाला द्रव्य है—ऐसा निश्चित् किया वहाँ रुचिका बल उस द्रव्यकी ओर ढलनेसे रुचि सम्यक् हो गई। उस पर्यायमें रागका अंश वर्तता है वह भी ज्ञानके ख्यालसे बाहर नहीं है, ज्ञान उसे स्वज्ञेयरूपसे स्वीकार करता है। इस प्रकार सम्पूर्ण स्वज्ञेयको (द्रव्य-गुणको तथा विकारी-अविकारी पर्यायोंको) स्वीकार करनेसे रुचि तो द्रव्य-गुण-पर्यायकी ओर उन्मुख होकर सम्यक् हो गई और ज्ञानमें द्रव्य-गुण-पर्याय तीनोंका ज्ञान सच्चा हुआ।—ऐसा इस ज्ञेय अधिकारका वर्णन है।

ज्ञेयके तीनों अंशोंको (—द्रव्य-गुण-पर्यायको) स्वीकार करे वह ज्ञान सम्यक् है, एक अंशको ही (रागको ही) स्वीकार करे तो वह ज्ञान मिथ्या है, और सर्वथा रागरहित स्वीकार करे तो वह ज्ञान भी मिथ्या है; क्योंकि रागपरिणाम भी साधकके वर्तते हैं, उन रागपरिणामोंको स्व-ज्ञेयरूपसे न जाने तो राग-परिणाममें वर्तनेवाले द्रव्यको भी नहीं माना।

रागपरिणाम भी द्रव्यके तीनकालके परिणामकी पद्धतिमें आ जाता है; रागपरिणाम कहीं द्रव्यके परिणामकी परम्परासे पृथक् नहीं है। तीनोंकालके परिणामोंकी परम्परामें वर्त कर ही द्रव्य स्थित है।

निगोद या सिद्ध—कोई भी परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप है, और उस परिणाममें द्रव्य वर्त रहा है। परिणामकी जो रीति

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है—जो क्रम है–जो परम्परा है–जो स्वभाव है, उसमें द्रव्य अवस्थित है। वह द्रव्य अपने उत्पाद–व्यय–ध्रौव्यरूप परिणामस्वभावका अतिक्रम नहीं करता। यहां 'स्वभाव' कहनेसे शुद्ध परिणाम ही नहीं समझना किन्तु विकारी या अविकारी समस्त परिणाम द्रव्यका स्वभाव है, और वह स्वज्ञेयमें आ जाता है। और जो ऐसा जानता है उसे शुद्ध परिणामकी उत्पत्ति होने लगती है। स्वज्ञेयमें पर-ज्ञेय नहीं है और पर-ज्ञेयमें स्वज्ञेय नहीं है—ऐसा जाननेमें ही वीतरागी श्रद्धा आ जाती है। क्योंकि मेरा स्व-ज्ञेय पर-ज्ञेयोंसे भिन्न है—ऐसा निर्णय करनेसे किसी भी पर-ज्ञेयके अवलम्बनका अभिप्राय नहीं रहा इसलिये स्व–द्रव्यके अवलम्बनसे सम्यक्श्रद्धा हुई। सम्पूर्ण द्रव्य सो परिणामी और उसका अंश सो परिणाम; उसमें पूर्ण परिणामीकी अन्तर्दृष्टि बिना परिणामका सच्चा ज्ञान नहीं होता। परिणामोंकी परम्पराको द्रव्य नहीं छोड़ता किन्तु उस परम्परामें ही वर्तता है;—इसलिये लक्षका बल कहाँ गया ?–द्रव्य पर। इस प्रकार इसमें भी द्रव्यदृष्टि आ जाती है।

द्रव्य तो अनन्त शक्तिका त्रिकाली पिण्ड है, और परिणाम तो एक समयपर्यन्तका अंश है;—ऐसा जाना वहाँ श्रद्धाका बल अनंत शक्तिके पिण्डकी ओर ढल गया इससे द्रव्यकी प्रतीति हुई, और द्रव्य–पर्याय दोनोंका यथार्थ ज्ञान हुआ।

प्रत्येक वस्तु अपने परिणामस्वभावमें वर्त रही है, उस परिणामके तीन लक्षण (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक) हैं; इसलिये उस परिणाममें प्रवर्तित वस्तुमें भी यह तीनों लक्षण आ जाते हैं, क्योंकि वस्तुका अस्तित्व परिणामस्वभावसे पृथक् नहीं है। वस्तु 'है' ऐसा कहते ही उसमें उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य आ जाते हैं। उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य बिना 'वस्तु है'—ऐसा सिद्ध नहीं होता। परिणाम 'है' ऐसा कहनेसे वह परिणाम भी उत्पाद–व्यय–ध्रौव्यवाला है। 'अस्तित्व (–सत्)' उत्पाद-व्यय–ध्रौव्यके बिना नहीं होता। इसलिये सत्त्वको त्रिलक्षण अनुमोदना।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पहले यथार्थ श्रवण करके वस्तुको बराबर जाने कि–'यह ऐसा ही है' तो ज्ञान निःशंक हो, और ज्ञान निःशंक हो तभी अन्तरमें उसका मंथन करके निर्विकल्प अनुभव करे। किन्तु जहाँ ज्ञान ही मिथ्या हो और 'ऐसा होगा या वैसा'–ऐसी शंकामें भूलता हो वहाँ अन्तरमें मंथन कहाँसे होगा ? निःशंक ज्ञानरहित मंथन भी मिथ्या होता है अर्थात् मिथ्याज्ञान और मिथ्याश्रद्धा होती है। पहले वस्तु-स्थिति क्या है वह बराबर ध्यानमें लेना चाहिये। वस्तुको बराबर ध्यानमें लिये बिना किसका मंथन करेगा ?

वस्तु परिणामका उल्लंघन नहीं करती, क्योंकि परिणाम सत् है। यदि वस्तु परिणामका उल्लंघन करे तब तो 'सत्' का ही उल्लंघन करे, इसलिये 'है' ऐसा सिद्ध न हो। वस्तु तीनों कालके परिणामके प्रवाहमें वर्तती है।

अहो, यह तो सम्पूर्ण ज्ञेयका पिण्ड प्रतीतिमें लेनेका मार्ग कहो अथवा पूर्ण ज्ञायकपिण्डकी दृष्टि कहो; सम्यक् नियतवाद कहो या यथार्थ मोक्षमार्गका पुरुषार्थ कहो, वीतरागता कहो अथवा तो धर्म कहो;—वह सब इसमें आ जाता है।

श्री आचार्यदेव कहते हैं कि वस्तुका स्वभाव ही यह (उपरोक्तानुसार) है; ऐसा वस्तुस्वभाव आनन्दपूर्वक मानना—संमत करना। जो ऐसे वस्तुस्वभावको जाने उसे अपूर्व आनन्द हुए बिना न रहे। जहाँ वस्तुको त्रिलक्षण जाना वहाँ आत्मा स्वयं सम्यक् स्वभावमें ढले बिना नहीं रहता;—वस्तु सम्यक्-स्वभावरूप परिणमित होने पर अपूर्व आनन्दका अनुभव होता ही है। इसलिये यहाँ कहा है कि ऐसे वस्तुस्वभावको आनन्दसे मान्य करना।

देखो, उस-उस परिणामका वस्तु उल्लंघन नहीं करती, इसलिये दृष्टि कहाँ गई ? वस्तु पर दृष्टि गई; परिणाम-परिणामीकी एकता हुई; इसलिये सम्पूर्ण सत् एकाकार हो गया,—सम्पूर्ण स्वज्ञेय अभेद हो गया। ऐसे स्वज्ञेयको जाने और माने वहाँ वस्तुस्वभावको सम्यक्प्रतीति और अपूर्व आनन्दका अनुभव हुए बिना नहीं रहता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जिस प्रकार केवलज्ञानी लोकालोक—ज्ञेयको सत् रूपसे जानता है, उसी प्रकार सम्यक्दृष्टि भी उसे ज्ञेयरूपसे स्वीकार करता है, और उसे जाननेवाले अपने ज्ञानस्वभावको भी वह स्वज्ञेयरूपसे स्वीकार करता है। वहाँ उसकी रुचि स्वभाववान् ऐसे अन्तरद्रव्यकी ओर ढलती है, उसी रुचिके बलसे निर्विकल्पता हुए बिना नहीं रहती; निर्विकल्पतामें आनन्दका अनुभव भी साथ ही होता है !

प्रश्न:—कितने कालमें कितने जीव मोक्षमें जाते हैं—ऐसी तो कोई बात इसमें नहीं आई ?

उत्तर:—इतने कालमें इतने जीव मोक्ष जाते हैं—ऐसी गिनतीकी यहाँ मुख्यता नहीं है, किन्तु मोक्ष कैसे हो ? उसकी मुख्य बात है। स्वयं ऐसे यथार्थ स्वभावको पहिचाने तो अपनेको सम्यक्त्व और वीतरागता हो, और मोक्ष हो जाये। आत्माका मोक्ष कब होता है—ऐसी कालकी मुख्यता नहीं है, किन्तु आत्माका मोक्ष किस प्रकार होता है यही मुख्य प्रयोजन है और इसीकी यह बात चल रही है।

जिस प्रकार सत् है उसी प्रकार स्वीकार करे तो ज्ञान सत् हो और शांति आये। इस गाथामें दो सम-अंक [९९] हैं और वह भी दो नौ। नव प्रकारके क्षायिकभाव हैं इसलिये नवका अंक क्षायिकभाव सूचक है और दो नव इकट्ठे हुए इसलिये समभाव—वीतरागता बतलाते हैं;—क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक चारित्र—दोनों साथ आ जायें ऐसी अपूर्व बात है। अंक तो जो है सो है, किन्तु यहाँ अपने भावका आरोप करना है न !

वर्तमान—प्रवर्तित परिणाम—में वस्तु वर्त रही है, इसलिये सम्पूर्ण वस्तु ही वर्तमानमें वर्तती है। वह वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-वाली है। यहाँ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य कहकर सत् सिद्ध करते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मा सत्, जड़ सत्; एक द्रव्यके अनन्त गुण सत्, तीन कालके स्व-अवसरमें होनेवाले परिणाम सत्, प्रत्येक समयके परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक सत् ! बस, इस सत्में कोई फेरफार नहीं होता ।—ऐसा स्वीकार किया वहाँ 'मिथ्यात्वको बदलकर सम्यक्त्व करूँ'—यह बात नहीं रही । क्योंकि जिसने ऐसा स्वीकार किया उसने अपने ज्ञायकभावको स्वीकार किया और वह जीव द्रव्यस्व-भावोन्मुख हुआ, वहाँ वर्तमान परिणाममें सम्यक्त्यका उत्पाद हुआ, और उस परिणाममें पूर्वके मिथ्यात्वपरिणामका तो अभाव ही है । पूर्वके तीव्र पापपरिणाम वर्तमान परिणाममें बाधक नहीं होते, क्योंकि वर्तमानमें उनका अभाव है । 'पूर्वके तीव्र पापके परिणाम इस समय बाधक होंगे'—ऐसा जिसने माना उसको वह विपरीत मान्यता बाधक होती है, किन्तु पूर्वके पाप तो उसको भी बाधक नहीं है । 'पूर्वके तीव्र पापके परिणाम इस समय बाधक होंगे'—ऐसा जिसने माना उसने द्रव्यको त्रिलक्षण नहीं जाना । यदि 'त्रिलक्षण द्रव्यके वर्तमान उत्पादपरिणाममें पूर्व परिणामका व्यय है, इसलिये पूर्व परिणाम बाधा देते हैं'—ऐसा वह न माने, किन्तु प्रतिसमयके वर्तमान परिणामको स्वतन्त्र सत् जाने और उसकी दृष्टि, वे परिणाम जिसके हैं ऐसे द्रव्य पर जाये; इसलिये द्रव्यदृष्टिमें उसे वीतरागताका ही उत्पाद होता जाये ।—इसप्रकार इसमें मोक्षमार्ग आ जाता है ।

वीतराग या राग, ज्ञान या अज्ञान, सिद्ध या निगोद किसी भी एक समयके परिणामको यदि निकाल दें तो द्रव्यका सत्पना ही सिद्ध नहीं होता; क्योंकि उस-उस समयके परिणाममें द्रव्य वर्त रहा है, इसलिये अपने क्रमबद्धपरिणामोंके प्रवाहमें वर्तमान वर्त रहे द्रव्यको उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला ही आनन्दसे मानना ।

स्वभावमें अवस्थित द्रव्य सत् है—यह बात सिद्ध करनेके लिये प्रथम तो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त परिणाम कहकर स्वभाव सिद्ध किया, और उस स्वभावमें द्रव्य नित्य अवस्थित है—ऐसा अभी सिद्ध किया ।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पहले परिणामोंके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सिद्ध करनेके लिये प्रदेशोंका उदाहरण था, वह परिणामकी बात पूर्ण हुई। और अब द्रव्यके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य मोतियोंके हारका दृष्टान्त देकर समझायेंगे।

पहले 'वर्तमान'को सिद्ध किया और फिर उस 'वर्तमानमें वर्तनेवाला' सिद्ध किया। परिणाम किसके? परिणामीके। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त वर्तमान परिणाम और उस परिणाममें वर्तनेवाला उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त द्रव्य वह सम्पूर्ण स्वज्ञेय है। इसकी प्रतीति सो सम्पूर्ण स्वज्ञेयकी प्रतीति है। सम्पूर्ण स्वज्ञेयकी प्रतीति करनेसे रुचिका बल वर्तमान अंश परसे हटकर त्रिकाली द्रव्यकी ओर ढलता है—यही सम्यग्दर्शन है।

परिणाममें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य निश्चित् करनेसे भी दृष्टि द्रव्य पर जाती है, क्योंकि द्रव्य अपने परिणामस्वभावको नहीं छोड़ता।

परिणामस्वभावमें कौन वर्तता है?—द्रव्य।

परिणामको कौन नहीं छोड़ता?—द्रव्य।

इसलिये ऐसा निश्चित् करनेसे दृष्टि द्रव्य पर जाती है, और द्रव्य-दृष्टि होते ही परिणाममें सम्यक्त्वका उत्पाद और मिथ्यात्वका व्यय हो जाता है। इस प्रकार द्रव्यकी दृष्टिमें ही सम्यक्त्वका पुरुषार्थ आ जाता है। इसके अतिरिक्त मिथ्यात्व दूर करनेके लिये और सम्यक्त्व प्रगट करनेके लिये दूसरा कोई अलग पुरुषार्थ करना नहीं रहता। द्रव्यदृष्टि ही सम्यक्दृष्टि है।

❀

जिसे धर्म करना हो उसे कैसा वस्तुस्वरूप जानना चाहिए-उसकी यह बात है। धर्म आत्माकी पर्याय है इसलिये वह आत्मामें ही होता है। आत्माका धर्म परसे नहीं होता और न परके द्वारा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ही होता है। और पर्यायका धर्म पर्यायमेंसे नहीं होता किन्तु द्रव्यमेंसे होता है; धर्म तो पर्यायमें ही होता है किन्तु उस पर्याय द्वारा (पर्याय-सन्मुख देखनेसे या पर्यायका आश्रय करनेसे) धर्म नहीं होता, किन्तु द्रव्यकी सन्मुखतासे पर्यायमें धर्म होता है। परका तो आत्मामें अभाव है इसलिये परसन्मुख देखनेसे धर्म नहीं होता।

अब, जिसे अपनी अवस्थामें धर्म करना है उसे अधर्मको दूर करना है और धर्मरूप होकर आत्माको अखण्ड बनाये रखना है। देखो, इसमें 'धर्म करना है' ऐसा कहनेसे उसमें नवीन पर्यायके उत्पादकी स्वीकृति आ जाती है; 'अधर्मको दूर करना है'—उसमें पूर्व पर्यायके व्ययकी स्वीकृति आ जाती है; और 'आत्माको अखण्ड बनाये रखना है'—इसमें अखण्ड प्रवाहकी अपेक्षासे ध्रौव्यका स्वीकार आ जाता है। इस प्रकार धर्म करनेकी भावनामें वस्तुके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-स्वभावकी स्वीकृति आ जाती है। यदि वस्तु में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य न हों तो अधर्म दूर होकर धर्मकी उत्पत्ति न हो और आत्मा अखण्ड स्थित न रहे। और वे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य भी यदि कालके छोटेसे छोटे भागमें न हों तो एक समयमें अधर्म दूर करके धर्म न हो सके। इसलिये धर्म करनेवालेको वस्तुको प्रतिसमय उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-स्वभाववाली जानना चाहिये।

द्रव्य-गुण नित्य हैं और पर्याय क्षणिक है; उन तीनोंको जानकर नित्यस्थायी द्रव्यकी ओर वर्तमान पर्यायको उन्मुख किये बिना धर्म नहीं होता। वस्तुमें अवस्था तो नवीन-नवीन होती ही रहती है। यदि नवीन अवस्था न हो तो धर्म कैसे प्रगट हो? और यदि पुरानी अवस्थाका अभाव न हो तो अधर्म कैसे दूर हो? तथा परिणामोंमें अखण्डरूपसे ध्रौव्यता न रहती हो तो द्रव्य स्थित कहाँ रहे? इसलिये वस्तुमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य यह तीनों जानना चाहिये। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य यह लक्षण है और परिणाम लक्ष्य है; तथा परिणाममें वस्तु वर्तती है इसलिये वह वस्तु भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य ऐसे त्रिलक्षणवाली ही है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कोई भी परिणाम लो तो प्रवाहकी अखण्ड धारामें वह ध्रौव्य है, अपने स्वकाल-अपेक्षासे उत्पादरूप है और पूर्व परिणाम-अपेक्षासे व्ययरूप है। इस प्रकार परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त सत् है। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य लक्षण है और परिणाम लक्ष्य है। परिणाम किसी अन्य पदार्थके कारण नहीं होते किन्तु वे स्वयं अपने अवसरमें सत् हैं। भगवानकी वीतरागी मूर्तिके कारण या गुरुके उपदेशके कारण जीवको रागके अथवा ज्ञानके परिणाम हुए-ऐसा नहीं है, तथा पर जीव दुःखी है इसलिये अपनेको अनुकम्पाके भाव उत्पन्न हुए ऐसा भी नहीं है। किन्तु जीवके प्रवाहक्रममें उस-उस भाववाले परिणाम सत् हैं। किसी भी द्रव्यके परिणामकी अखण्ड धारामें एक भी समयका खण्ड नहीं पड़ता। यदि इसप्रकार परिणामोंको जाने तो उन परिणामोंके प्रवाहमें प्रवर्तमान द्रव्यको भी पहिचान ले, क्योंकि अपने परिणामके स्वभावको कोई द्रव्य नहीं छोड़ता-उल्लंघन नहीं करता।

ऐसा वस्तुस्वभाव समझे बिना कहीं बाहरसे धर्म नहीं आ जायेगा। जैसे—लकड़ीके भारे बेचनेसे लखपति नहीं हुआ जा सकता किन्तु हीरा-माणिककी परख करना सीखे तो उसके व्यापारसे लखपति होता है। (यह तो दृष्टान्त है।) उसी प्रकार अन्तरके चैतन्य-हीरेको परखनेकी कलामें ही धर्मकी कमाई हो सकती है। इसके अतिरिक्त किन्हीं बाह्य क्रिया-काण्डोंसे या शुभरागसे धर्मकी कमाई नहीं होती। देखो, यह तो द्रव्यानुयोगका सूक्ष्म विषय है, इसलिये अन्तरमें सूक्ष्म दृष्टि करे तो समझमें आ सकता है।

वस्तुमें जिस कालमें जो परिणाम होता है वह सत् है; तीन कालके परिणाम अपने अपने कालमें सत् हैं और ऐसे परिणामोंमें द्रव्य वर्तमान वर्त रहा है। वह द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य ऐसे त्रिलक्षणवाला है। उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य ऐसे तीन भिन्न भिन्न लक्षण नहीं हैं किन्तु उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य यह तीनों मिलकर द्रव्यका एक लक्षण है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भाई ! अपने ज्ञानमें तू ऐसा निर्णय कर कि द्रव्यमें जिस समय जो परिणाम है उस समय वही सत् है, उसका मैं ज्ञाता हूँ, उसमें कोई फेरफार करनेवाला नहीं हूँ।—ऐसा जाननेसे पर्यायके रागका स्वामित्व और अंशबुद्धि दूर हो जाती है और ध्रौव्यके लक्षसे सम्यक्त्व एवं वीतरागता होती है–यही धर्म है।

प्रत्येक द्रव्य भिन्न–भिन्न है; भिन्न–भिन्न द्रव्यके उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य द्वारा उस–उस द्रव्यकी सत्ता पहिचानी जाती है। एक द्रव्यके उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य द्वारा दूसरे द्रव्यकी सत्ता नहीं जानी जाती। शरीरमें रोटी नहीं आई उस परिणाम द्वारा पुद्गल द्रव्यकी सत्ता जानी जाती है, किन्तु उसके द्वारा जीवके धर्मपरिणाम नहीं पहिचाने जा सकते। रोटी नहीं आई वहाँ पुद्गल द्रव्य ही अपनी परिणामधारामें वर्तता हुआ उस परिणाम द्वारा लक्षित होता है और उस समय आत्मा अपने ज्ञानादि परिणामों द्वारा लक्षित होता है। जिस द्रव्यके जो परिणाम हों उनके द्वारा द्रव्यको पहिचानना चाहिए; उसके बदले एक द्रव्यके परिणाम दूसरे द्रव्यने किये–ऐसा जो मानता है उसने वस्तुके परिणामस्वभावको नहीं जाना अर्थात् सत्को नहीं जाना है। वस्तु सत् है और सत्का लक्ष उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य है, इसलिये वस्तुमें स्वभावसे ही प्रतिसमय उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य होते रहते हैं, तो दूसरा उसमें क्या करेगा ?—या तो ज्ञाता रहकर वीतरागभाव करेगा, या फेरफार करनेका अभिमान करके मिथ्याभाव करेगा, किन्तु पदार्थमें तो कुछ भी फेरफार नहीं कर सकता।

'जीवके व्रत करनेके भावोंके कारण द्वारिका नगरी जलनेसे बच गई, और कोई व्रत करनेवाला नहीं रहा इसलिये द्वारिका नगरी जल गई'—ऐसा जो मानता है उसे वस्तुके स्वभावकी खबर नहीं है। अथवा तो—किसी जीवके क्रोधके कारण द्वारिका नगरी जल गई—ऐसा भी नहीं है। द्वारिका नगरीका प्रत्येक पुद्गल अपने

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परिणामकी धारामें वर्त रहा द्रव्य है। अपने प्रवाहक्रममें अपने स्वकालमें उसके परिणाम हुए हैं। और व्रत या क्रोधादि जीवके परिणाम हुए उसमें वह जीवद्रव्य वर्तता है। समस्त द्रव्य अपने अपने परिणाममें भिन्न-भिन्न वर्तते हैं। उनमें एकके परिणामके कारण दूसरेके परिणाम हों या रुकें—ऐसा माननेवाला मूढ़ है; भगवान कथित त्रिलक्षण वस्तुस्वभावको उसने नहीं जाना है।

वस्तु प्रतिसमय अपने उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यको करेगी या परके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य करने जायेगी ? परवस्तु भी अपने स्वभावसे ही उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाली है। वस्तु अपने वर्तमान परिणामका उल्लंघन करके दूसरेके परिणाम करने जाये—ऐसा कभी नहीं हो सकता। निमित्तके बलसे उपादानके परिणाम हों यह बात इसमें कहीं नहीं रहती। प्रत्येक वस्तु स्वयं नित्य परिणामी स्वभाववाली है—'परिणमन करता हुआ-परिणमन करता हुआ ही नित्य' स्वभाव है। ऐसे स्वभावमें सदैव विद्यमान वस्तु स्वयं उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सहित है—ऐसा सानन्द मानना-अनुमोदन करना।

❀

अब, मोतियोंके हारका दृष्टान्त देकर वस्तुके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य समझाते हैं :—

जिस प्रकार—'जिसने (अमुक) लम्बाई ग्रहण की है ऐसे लटकते हुए मोतीके हारमें, अपने अपने स्थानमें प्रकाशित समस्त मोतियोंमें, पीछे-पीछेके स्थानोंमें पीछे-पीछेके मोती प्रगट होनेसे और पहले-पहलेके मोती प्रगट न होनेसे तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूतिका रचयिता डोरा अवस्थित होनेसे त्रिलक्षणपना प्रसिद्धि पाता है....'

हारमें एक-दो मोती नहीं हैं किन्तु अनेक मोतियोंका हार है। और वह हार जैसा-तैसा नहीं पड़ा है किन्तु 'लटकता' हुआ लिया है। १०८ मोतियोंका हार लिया जाय तो उसमें सभी मोती अपने-अपने

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्थानमें प्रकाशित हैं और पीछे-पीछेके स्थानमें पीछे-पीछेका मोती प्रकाशित होता है, इसलिये उन मोतियोंकी अपेक्षासे हारका उत्पाद है। तथा एकके बाद दूसरे मोतीको लक्षमें लेनेसे पहलेका मोती लक्षमेंसे छूट जाता है इसलिये पहलेका मोती दूसरे स्थान पर प्रकाशित नहीं होता—इस अपेक्षासे हारका व्यय है। और सभी मोतियोंमें परस्पर सम्बन्ध जोड़नेवाला अखण्ड डोरा होनेसे हार ध्रौव्यरूप है।—इस प्रकार हार उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य ऐसे त्रिलक्षणवाला निश्चित् होता है। हारका प्रत्येक मोती अपने-अपने स्थानमें है; पहला मोती दूसरे नहीं होता, दूसरा मोती तीसरे नहीं होता। जो जहाँ है वहाँ वही है; पहले स्थानमें पहला मोती है, दूसरे स्थानमें दूसरा मोती है, और हारका अखण्ड डोरा सर्वत्र है। मोतीकी माला फेरते समय पीछे-पीछेका मोती अंगुलीके स्पर्शसे आता जाता है उस अपेक्षासे उत्पाद, पहले-पहलेका मोती छूटता जाता है उस अपेक्षासे व्यय, और मालाके प्रवाहरूपसे प्रत्येक मोतीमें वर्तती हुई माला ध्रौव्य है। इसप्रकार उसमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप त्रिलक्षणपना प्रसिद्धि पाता है। इस प्रकार दृष्टांत कहा, अब सिद्धान्त कहते हैं :—

'मोतीके हारकी भाँति, जिसने नित्यवृत्ति ग्रह की है ऐसे रचित (परिणमित) द्रव्यमें, अपने अपने अवसरोंमें प्रकाशित होते हुए (प्रगट होते हुए) समस्त परिणामोंमें, पीछे-पीछेके परिणाम प्रगट होनेसे और पहले-पहलेके परिणाम प्रगट न होनेसे तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति रचयिता प्रवाह अवस्थित (-स्थायी) होनेसे त्रिलक्षणपना प्रसिद्धि पाता है।

दृष्टान्तमें अमुक लम्बाईवाला हार था, सिद्धान्तमें नित्यवृत्ति-वाला द्रव्य है।

दृष्टान्तमें लटकता हार था; सिद्धान्तमें परिणमन करता हुआ द्रव्य है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दृष्टान्तमें मोतियोंका अपना-अपना स्थान था, सिद्धान्तमें परिणामोंका अपना-अपना अवसर है।

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभाववाला सम्पूर्ण द्रव्य सत् है, उसमें कहीं फेरफार नहीं होता ;—इस प्रकार सम्पूर्ण सत् लक्षमें आये बिना ज्ञानमें धैर्य नहीं होता। जिसे परमें कहीं फेरफार करनेकी बुद्धि है उसका ज्ञान अधीर-आकुल-व्याकुल है और सत् जाननेसे कहीं भी फेरफारकी बुद्धि नहीं रही इसलिये ज्ञान धीर होकर अपनेमें स्थिर हुआ-ज्ञातारूपसे रह गया। ऐसेका ऐसा सम्पूर्ण द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभावसे सत् पड़ा है-इसप्रकार द्रव्य पर दृष्टि जानेसे सम्यक्त्वका उत्पाद और मिथ्यात्वका व्यय हुआ; और तत्पश्चात् भी उस द्रव्यकी सन्मुखतासे क्रमशः वीतरागताकी वृद्धि होती जाती है।—ऐसा धर्म है।

प्रत्येक द्रव्य नित्य-स्थायी है; नित्य-स्थायी द्रव्य लटकते हुए हारकी भांति सदैव परिणमित होता है; उसके परिणाम अपने-अपने अवसरमें प्रकाशित होते हैं। जिसप्रकार मालामें मोतियोंका क्रम निश्चित जमा हुआ है; माला फिरानेसे वह क्रम उल्टा-सीधा नहीं होता। उसी प्रकार द्रव्यके तीनकालके परिणामोंका निश्चित् स्व-अवसर है, द्रव्यके तीनकालके परिणामोंका अपना-अपना जो अवसर है उस अवसरमें ही वे होते हैं; आगे-पीछे नहीं होते। ऐसा निश्चय करते ही ज्ञानमें वीतरागता होती है। यह निश्चित करनेसे अपना वीर्य परसे विमुख होकर द्रव्योन्मुख हो गया, पर्यायमूढ़ता नष्ट हो गई, और द्रव्यकी सन्मुखतासे वीतरागताकी उत्पत्ति होने लगी। सामने-वाले पदार्थके परिणाम उसके अवसरके अनुसार और मेरे परिणाम मेरे अवसरके अनुसार;—ऐसा निश्चित किया इसलिये परमें या स्वमें कहीं भी परिणामके फेरफारकी बुद्धि न रहनेसे ज्ञान ज्ञानमें ही एकाग्रताको प्राप्त होता है। उसीको धर्म और मोक्षमार्ग कहते हैं।

एक ओर केवलज्ञान और सामने द्रव्यके तीनकालके स्व-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अवसर में होनेवाले समस्त परिणाम; इनमें फेरफार होता ही नहीं। लोग भी 'हाथ पर आम नहीं उगते'—ऐसा कहकर वहाँ धैर्य रखनेको कहते हैं; उसी प्रकार 'द्रव्यके परिणाममें फेरफार नहीं होता'—ऐसी वस्तुस्थितिकी प्रतीति करनेसे ज्ञानमें धैर्य आ जाता है। और जहाँ ज्ञान धीर होकर स्वोन्मुख होने लगा वहाँ मोक्षपर्याय होते देर नहीं लगती। इसप्रकार क्रमबद्धपर्यायकी प्रतीतिमें मोक्षमार्ग आ जाता है।

द्रव्यके समस्त परिणाम स्व-अवसरमें प्रकाशित होते हैं, यह सामान्यरूपसे बातकी, उसमें अब उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यको उतारते हैं। द्रव्य जब देखो तब वर्तमान परिणाममें वर्तता है। वर्तमानमें उस कालके जो परिणाम हैं उस कालमें वही प्रकाशित होते हैं—उनके पहलेके परिणाम उस समय प्रकाशित नहीं होते। पहले परिणामके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सिद्ध करते समय 'वर्तमान परिणाम पूर्व-परिणामके व्ययरूप हैं'–ऐसा कहा था, और यहाँ द्रव्यके उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य सिद्ध करनेमें कथनशैलीमें परिवर्तन करके ऐसा कहा कि "वर्तमान परिणाम के समय पूर्वके परिणाम प्रगट नहीं होते;" इसलिये उन पूर्व परिणामों की अपेक्षासे द्रव्य व्ययरूप है। जिस परिणाममें द्रव्य वर्त रहा हो उस परिणामकी अपेक्षा द्रव्य उत्पादरूप है, उसके पूर्वके परिणाम–जो कि इस समय प्रगट नहीं हैं—की अपेक्षासे द्रव्य व्ययरूप है, और समस्त परिणामोंमें अखण्ड बहते हुए द्रव्यके प्रवाहकी अपेक्षासे वह ध्रौव्यरूप हैं, इस प्रकार द्रव्यका त्रिलक्षणपना ज्ञानमें निश्चित् होता है। ऐसा ज्ञेयोंका निर्णय करने वाला ज्ञान स्वमें स्थिर होता है, उसका नाम "तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्" है।

मोतियोंकी माला लेकर जप कर रहा हो, उसमें पहले एक मोती अंगुलीके स्पर्शमें आता है और फिर वह छूटकर दूसरा मोती स्पर्शमें आता है, इस समय पहला मोती स्पर्शमें नहीं आता, इसलिये

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पहले मोतीके स्पर्शकी अपेक्षासे मालाका व्यय हुआ, दूसरे मोती स्पर्शकी अपेक्षा मालाका उत्पाद हुआ, और 'माला' रूपसे प्रवाह चालू रहा इसलिये माला ध्रौव्य रही। इस प्रकार एकके पश्चात् एक—क्रमशः होनेवाले परिणामोंमें वर्तनेवाले द्रव्यमें भी उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य समझना।

कोई कहे कि 'उत्पाद-व्यय तो पर्यायके ही होते हैं और द्रव्य तो ध्रौव्य ही है, उसमें परिणमन नहीं होता।' तो ऐसा नहीं है। द्रव्य एकान्त नित्य नहीं है किन्तु नित्य—अनित्यस्वरूप है, इसलिये परिणाम बदलनेसे उन परिणामोंमे वर्तनेवाला द्रव्य भी परिणमित होता है। यदि परिणामका उत्पाद होनेसे द्रव्य भी नवीन परिणामरूपसे उत्पन्न होता हो तो द्रव्य भूतकालमें रह जायेगा अर्थात् वह वर्तमान-वर्तमान-रूप नहीं वर्त सकेगा, और उसका अभाव ही हो जायेगा। इसलिये परिणामका उत्पाद-व्यय होनेसे द्रव्य भी उत्पाद-व्ययरूप परिणमित होता ही है। द्रव्यके परिणमनके बिना परिणामके उत्पाद-व्यय नहीं होंगे और द्रव्यकी अखण्ड ध्रौव्यता भी निश्चित नहीं होगी; इसलिये द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला ही है। 'पर्यायमें ही उत्पाद-व्यय हैं और द्रव्य तो ध्रौव्य ही रहता है, उसमें उत्पाद-व्यय होते ही नहीं'—ऐसा नहीं है। परिणामके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमें प्रवर्तमान द्रव्य भी एक समयमें त्रिलक्षणवाला है।

अहो! स्व या पर प्रत्येक द्रव्यके परिणाम अपने-अपने कालमें होते हैं। पर-द्रव्यके परिणाम उस द्रव्यके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यसे होते हैं, और मेरे परिणाम मेरे द्रव्यमेंसे क्रमानुसार होते हैं।—ऐसा निश्चित् करनेसे पर द्रव्यके ऊपरसे दृष्टि हट गई और स्वोन्मुख हुआ। अब, स्वमें भी पर्याय परसे दृष्टि हट गई क्योंकि उस पर्यायमेंसे पर्याय प्रगट नहीं होती किन्तु द्रव्यमेंसे पर्याय प्रगट होती है, इसलिये द्रव्य पर दृष्टि गई। उसे त्रिकाली सत्की प्रतीति हुई। ऐसी त्रिकाली सत्की प्रतीति होनेसे द्रव्य अपने परिणाममें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वभावकी धारारूप बहता, और विभावकी धाराका नाश करता हुआ परिणमन करता है। इसलिये द्रव्यको त्रिलक्षण अनुमोदना।

पहले परिणामके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यकी बात की थी, और यहाँ द्रव्यके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यकी बात की है।

द्रव्यकी सत्ता अर्थात् द्रव्यका अस्तित्व उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला है। मात्र उत्पादरूप, व्ययरूप या ध्रौव्यरूप द्रव्यकी सत्ता नहीं है, किन्तु उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य ऐसी तीन लक्षणवाली ही द्रव्यकी सत्ता है। उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य—ऐसी तीन पृथक्-पृथक् सत्तायें नहीं हैं किन्तु वे तीनों मिलकर एक सत्ता है।

पहले तो जो परिणाम उत्पन्न हुए वे अपनी अपेक्षासे उत्पाद-रूप, पूर्वकी अपेक्षासे व्ययरूप और अखण्ड प्रवाहकी अपेक्षासे ध्रौव्य-रूप— ऐसी परिणामकी बात थी; और यहाँ तो अब अन्तिम योगफल निकालकर द्रव्यमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य उतारते हुए ऐसा कहा है कि द्रव्यमें पीछे-पीछेके परिणाम प्रगट होते हैं इससे द्रव्यका उत्पाद है, पहले-पहलेके परिणाम उत्पन्न नहीं होते इसलिये द्रव्य व्ययरूप है, और सर्वपरिणामोंमें अखण्डरूपसे प्रवर्तमान होनेसे द्रव्य ही ध्रौव्य है। इस प्रकार द्रव्यको त्रिलक्षण अनुमोदना।

अहो ! समस्त द्रव्य अपने वर्तमान परिणामरूपसे उत्पन्न होते हैं, पूर्वके परिणाम वर्तमानमें नहीं रहते इसलिये पूर्व परिणामरूपसे व्ययको प्राप्त हैं और अखण्डरूपसे समस्त परिणामोंके प्रवाहमें द्रव्य ध्रौव्यरूपसे वर्तते हैं। बस, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूपसे वर्तते हुए द्रव्य टंकोत्कीर्ण सत् है। ऐसे सत्में कुछ भी आगे-पीछे नहीं होता। अपने ज्ञानमें ऐसे टंकोत्कीर्ण सत्को स्वीकार करनेसे, फेरफार करनेकी बुद्धि तथा 'ऐसा क्यों' ऐसी विस्मयता दूर हुई, उसीमें सम्यक्श्रद्धा और वीतरागता आ गई। इसलिये ज्ञायकपना मोक्षका मार्ग हुआ।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यह 'वस्तुविज्ञान' कहा जा रहा है। पदार्थका जैसा स्वभाव है वैसा ही उसका ज्ञान करना सो पदार्थविज्ञान है। ऐसे पदार्थविज्ञान के बिना कभी शांति नहीं होती। जहाँ, प्रत्येक वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभाववाली है-ऐसा जाना वहाँ वस्तुके भिन्नत्वकी वाड़ बँध गई। मेरे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमें परका अभाव है और परके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमें मेरा अभाव है, मेरे द्रव्य-गुण-पर्यायमें मैं, और पर के द्रव्य-गुण-पर्यायमें पर—ऐसा निश्चित करनेसे परके द्रव्य-गुण-पर्यायका स्वामित्व छोड़कर स्वयं अपने द्रव्य-गुण-पर्यायका रक्षक हुआ अर्थात् ध्रौव्य द्रव्यके आश्रयसे निर्मल पर्यायका उत्पाद होने लगा, वही धर्म है। पहले, परको मैं बदल दूँ—ऐसा मानता था तब पराश्रयबुद्धिसे विकारभावोंको ही उत्पत्ति होती थी और अपने द्रव्य-गुण-पर्यायकी रक्षा नहीं करता था;—इसलिये वह अधर्म था।

आचार्यभगवानने इस गाथामें सत्को उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त बतलाकर अद्भुत बात की है। वर्तमान-वर्तमान समयके परिणामकी यह बात है, क्योंकि सम्पूर्ण द्रव्य वर्तमान परिणाममें साथ ही वर्त रहा है। [यहाँ पूज्य स्वामीजीका आशय यह समझानेका है कि परिणाम और द्रव्य दोनों साथ ही हैं। द्रव्य कभी भी परिणामसे रहित नहीं होता, परिणाम कभी भी द्रव्यसे रहित नहीं होता। परिणाम इस समय हुए और द्रव्य गतकालमें रह जाये ऐसा नहीं होता; और द्रव्य है किन्तु परिणाम नहीं है—ऐसा भी नहीं होता। इसलिये परिणाम और द्रव्य दोनों वर्तमानमें साथ ही हैं-ऐसा समझना] द्रव्यमें स्वकालमें सदैव वर्तमान परिणाम होते हैं; जब देखो तब द्रव्य अपने वर्तमान परिणाममें ही वर्त रहा है; ऐसे वर्तमानमें प्रवर्तमान द्रव्यकी प्रतीति सो वीतरागताका मूल है।

'परिणामका स्व-अवसर' कहा वहाँ परिणामका जो वर्तन है वही उसका अवसर है; अवसर और परिणाम दो पृथक् वस्तुयें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं हैं। जिसका जो अवसर है उस समय वही परिणाम वर्तता है, उस परिणाममें वर्तता हुआ द्रव्य उत्पादरूप है, उससे पूर्वके परिणाममें द्रव्य नहीं वर्तता इससे वह व्ययरूप है और सर्वत्र अखण्डपनेकी अपेक्षासे द्रव्य ध्रौव्य है। इस प्रकार उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप त्रिलक्षणपना प्रसिद्धि पाता है।

जीव और अजीव समस्त द्रव्य और उनके अनादि-अनन्त परिणाम सत् हैं, वह सत् स्वयंसिद्ध है, उसका कोई दूसरा रचयिता या परिणमन करानेवाला नहीं है। जिसप्रकार कोई द्रव्य अपना स्वरूप छोड़कर अन्यरूप नहीं होता, उसी प्रकार द्रव्यके कोई परिणाम भी आगे-पीछे नहीं होते। द्रव्यमें अपने कालमें प्रत्येक परिणाम उत्पन्न होता है, पूर्वके परिणाम उत्पन्न नहीं होते और द्रव्य अखण्ड धारारूप बना रहता है।—ऐसे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभाववाले द्रव्यको जाननेसे, अपने ज्ञायकस्वभावकी प्रतीति होती है, और उस ज्ञायकस्वभावकी सन्मुखतासे भगवान आत्मा स्वभावधारामें बहता है, विभावधारासे व्ययको प्राप्त होता है; और उस प्रवाहमें स्वयं अखण्डरूपसे ध्रुव रहता है; इस प्रकार वीतरागता होकर केवलज्ञान और मुक्ति होती है।

अहो! मुक्तिके कारणभूत ऐसा लोकोत्तर वस्तुविज्ञान समझानेवाले संतोंको शत-शत वंदन हो!

[गाथा ९९ टीका समाप्त]

भव्य श्रोताजनोंको तत्कालबोधक भगवान
श्रीगुरुवाणी माताकी जय हो!

❀

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पदार्थका परिणामस्वभाव

❀ प्रवचनसार गाथा ९९ भावार्थ ❀

'प्रत्येक द्रव्य सदैव स्वभावमें रहता है इसलिये 'सत्' है। वह स्वभाव उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप परिणाम है।' प्रत्येक वस्तु तीनोंकाल अपने स्वभावमें अर्थात् अपने परिणाममें रहती है। सुवर्ण अपने कुण्डल, हार आदि परिणाममें वर्तता है; कुण्डल, हार आदि परिणामोंसे सुवर्ण पृथक् नहीं वर्तता। उसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ अपने वर्तमान वर्तते हुए परिणाममें बर्तता है, अपने परिणामसे पृथक् कोई द्रव्य नहीं रहता। कोई भी पदार्थ अपने परिणामस्वभावका उल्लंघन करके परके परिणामका स्पर्श नहीं करता, और परवस्तु उसके परिणामका उल्लंघन करके अपनेको स्पर्श नहीं करती। प्रत्येक वस्तु भिन्न-भिन्न अपने-अपने परिणाममें ही रहती है। आत्मा अपने ज्ञान या रागादि परिणाममें स्थित है, किन्तु शरीरकी अवस्थामें आत्मा विद्यमान नहीं हैं। शरीरकी अवस्थामें पुद्गल विद्यमान है। शरीरके अनन्त रजकणोंमें भी वास्तवमें प्रत्येक रजकण भिन्न-भिन्न अपनी अपनी अवस्थामें विद्यमान है। ऐसा वस्तुस्वभाव देखनेवालेको परमें कहीं भी एकत्वबुद्धि नहीं होती और पर्यायबुद्धिके राग-द्वेष नहीं होते।

आत्मा और प्रत्येक पदार्थ प्रतिसमय अपनी नई अवस्थारूप उत्पन्न होता है, पुरानी अवस्थारूपसे व्ययको प्राप्त होता है और अखण्ड वस्तुरूपसे ध्रौव्य रहता है। प्रत्येक समयके परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सहित हैं—ऐसे परिणाम सो स्वभाव हैं और वस्तु स्वभाववान् है। स्वभाववान्-द्रव्य अपने परिणामस्वभावमें स्थित है। कोई भी वस्तु अपना स्वभाव छोड़कर दूसरेके स्वभावमें वर्ते अथवा तो दूसरेके स्वभावको करे-ऐसा कभी नहीं होता। शरीरकी जो अवस्थायें हैं वे पुद्गलके परिणाम हैं, उनमें पुद्गल वर्तते हैं, आत्मा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उनमें नहीं वर्तता; तथापि आत्मा उस शरीरकी अवस्थामें कुछ करता है—ऐसा जिसने माना उसकी मान्यता मिथ्या है। जिस प्रकार अफीमकी कड़वाहट आदिके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपरिणाममें अफीम ही विद्यमान है, उसमें कहीं गुड़ विद्यमान नहीं है, और गुड़के मिठास आदिके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपरिणाममें गुड़ ही विद्यमान है, उसमें कहीं अफीम विद्यमान नहीं है। उसी प्रकार आत्माके ज्ञान आदिके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपरिणामस्वभावमें आत्मा विद्यमान है, उनमें कहीं इन्द्रियाँ या शरीरादि विद्यमान नहीं हैं; इसलिये उनसे आत्मा ज्ञात नहीं होता और पुद्गलके शरीर आदिके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपरिणामस्वभावमें पुद्गल ही विद्यमान है, उनमें कहीं आत्मा विद्यमान नहीं है; इसलिये आत्मा शरीरादिकी क्रिया नहीं करता। इस प्रकार प्रत्येक पदार्थ अपने अपने स्वभावमें ही विद्यमान है। बस, ऐसे पदार्थके स्वभावको जानना सो वीतरागी विज्ञान है, उसीमें धर्म आता है।

प्रत्येक पदार्थकी मर्यादा—सीमा अपने-अपने स्वभावमें रहनेकी है; अपने स्वभावकी सीमासे बाहर निकलकर परमें कुछ करे—ऐसी किसी पदार्थकी शक्ति नहीं है।—ऐसी वस्तुस्थिति हो तभी प्रत्येक तत्त्व अपने स्वतंत्र अस्तित्वरूपसे रह सकता है। यही बात अस्ति-नास्तिरूप अनेकान्तसे कही जाये तो, प्रत्येक पदार्थ अपने स्वचतुष्टयसे (द्रव्य-क्षेत्र-काल और भावसे) अस्तिरूप है, और परके चतुष्टयसे वह नास्तिरूप है। इस प्रकार प्रत्येक तत्त्व भिन्न-भिन्न स्थित है—ऐसा निश्चित् करनेसे स्वतत्त्वको परतत्त्वसे भिन्न जाना, और अपने स्वभावमें प्रवर्तमान स्वभाववान् द्रव्यकी दृष्टि हुई; यही सम्यक्रुचि, सम्यक्ज्ञान और वीतरागताका कारण है।

जैसी वस्तु हो उसे वैसा ही जानना सो सम्यग्ज्ञान है। जिस प्रकार लौकिकमें गुड़को गुड़ जाने और अफीमको अफीम जाने तो गुड़ और अफीमका सच्चा ज्ञान है, किन्तु यदि गुड़को अफीम जाने

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

या अफीमको गुड़ जाने तो वह मिथ्याज्ञान है। उसी प्रकार जगतके पदार्थोंमें जड़-चेतन प्रत्येक पदार्थ स्वयं अपने उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-स्वभावसे स्थित है—ऐसा जानना सो सम्यक्ज्ञान है, और एक पदार्थमें दूसरे पदार्थके कारण कुछ होता है—ऐसा माने तो वह मिथ्याज्ञान है; उसने पदार्थके स्वभावको जैसा है वैसा नहीं जाना, किन्तु विपरीत माना है।

आत्माका 'ज्ञायक' स्वभाव है और पदार्थोंका 'ज्ञेय' स्वभाव है; पदार्थोंमें फेरफार-आगेपीछे हो ऐसा उनका स्वभाव नहीं है; और उनके स्वभावमें कुछ फेरफार करे ऐसा ज्ञानका स्वभाव नहीं है। जिस प्रकार आँख अफीमको अफीमरूपसे और गुड़को गुड़रूपसे देखती है; किन्तु अफीमको बदलकर गुड़ नहीं बनाती और गुड़को बदलकर अफीम नहीं बनाती; और वह अफीम भी अपना स्वभाव छोड़कर गुड़रूप नहीं होती तथा गुड़ भी अपना स्वभाव छोड़कर अफीम-रूप नहीं होता। उसी प्रकार आत्माका ज्ञानस्वभाव समस्त स्व-पर ज्ञेयोंको यथावत् जानता है, किन्तु उनमें कहीं कुछ भी फेरफार नहीं करता। और ज्ञेय भी अपने स्वभावको छोड़कर अन्यरूप नहीं होते। बस, ज्ञान और ज्ञेयके ऐसे स्वभावकी प्रतीति सो वीतरागी श्रद्धा है, ऐसा ज्ञान सो वीतरागी विज्ञान है।

स्वतंत्र ज्ञेयोंको यथावत् जानना सो सम्यक्ज्ञानकी क्रिया है। ज्ञान क्या कार्य करता है?—जाननेका कार्य करता है। इसके अतिरिक्त कहीं फेरफार करनेका कार्य ज्ञान नहीं करता। प्रत्येक पदार्थ स्वयंसिद्ध सत् है, और उसमें पर्यायधर्म है; वे पर्यायें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभाववाली हैं। इसलिये पदार्थमें प्रतिसमय पर्यायके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होते हैं उनमें वह पदार्थ वर्त रहा है। इस प्रकार स्वतंत्रताको न जाने तो उसने द्रव्यकी स्वतंत्रताको भी नहीं जाना है; क्योंकि 'सत्' अपने परिणाममें वर्तता हुआ स्थित है यदि वस्तु स्वयं स्थित रहनेके लिये दूसरेके परिणामका आश्रय माँगे तो वह वस्तु ही 'सत्'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं रहती। 'सत्'का स्वभाव अपने ही परिणाममें प्रवर्तन करनेका है। सत् स्वयं उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक है। सत्के अपने परिणामका उत्पाद यदि दूसरेसे होता हो तो वह स्वयं 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त सत्' ही नहीं रहता। इसलिये उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त सत् है—ऐसा मानते ही परिणामकी स्वतंत्रताकी स्वीकृति तो आ ही गई। और, परिणाम परिणाममेंसे नहीं, किन्तु परिणामी (द्रव्य)मेंसे आते हैं इसलिये उसकी दृष्टि परिणामी पर गई, वह स्व-द्रव्यके सन्मुख हुआ, स्व-द्रव्यकी सन्मुखतामें सम्यक्श्रद्धा-ज्ञान-चारित्रकी उत्पत्ति होती है, वह मोक्षका कारण है।

प्रश्न:—सोना और ताँबा—दोनोंका मिश्रण होने पर तो वे एक-दूसरेमें एकमेक हो गये हैं न ?

उत्तर :—भाई ! वस्तुस्थितिको समझो। सोना और ताँबा कभी एकमेक होते ही नहीं। संयोगदृष्टिसे सोना और ताँबा एकमेक हुए ऐसा कहा जाता है, किन्तु पदार्थके स्वभावकी दृष्टिसे तो सोना और ताँबा कभी एकमेक हुए हो नहीं हैं, क्योंकि जो सोनेके रजकण हैं वे अपने सुवर्ण-परिणाममें ही वर्तते हैं और जो ताँबेके रजकण हैं वे अपने ताँबा-परिणाममें ही वर्तते हैं; एक रजकण दूसरे रजकणके परिणाममें नहीं वर्तता। सोनेके दो रजकणोंमेंसे भी उसका एक रजकण दूसरेमें नहीं वर्तता। यदि एक पदार्थ दूसरेमें और दूसरा तीसरेमें मिल जाये, तब तो जगतमें कोई स्वतंत्र वस्तु ही न रहे। सोना और ताँबा 'मिश्र हुआ' ऐसा कहनेसे भी उन दोनोंकी भिन्नता ही सिद्ध होती है, क्योंकि 'मिश्रण' दो का होता है, एकमें 'मिश्रण' नहीं कहलाता। इसलिये मिश्रण कहते ही पदार्थोंका भिन्न-भिन्न अस्तित्व सिद्ध हो जाता है।

प्रत्येक वस्तु अपने स्वभावरूपसे सत् रहती है, दूसरा कोई विपरीत माने तो उससे कहीं वस्तुका स्वभाव बदल नहीं जाता। कोई

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अफीमको गुड़ मान तो उससे कहीं अफीमकी कड़वाहट दूर नहीं हो जायेगी; अफीमको गुड़ मानकर खाये तो उसे कड़वाहटका ही अनुभव होगा। उसी प्रकार तत्त्वको जैसाका तैसा स्वतन्त्र न मानकर परके आधारसे स्थित माने तो, कहीं वस्तु तो पराधीन नहीं हो जाती, किन्तु उसने सत्को विपरीत माना इसलिये उसका ज्ञान मिथ्या होता है; और उस मिथ्याज्ञानके फलमें उसे चौरासीका अवतार होता है। कोई जीव पुण्यका शुभराग करके ऐसा माने कि मैं धर्म करता हूँ, तो कहीं उसे रागसे धर्म नहीं होगा, किन्तु उसने वस्तुस्वरूपको विपरीत जाना है, इसलिये उस अज्ञानके फलमें उसे चौरासीके अवतारमें परिभ्रमण करना पड़ेगा।

परिणाम स्वभाव है और स्वभाववान् द्रव्य है;—ऐसा जानकर स्वभाववान् द्रव्यकी रुचि होते ही सम्यक्त्वका उत्पाद, उसी समय मिथ्यात्वका व्यय और अखण्डरूपसे आत्माकी ध्रुवता है।

प्रत्येक वस्तु 'सत्' है, 'सत्' त्रिकाल स्वयंसिद्ध है। यदि सत् त्रिकाली न हो तो वह असत् सिद्ध होगा। किन्तु वस्तु कभी असत् नहीं होती। वस्तु त्रिकाल है इसलिये उसका कोई कर्ता नहीं है, क्योंकि त्रिकालीका रचयिता नहीं होता। यदि रचयिता कहो तो उससे पूर्व वस्तु नहीं थी–ऐसा सिद्ध होगा, अर्थात् वस्तुका नित्य-पना नहीं रहेगा। वस्तु त्रिकाली सत् है, और वह वस्तु परिणाम-स्वभाववाली है; त्रिकाली द्रव्य ही अपने तीनोंकालके वर्तमान-वर्तमान परिणामोंकी रचना करता है, वे परिणाम भी स्व-अवसर में सत् हैं, इसलिये उन परिणामोंका रचयिता भी दूसरा कोई नहीं है। जिस प्रकार त्रिकाली द्रव्यका कर्ता कोई-ईश्वर आदि-नहीं है, उसी प्रकार उस त्रिकाली द्रव्यके वर्तमान परिणामका कर्ता भी कोई दूसरा (निमित्त, कर्म या जीव आदि) नहीं है। अपने प्रत्येक समयके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमें स्थित रहता है इसलिये द्रव्य सत् है। यदि द्रव्य दूसरेके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यका अवलम्बन करे तो वह स्वयं सत् नहीं रह सकता। इसलिये जो जीव द्रव्यको यथार्थतया 'सत्'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जानता हो वह द्रव्यका या द्रव्यकी किसी पर्यायका कर्ता दूसरे को नहीं मानता; द्रव्यका या द्रव्यकी किसी पर्यायका कर्ता दूसरेको माने उस जीवने वास्तवमें 'सत्' को नहीं जाना है।

अहो ! वस्तुके सत् स्वभावको जाने बिना बाह्य क्रियाकाण्डके लक्षसे अनन्तकाल बिता दिया, किन्तु वस्तुका स्वभाव सत् है उसे नहीं जाना इसलिये जीव संसारमें परिभ्रमण कर रहा है।

वस्तु परिणाममें परिणमन करती है, वह परिणामसे पृथक् नहीं रहती। प्रत्येक समयके परिणामके समय सम्पूर्ण वस्तु साथमें वर्त रही —ऐसा जाने तो अपनेको क्षणिक राग जितना मानकर उस समय सम्पूर्ण वस्तु रागरहित विद्यमान है—उसका विश्वास करे; इससे रागकी रुचिका बल टूटकर सम्पूर्ण वस्तु पर रुचिका बल ढला, अर्थात् सम्यक्रुचि उत्पन्न हुई; राग और आत्माका भेदज्ञान हुआ। मैं परमें नहीं वर्तता, मेरे परिणाममें पर वस्तु नहीं वर्तती, किन्तु मैं अपने परिणाममें ही वर्तता हूँ; —इस प्रकार परिणाम और परिणामीकी स्वतंत्रता जाननेसे रुचि परमें नहीं जाती, परिणाम पर भी नहीं रहती, किन्तु परिणामी द्रव्यमें प्रविष्ट हो जाती है, अर्थात् सम्यक्रुचि होती है।

'वस्तु परिणाममें वर्तती है।' बस ! ऐसा निश्चित् करनेमें पर्यायबुद्धि दूर होकर वस्तुदृष्टि हो जाती है; उसीमें वीतरागता विद्यमान है। मेरी भविष्यकी केवलज्ञानपर्यायमें भी यह द्रव्य ही वर्तेगा; —इसलिये भविष्यकी केवलज्ञानपर्यायको देखना नहीं रहा, किन्तु द्रव्यसन्मुख ही देखना रहा। द्रव्यकी सन्मुखतामें अल्पकालमें केवलज्ञान हुए बिना नहीं रहता।

अहो ! मैं अपने परिणामस्वभावमें हूँ, परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप है, उसीमें आत्मद्रव्य वर्तता है—इस प्रकार स्ववस्तुकी दृष्टि होनेसे परसे लाभ-हानि माननेका मिथ्याभाव नहीं रहा, वहाँ सम्यग्ज्ञान पर्यायरूपसे उत्पाद है, मिथ्याज्ञान पर्यायरूपसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

व्यय है और ज्ञानमें अखण्ड परिणामरूपसे ध्रौव्यता है। इस प्रकार इसमें धर्म आता है।

'परिणामीके परिणाम हैं'—ऐसा न मानकर जिसने परके कारण परिणामोंको माना उसने परिणामीको दृष्टिमें नहीं लिया, किन्तु अपने परिणामको पर करता है—ऐसा माना इसलिये स्व-परको एक माना; इसलिये वह मिथ्यादृष्टि है। परिणाम परिणामीके हैं—इस प्रकार परिणाम और परिणामीकी रुचिमें स्वद्रव्यकी सम्यक्-रुचि उत्पन्न होकर मिथ्यारुचिका नाश हो जाता है।

देखो, यह वस्तुस्थितिका वर्णन है। जैनदर्शन कोई वाड़ा या कल्पना नहीं है किन्तु वस्तुयें जिस स्वभावसे हैं वैसी सर्वज्ञ भगवानने देखी हैं, और वही जैनदर्शनमें कही हैं। जैनदर्शन कहो या वस्तुका स्वभाव कहो।—उसका ज्ञान कर तो तेरा ज्ञान सच्चा होगा और भवका परिभ्रमण दूर होगा। यदि वस्तुके स्वभावको विपरीत मानेगा तो असत् वस्तुकी मान्यतासे तेरा ज्ञान मिथ्या होगा और परिभ्रमणका अंत नहीं आयेगा; क्योंकि मिथ्यात्व ही सबसे महान पाप माना गया है; वही अनन्त संसारका मूल है।

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त परिणाम है वह स्वभाव है, और स्वभाव है वह स्वभाववान्के कारण है।—इस प्रकार स्वभाव और स्वभाववान्को दृष्टिमें लेनेसे, परके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यको मैं करूँ या मेरे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यको पर करे यह बात नहीं रहती, इसलिये स्वयं अपने स्वभाववान्की ओर उन्मुख होकर सम्यग्ज्ञान हो जाता है, उसीमें धर्म आ गया। लोगोंने बाह्यमें धर्म मान रखा है, किन्तु वस्तुस्थिति अंतरकी है। लोगोंके माने हुए धर्ममें और वस्तु-स्थितिमें पूर्व-पश्चिम दिशा जितना अंतर है।

'वस्तु' उसे कहते हैं जो अपने गुण-पर्यायमें वास करे; अपने गुण-पर्यायसे बाहर वस्तु कुछ नहीं करती, और न वस्तुके गुण-पर्यायको कोई दूसरा करता है। ऐसे भिन्न-भिन्न तत्त्वार्थका श्रद्धान

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सो सम्यग्दर्शन है। प्रथम सम्यग्दर्शन होता है, तत्पश्चात् श्रावक और मुनिके व्रतादि होते हैं। सम्यग्दर्शनके बिना व्रतादि माने वह तो 'राख पर लीपन' मानना है। आत्माकी प्रतीति हुए बिना कहाँ रहकर व्रतादि करेगा ?

जिस प्रकार गाडीके नीचे चलने वाला कुत्ता मानता है कि—गाड़ी मेरे कारण चल रही है; किन्तु गाड़ीके परिणाममें उसका प्रत्येक परमाणु वर्त रहा है, और कुत्तेके रागादि परिणाममें कुत्ता है; गाड़ी और कुत्ता—कोई एक-दूसरेके परिणाममें नहीं वर्तते। तथापि कुत्ता व्यर्थ मानता है कि 'मुझसे गाड़ी चल रही है।' उसी प्रकार पर वस्तुके परिणाम स्वयं उसके अपनेसे होते हैं; उसे देखकर अज्ञानी जीव व्यर्थ ही ऐसा मानता है कि परके परिणाम मुझसे होते हैं। किन्तु ऐसा नहीं होता। प्रत्येक तत्त्वके परिणाम सत् हैं, उसमें कोई दूसरा क्या करेगा ? ऐसा स्वतंत्र वस्तुका स्वभाव है, वही सर्वज्ञ भगवानने ज्ञानमें देखा है। कहीं भगवानने देखा इसलिये वस्तुका ऐसा स्वभाव है—ऐसा नहीं है, और ऐसा वस्तुका स्वभाव है इसलिये भगवानको उसका ज्ञान हुआ ऐसा भी नहीं है। ज्ञेय वस्तुका स्वभाव सत् है, और ज्ञान भी सत् है। प्रथम ऐसे सत्स्वभावको समझो ! जो ऐसे स्वभावको समझले उसीने वस्तुको वस्तुरूपसे जाना है—ऐसा कहा जाये।

कर्म-परिणाममें पुद्गल वर्तते हैं और आत्माके परिणाममें आत्मा वर्तता है; कोई एक-दूसरेके परिणाममें नहीं वर्तते; इसलिये कर्म आत्माको परिभ्रमण नहीं कराते। अपने स्वतंत्र परिणामको न जानकर, कर्म मुझे परिभ्रमण कराते हैं—ऐसा माना है उस विपरीत मान्यतासे ही जीव भटक रहा है, किन्तु कर्मोंने उसे नहीं भटकाया। उस परिभ्रमणके परिणाममें आत्मा वर्त रहा है। प्रति समय उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होनेका प्रत्येक वस्तुका स्वभाव है—यह समझे तो परिणामी द्रव्य पर दृष्टि जाती है, और द्रव्यदृष्टिमें सम्यक्त्व और वीतरागताका उत्पाद होता है, यह धर्म है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यदि द्रव्यके एक समयका सत् दूसरेसे हो तो उस द्रव्यका वर्तमान सत्पना नहीं रहता; और वर्तमान सत्का नाश होनेसे त्रिकाली सत्का भी नाश हो जाता है अर्थात् वर्तमान परिणामको स्वतन्त्र सत् माने बिना त्रिकाली द्रव्यका सत्पना सिद्ध नहीं होता; इसलिये द्रव्यका वर्तमान दूसरेसे (-निमित्तसे) होता है—इस मान्यतामें मिथ्यात्व होता है, उसमें सत्का स्वीकार नहीं आता। सत्का नाश नहीं होता किन्तु जिसने सत्को विपरीत माना है उसकी मान्यतामें सत्का अभाव होता है। त्रिकाली सत् स्वतन्त्र, किसीके बनाये बिना है, और प्रत्येक समयका वर्तमान सत् भी स्वतन्त्र किसीके बनाये बिना है। ऐसे स्वतन्त्र सत्को विपरीत-पराधीन मानना सो मिथ्यात्व है, वही महान अधर्म है। लोग काला बाजार आदिमें तो अधर्म मानते हैं, किन्तु विपरीत मान्यतासे सम्पूर्ण वस्तुस्वरूपका घात कर डालते हैं उस विपरीत मान्यताके पापकी खबर नहीं है। मिथ्यात्व तो धर्मका महान काला बाजार है, उस काले बाजारसे चौरासीके अवतारकी जेल है। सत्को जैसे का तैसा माने तो मिथ्यात्वरूपी काले बाजारका महान पाप दूर हो जाये और सच्चा धर्म हो। इसलिये सर्वज्ञदेव कथित वस्तुस्वभावको बराबर समझना चाहिये।

❀

अहो ! वीतरागी तात्पर्य

प्रत्येक द्रव्य सदैव स्वभावमें रहता है इसलिये वह 'सत्' है। वस्तु अपने परिणाममें वर्तमान रहती हो तभी सत् रहे न ? यदि वर्तमान परिणाममें न रहती हो तो वस्तु 'सत्' किस प्रकार रहे ? उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला परिणाम वह वस्तुका स्वभाव है, और उस वर्तमान परिणाममें वस्तु निरन्तर वर्त रही है, उससे वह सत् है।

आत्माका क्षेत्र असंख्यप्रदेशी एक है, और उस क्षेत्रका छोटेसे छोटा अंश सो प्रदेश है। उसी प्रकार संपूर्ण द्रव्यकी प्रवाहधारा एक है, और उस प्रवाहधाराका छोटेसे छोटा अंश सो परिणाम है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

क्षेत्र अपेक्षासे द्रव्यका सूक्ष्म अंश सो प्रदेश है।

काल अपेक्षासे द्रव्यका सूक्ष्म अंश सो परिणाम है।

यह तो ज्ञायकस्वभावकी दृष्टि करानेके लिये वर्णन है। परिणाम परिणामीमेंसे आता है,—ऐसे परिणामी द्रव्यकी दृष्टि कर तो उस परिणामीके आश्रयसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रपरिणाम उत्पन्न हो, स्थिर रहे और बढ़कर पूर्ण हो।

प्रत्येक परिणाम अपने स्वकालमें उत्पन्न होता है, पूर्व परिणामसे व्ययरूप है और अखण्डप्रवाहमें वह ध्रौव्य है। केवलज्ञान-परिणाम अपने स्वरूपकी अपेक्षासे स्वकालमें उत्पादरूप है, पूर्वकी अल्पज्ञ पर्याय अपेक्षासे वह व्ययरूप है, और द्रव्यके अखण्डप्रवाहमें तो वह केवलज्ञानपरिणाम ध्रौव्य है; इस प्रकार समस्त परिणाम अपने-अपने वर्तमान कालमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाले हैं, और उन-उन वर्तमान परिणामोंमें वस्तु वर्त रही है, अर्थात् वस्तु वर्तमानमें ही पूर्ण है। ऐसी वस्तुकी दृष्टि कर तो उसके आश्रयसे धर्म होता है। ज्ञानी केवलज्ञान पर्यायके कालको नहीं ढूँढ़ते (उस पर दृष्टि नहीं रखते), क्योंकि वह पर्याय इस समय तो सत् नहीं है, किन्तु भविष्यमें अपने स्वकालमें वह सत् है; इसलिये ज्ञानी तो वर्तमानमें सत्-ऐसे ध्रुव द्रव्यको ही ढूँढ़ते हैं-(ध्रुव पर दृष्टि रखते हैं।) इस अपेक्षासे नियमसारमें उदय-उपशम-क्षयोपशम और क्षायिक—इन चारों भावोंको विभावभाव कहा है। जो पर्याय वर्तमान उत्पाद-रूपसे वर्तती है वह तो अंश है; केवलज्ञान पर्याय भी अंश है;—वह वर्तमान प्रगट नहीं है और भविष्यमें प्रगट होगी—इस प्रकार परिणामके काल पर देखते नहीं रहना किन्तु वर्तमान परिणामके समय ध्रुवरूपसे संपूर्ण द्रव्य वर्त रहा है उस द्रव्यकी प्रतीति करना इसमें आता है; द्रव्यकी दृष्टि होनेमें वीतरागता होती है। शास्त्रोंका तात्पर्य वीतरागता है; वीतरागताको तात्पर्य कहनेसे स्वभावकी दृष्टि करनेका ही तात्पर्य है—ऐसा आया; क्योंकि वीतरागता तो स्वभाव-की दृष्टिसे होती है। अन्तरमें द्रव्यस्वभाव पर लक्ष रहनेसे वीत-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रागता हो जाती है; इससे ध्रुव द्रव्यस्वभावकी दृष्टि ही कार्यकारी हुई। पर्यायको ढूँढना नहीं रहा अर्थात् पर्यायकी दृष्टि नहीं रही। ध्रुवस्वभावकी दृष्टि रखकर पर्यायका ज्ञाता रहा, उसमें वीतरागता होती जाती है।

वीतरागता ही तात्पर्य है, किन्तु वह वीतरागता कैसे हो? वीतरागपर्यायको शोधनेसे (उस पर्यायके सन्मुख देखनेसे) वीतरागता नहीं होती किन्तु ध्रुवतत्त्वके आश्रयमें रहनेसे पर्यायमें वीतरागतारूप तात्पर्य हो जाता है। इसप्रकार द्रव्य पर दृष्टि होनेमें ही तात्पर्य आ जाता है। इसलिये, शास्त्रोंका तात्पर्य वीतरागता है—ऐसा कहो, या शास्त्रका तात्पर्य स्वभावदृष्टि है—ऐसा कहो, दोनों एक ही हैं। श्रीमद् राजचन्द्रजीने कहा है कि :—

'जिनपद निजपद एकता, भेदभाव नहि कांई;
लक्ष थवाने तेहनो कह्यां शास्त्र सुखदाई।'

जैसा भगवानका आत्मा, वैसा ही अपना आत्मा, उसके स्वभावमें कोई भेद नहीं है। ऐसे स्वभावका लक्ष करना ही शास्त्रोंका सार है।

यहाँ परिणामोंके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यकी बात चल रही है, उसमेंसे वीतरागी तात्पर्य किस प्रकार निकलता है वह बतलाया है। परिणामोंकी ध्रौव्यता तो अखण्डप्रवाह अपेक्षासे है। अब, परिणामोंका प्रवाहक्रम एकसाथ तो वर्तता नहीं हैं, इसलिये परिणामोंकी ध्रौव्यता निश्चित करते हुए ध्रुवस्वभाव पर दृष्टि जाती है। ध्रुव स्वभावकी दृष्टि बिना परिणामके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य निश्चित नहीं हो सकते। परिणामको ध्रौव्य कब कहा?—परिणामोंके सम्पूर्ण प्रवाहकी अपेक्षासे उसे ध्रौव्य कहा है; सम्पूर्ण प्रवाह एक समयमें प्रगट नहीं हो जाता इसलिये परिणामको ध्रौव्यता निश्चित् करनेवालेकी दृष्टि एक-एक परिणामके ऊपरसे हटकर ध्रुव द्रव्य पर गई। परिणामके ऊपरकी दृष्टिसे (पर्यायदृष्टिसे) परिणामकी ध्रौव्यता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निश्चित नहीं होती। परिणामोंका अखण्ड प्रवाह कहीं एक ही परिणाममें तो नहीं है, इसलिये अखण्डकी—त्रिकाली ध्रौव्यकी—ध्रुव-स्वभावकी दृष्टि हुए बिना परिणामके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य भी ख्यालमें नहीं आ सकते।

वस्तु एक समयमें पूर्ण है; उसके परिणाममें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपना है। वह उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपना निश्चित् करनेसे द्रव्य पर ही दृष्टि जाती है। वर्तमानपरिणामसे उत्पाद है, पूर्वपरिणामसे व्यय है, और अखण्डप्रवाहकी अपेक्षासे ध्रौव्य है। इसलिये अखण्डप्रवाहकी दृष्टिमें ही ध्रुवस्वभाव पर दृष्टि गई, और तभी परिणामके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य निश्चित् हुए।

इसमें पुरुषार्थ कहाँ काम करता है;—ऐसा निश्चित् किया वहाँ पुरुषार्थ द्रव्यसन्मुख ही कार्य करने लगा, और वीतरागता ही होने लगी। परिणाम अपने स्वकालमें होते हैं वे तो होते ही रहते हैं; किन्तु वैसा निश्चित करनेवालेकी दृष्टि ध्रुव पर पड़ी है। ध्रौव्य-दृष्टि हुए बिना यह बात नहीं जम सकती।

इस ज्ञेय-अधिकारमें मात्र पर-प्रकाशककी बात नहीं है परन्तु स्वसन्मुख स्व-प्रकाशकपने सहित पर-प्रकाशककी बात है। जहाँ अपने ध्रुवस्वभावकी सन्मुखतामें स्व-प्रकाशक हुआ वहाँ सम्पूर्ण जगतके समस्त पदार्थ भी ऐसे ही हैं—ऐसा पर-प्रकाशकपना ज्ञानमें विकसित हो ही जाता है। द्रव्य भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक है। वे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य कब निश्चित होते हैं? ज्ञायक चैतन्यद्रव्यकी रुचि तथा उस ओर उन्मुखता होनेसे सब निश्चित हो जाता है, जिस प्रकार स्वके ज्ञानसहित ही परका सच्चा ज्ञान होता है, उसी प्रकार ध्रुवकी दृष्टिसे ही उत्पाद-व्ययका सच्चा ज्ञान होता है।

वस्तुस्वरूप ऐसा है कि कहीं परके ऊपर तो देखना नहीं है; और मात्र अपनी पर्यायसन्मुख भी देखना नहीं है; विकल्पको दूर करके निर्विकल्पता करूँ—ऐसे लक्षसे निर्विकल्पता नहीं होती किन्तु ध्रुवके लक्षसे निर्विकल्पता हो जाती है; इसलिये पर्यायके उत्पाद-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

व्ययके सन्मुख भी देखना नहीं है। पर्यायोंके प्रवाह-क्रममें द्रव्य वर्त रहा है। किसी पर्यायके समय सम्पूर्ण द्रव्य नहीं है ?—जब देखो तब द्रव्य वर्तमानमें परिपूर्ण है; ऐसे द्रव्यकी सन्मुखता होनेसे प्रवाह-क्रम निश्चित् होता है। फिर उस प्रवाहका क्रम बदलनेकी बुद्धि नहीं रहती, किन्तु ज्ञातापनेका अभिप्राय रहता है। वहाँ वह प्रवाह-क्रम ऐसेका ऐसा रह जाता है और द्रव्यदृष्टि हो जाती है। उस द्रव्यदृष्टिमें क्रमशः वीतरागी परिणामोंका ही प्रवाह निकलता रहेगा। ऐसा इस ९९ वीं गाथाका सार है।

अहो ! अपार वस्तु है; केवलज्ञानका कोठार भरा है। इसमेंसे जितना रहस्य निकालो उतना निकल सकता है। भीतर दृष्टि करे तो पार आ सकता है।

अहो ! आचार्यभगवानने अमृतके ढक्कन खोल दिये हैं,—अमृतका प्रवाह बहा दिया है।

(१) सामान्यमेंसे विशेष होता है ऐसा कहो,

(२) वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त है ऐसा कहो, अथवा

(३) द्रव्यमेंसे क्रमबद्धपर्यायकी प्रवाहधारा बहती है, ऐसा कहो; इसका निर्णय करनेमें ध्रुवस्वभाव पर ही दृष्टि जाती है। ध्रुवस्वभाव-की रुचिमें ही सम्यक्त्व और वीतरागता होती है। यह तो अंतरंग रुचिकी और अन्तरदृष्टिकी वस्तु है, मात्र शास्त्रकी, पंडिताईकी यह वस्तु नहीं है।

यह, वस्तुके समय-समयके परिणाममें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यकी सूक्ष्म बात है। कुंभार घड़ा नहीं बनाता और कर्म जीवको विकार नहीं कराते—यह तो ठीक, किन्तु यह तो उससे भी सूक्ष्म बात है। सर्वज्ञतामें ज्ञाता हुआ वस्तुस्वभावका एकदम सूक्ष्म नियम यहाँ बतला दिया है। मिट्टी स्वयं पिण्डदशाका नाश होकर घटपर्यायरूप उत्पन्न होती है और मिट्टीपनेके प्रवाहकी अपेक्षा वह ध्रौव्य है; उसी प्रकार समस्त पदार्थ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभाववाले हैं।—

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ऐसा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभाव समझनेसे अपनेको पर-सन्मुख देखना नहीं रहता; क्योंकि परके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यको स्वयं नहीं करता और अपने उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य परसे नहीं होते, इसलिये अपने उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यके लिये कहीं परसन्मुख देखना नहीं रहता किन्तु स्वसन्मुख देखना ही रहता है। अब, स्वयं अपने परिणामोंको देखते हुए ज्ञान अन्तरमें परिणामी स्वभावकी ओर उन्मुख होता है, और उस परिणामीके आधारसे वीतरागी परिणामका प्रवाह निकलता रहता है। इस प्रकार ध्रुवके आश्रयसे वीतरागी परिणामका प्रवाह निकलता रहता है।—उसकी यह बात है।

'आत्मा दूसरेका कुछ नहीं कर सकता।'—ऐसा कहते ही अन्य किसीके सन्मुख देखना नहीं रहता, किन्तु स्वसन्मुख देखना आता है। अपनेमें अपने परिणाम अपनेसे होते हैं—ऐसा निश्चित करने पर अंतरमें जहाँसे परिणामकी धारा बहती है ऐसे ध्रुवद्रव्य-सन्मुख देखना रहा। और ध्रुव-सन्मुख देखते ही (ध्रुवस्वभावकी दृष्टि होते ही) सम्यक्-पर्यायका उत्पाद होता है। यदि ध्रुव-सन्मुख न देखे तो पर्यायदृष्टिमें मिथ्यापर्यायका उत्पाद होता है। इसलिये वस्तुके ऐसे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभावको समझनेसे ध्रुवस्वभावकी दृष्टिसे सम्यक् वीतराग पर्यायोंका उत्पाद हो-यही सर्व कथनका तात्पर्य है।

चैतन्यतत्त्वकी महिमा और दुर्लभता

अहो! आत्माके शुद्ध स्वभावकी अत्यन्त महिमावाली बात जीवोंने यथार्थरूपसे कभी नहीं सुनी। इस समय चैतन्य-तत्त्वकी महिमाकी बात सुननेको मिलना भी अति दुर्लभ हो गया है। जो जीव अति जिज्ञासु और अत्यन्त योग्य होकर आत्मस्वभावकी यह बात सुने उसका कल्याण हो सकता है।

—प्रवचनमेंसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

आत्मा कौन है और कैसे प्राप्त होता है?

[प्रवचनसारके परिशिष्टमें ४७ नयों द्वारा आत्मद्रव्यका
वर्णन किया है, उसपर पूज्य गुरुदेवके विशिष्ट
अपूर्व प्रवचनका सार]

* 'प्रभो ! यह आत्मा कौन है और कैसे प्राप्त किया जाता है ?' —ऐसा जिज्ञासु शिष्य पूछता है।
* उसके उत्तरमें श्री आचार्यदेव कहते हैं कि 'आत्मा अनंत धर्मों-वाला एक द्रव्य है और अनन्तनयात्मक श्रुतज्ञानप्रमाण पूर्वक स्वानुभव द्वारा वह ज्ञात होता है।
* उस आत्मद्रव्यका ४७ नयोंसे वर्णन किया है, उसमेंसे २५ नयों परके प्रवचन अभीतक आ गये हैं; उसके आगे यहाँ दिये जा रहे हैं।

(२६) नियतनयसे आत्माका वर्णन

अनन्तधर्मवाला चैतन्यमूर्ति आत्मा प्रमाणज्ञानसे ज्ञात होता है; उसका २५ नयोंसे अनेक प्रकारसे वर्णन किया है। अब नियति, स्वभाव, काल, पुरुषार्थ और देव—इन पाँच बोलोंका वर्णन करते हैं; उनमें प्रथम नियतिनयसे आत्मा कैसा है वह कहते हैं।

आत्मद्रव्य नियतनयसे नियतस्वभावरूप भासित होता है; जिस प्रकार उष्णता वह अग्निका नियतस्वभाव है उसी प्रकार नियतिनयसे आत्मा भी अपने नियतस्वभाववाला भासित होता है। आत्माके त्रिकाल एकरूप स्वभावको यहाँ नियतस्वभाव कहा है; उस स्वभावको देखनेवाले नियतनयसे जब देखो तब आत्मा अपने चैतन्य-स्वभावरूपसे एकरूप भासित होता है। पर्यायमें कभी तीव्रराग, कभी मंदराग और कभी रागरहितपना, और कभी राग बदल-

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कर द्वेष, कभी मतिज्ञान और कभी केवलज्ञान, एक क्षण मनुष्य और दूसरे क्षण देव—इस तरह अनेक प्रकार होते हैं—उनका वर्णन आगे आनेवाले बोलमें आत्माके अनियत स्वभावरूपसे करेंगे। यहाँ आत्माके नियतस्वभावकी बात है। जैसा शुद्ध चैतन्य ज्ञानानन्दस्वभाव है वैसे ही नियतस्वभावरूपसे आत्मा सदैव प्रतिभासित होता है; पर्याय अल्प हो या अधिक हो, विकारी हो या निर्मल हो, परन्तु नियतस्वभावसे तो आत्मा सदैव एकरूप है। ऐसे नियतस्वभावको जो देखता है उसे अकेली पर्यायबुद्धि नहीं रहेगी किन्तु द्रव्यस्वभावका अवलम्बन होगा। पर्याय-बुद्धिवाला जीव आत्माको एकरूप नियतस्वभावसे नहीं देख सकता और न उसके नियतनय होता है।

यहाँ द्रव्यके त्रिकाली स्वभावको ही नियत कहा है; जिस प्रकार उष्णता वह अग्निका नियतस्वभाव है, अग्नि सदैव उष्ण ही होती है; ऐसा कभी नहीं हो सकता कि अग्नि उष्णतारहित हो। उसी प्रकार चैतन्यपना आत्माका नियत स्वभाव है; उस स्वभावसे जब देखो तब आत्मा एकरूप चैतन्यस्वरूपमय ज्ञात होता है। यद्यपि पर्यायमें भी नियतपना अर्थात् क्रमबद्धपना है; जिस समय जिस पर्यायका होना नियत है वही होती है; उसके क्रममें परिवर्तन नहीं होता—ऐसा पर्यायका नियत स्वभाव है; परन्तु इस समय यहाँ उसकी बात नहीं है; यहाँ तो निमित्तकी अपेक्षारहित आत्माका जो त्रिकाल एकरूप रहने-वाला स्वाभाविक धर्म है उसका नाम नियतस्वभाव है और वह नियत-नयका विषय है।

जिस प्रकार अग्निका उष्णस्वभाव है वह नियत ही है,—निश्चित् ही है; अग्नि सदैव उष्ण ही होती है। उसी प्रकार आत्माका चैतन्यस्वभाव नियत–निश्चित–सदैव एकरूप है; नियतस्वभावसे आत्मा अनादि–अनन्त एकरूप नियत परम पारिणामिक–स्वभावरूप ही भासित होता है; बंध–मोक्षके भेद भी उसमें दिखाई नहीं देते। बन्ध और मोक्षकी पर्यायें नियत अर्थात् स्थायी एकरूप नहीं हैं परन्तु अनियत है। उदय–उपशम–क्षयोपशम या क्षायिक—यह चारों

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भाव भी अनियत हैं; परमपारिणामिक-स्वभाव ही नियत है। आत्मा-का सहज निरपेक्ष शुद्ध स्वभाव ही नियत है। नियतनय आत्माको सदैव ज्ञायक स्वभावरूप ही देखता है। आत्माका ज्ञायकस्वभाव है वह नियत—निश्चित् हुआ अनादि-अनन्त स्वभाव है; उसमें कभी परिवर्तन नहीं हो सकता। आत्माके ऐसे स्वभावको जाननेवाला जीव पर्यायके अनेक प्रकारोंको भी जानता है, तथापि उसे पर्यायबुद्धि नहीं होती। आत्माके नियत एकरूप ध्रुव स्वभावको जाननेसे उसीका आश्रय होता है; इसके अतिरिक्त किसी निमित्त, विकल्प या पर्यायके आश्रयकी मान्यता उसे नहीं रहती। इसप्रकार प्रत्येक नयसे शुद्ध आत्माकी ही साधना होती है। जो जीव अन्तरंगमें शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्माको नहीं देखता उसके एक भी सच्चा नय नहीं होता।

जैसे कोई कहे कि—ऐसा नियम बनाओ जिसमें कभी परिवर्तन न हो। उसीप्रकार यह नियतनय आत्माके स्वभावका ऐसा नियम बाँधता है कि जो कभी पलट न सके, आत्माका नियम क्या है ?—कि अपने शुद्ध ज्ञानानन्दस्वभावसे त्रिकाल रहना ही उसका नियम है; अपने ज्ञानानन्दस्वभावको वह कभी नहीं छोडता। जो आत्मस्वभावके ऐसे नियमको जानता है वह नियमसे मुक्ति प्राप्त करता है।

देखो, यह आत्मस्वभावके गीत ! संतोंके अन्तर्अनुभवमेंसे यह झन्कार उठी है कि अरे जीव ! तूने अपने नियत परमानन्द-स्वभावको कभी छोड़ा नहीं है; तेरा सहज ज्ञान और आनन्द-स्वभाव तुझमें नियत है; तू सदैव अनाकुल शांत रसका कुण्ड है; यदि अग्नि कभी अपनी उष्णताको छोड़ दे तो भगवान् आत्मा अपने पवित्र चैतन्यस्वभावको छोड़ ! परन्तु ऐसा कभी नहीं होता। केवलज्ञान और परम आनन्द प्रगट होनेके सामर्थ्यसे सदैव परिपूर्ण ऐसा तेरा नियत स्वभावके है; उस स्वभावके अवलम्बनसे ही धर्म प्रगट होता है; इसके अतिरिक्त कहीं बाह्यसे धर्म नहीं आता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

एक बार अन्तरमें अपने ऐसे नियत स्वभावको देख !

नियतनयसे देखने पर पवित्रताका पिण्ड आत्मा स्वयं चैतन्य-स्वभावसे नियत ज्ञात होता है— ऐसा उसका धर्म है। यह धर्म आत्माको सदैव अपने परम शुद्ध अमृत-रसमें डुबा रखता है; अपने शांत उपशम रसमें स्थिर—नियत रखता है। नरकमें या स्वर्गमें; अज्ञानदशाके समय या साधकदशाके समय, निगोदमें था तब या सिद्धदशामें होगा तब— कभी भी वह अपने स्वभावको बदलकर अन्यरूप नहीं हो जाता—ऐसा आत्माका नियतस्वभाव है। जो ऐसे नियतस्वभावको जाने उसके पर्यायमें भी ऐसा ही नियत होता है कि अल्पकालमें मुक्ति प्राप्त करे।

एक ओर देखनेसे अनुकूलतामें राग और फिर वह बदलकर प्रतिकूलतामें द्वेष—इस प्रकार आत्मा अनियतस्वभावसे लक्षमें आता है; और दूसरी ओरसे देखने पर तीन लोककी चाहे जैसी प्रतिकूलता आ पड़े तथापि आत्मा कभी अपने स्वभावको नहीं छोड़ता—ऐसा उसका नियतस्वभाव है।—इस प्रकार दोनों स्वभावोंसे जो आत्माको जानता है उसे ध्रुव एकरूप स्वभावकी महिमा आकर उसमें अन्तरोन्मुखता हुए बिना नहीं रहेगी।

जिस प्रकार, अग्निमें उष्णता न हो ऐसा कभी नहीं हो सकता; उसी प्रकार आत्माका ज्ञानानन्द स्वभाव अनादि-अनंत एकरूप है उसका नाम नियतस्वभाव है। अग्निका स्वभाव ऐसा नियत है कि उसमें उष्णता होती ही है; उसी प्रकार आत्मामें ऐसा नियत धर्म है कि अपने शुद्धचैतन्यस्वभावसे वह कभी पृथक् नहीं होता। आत्माका त्रिकाली स्वभाव अनंत सहजानंदकी मूर्ति है; स्वभावको देखने-वाले ज्ञानी जीव ऐसा नहीं मानते कि, किन्हीं अनुकूल निमित्तोंसे मेरा स्वभाव नवीन उत्पन्न होता है अथवा प्रतिकूल निमित्तोंसे मेरा स्वभाव नष्ट हो जाता है या उसमें परिवर्तन हो जाता है। इसलिये उन ज्ञानियोंको चाहे जैसे अनुकूल-प्रतिकूल प्रसंगोंमें भी अनन्तानुबन्धी राग-द्वेष होते ही नहीं। वे जानते हैं कि हमारा आत्मा त्रिकाल चैतन्य

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञायकरूपसे नियत है; हमें अपने ज्ञायकस्वभावसे छुड़ानेकी किन्हीं संयोगोंकी तो शक्ति नहीं है, और पर्यायके क्षणिक विकारमें भी ऐसी शक्ति नहीं है कि हमें अपने स्वभावसे पृथक् कर दे । जिस प्रकार लोग नियम लेते हैं कि 'हम अमुक वस्तु नहीं खाएँगे; उसी प्रकार आत्माके नियतस्वभावका ऐसा नियम है कि तीनकालमें कभी भी अपने चैतन्यभावको छोड़कर विभावरूप नहीं होना । जो घड़ी-घड़ीमें बदले उसे नियम नहीं कहा जाता ।

देखो, यह काहेकी बात चल रही है ? यह भगवान आत्माके गीत गाए जा रहे हैं; आत्मामें जो धर्म हैं उनकी यह महिमा गायी जा रही है । अज्ञानीको अनादिकालसे अपने स्वभावकी महिमा नहीं रुचती और वह परकी महिमा करता है । जहाँ उच्चप्रकारके हीरे-जवाहिरात या आभूषणोंकी महिमा सुनता है वहाँ उनकी महिमा आ जाती है; परन्तु आत्मा स्वयं तीनलोकका प्रकाशक चैतन्यहीरा है उसके स्वभावकी महिमा गायी जा रही है, उसे सुननेमें अज्ञानीको रुचि या उत्साह नहीं आता । यहाँ तो जिसे आत्माका स्वभाव समझनेकी जिज्ञासा जागृत हुई है उसे आचार्यदेव समझाते हैं । आत्माका शुद्ध-स्वभाव त्रिकाल नियमित है; उसीके आधार पर्यायमें शुद्धता प्रगट होती है; इसके अतिरिक्त कहीं बाह्यमेंसे, विकारमेंसे या क्षणिक पर्यायमेंसे शुद्ध पर्याय नहीं आती । भगवान आत्माने अपनी पवित्रताके पिण्डको कभी छोड़ा नहीं है । पर्यायमें जो शुद्धता प्रगट होती है वह तो पहले नहीं थी और नवीन प्रगट हुई, इसलिये वह अनियत है; और शुद्ध स्वभाव ध्रुवरूपसे सदैव ऐसेका ऐसा ही है;—इसलिये वह नियत है । पर्याय जिस समय जो होना हो वही होती है;—इस प्रकारसे पर्यायका जो नियत है उसकी इस नियतनयमें बात नहीं है परन्तु यहाँ तो द्रव्यके नियतस्वभावकी बात है; क्योंकि नियतके समक्ष फिर अनियतस्वभावका भी कथन करेंगे; उसमें पर्यायकी बात लेंगे । पर्यायोंके नियतपनेकी (क्रमबद्ध पर्यायकी) जो बात है उसमें नियत और अनियत ऐसे दो प्रकार नहीं हैं; उसमें तो नियतका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

एक ही प्रकार है कि समस्त पर्यायें नियत ही हैं—कोई भी पर्याय अनियत नहीं है। परन्तु इससमय तो आत्मवस्तुमें नियतस्वभाव और अनियतस्वभाव–ऐसे दोनों धर्म उतारना हैं; इसलिये यहाँ नियत अर्थात् द्रव्यका एकरूप स्वभाव। पर्यायका क्रम नियत है परन्तु पर्यायस्वभाव त्रिकाल एकसमान रहनेवाला नहीं है इसलिये उसे यहाँ अनियत स्वभाव कहा है। जब पर्यायका नियतपना (—क्रमबद्धपना) कहना हो उससमय तो विकार भी नियत कहा जाता है; ज्ञान नियत है, ज्ञेय नियत हैं, विकार नियत है, संयोग और निमित्त भी नियत हैं, जो हों वही होते हैं, अन्य नहीं होते, जिससमय जो होना है वह सब नियत ही है। ऐसे नियतके निर्णयमें भी ज्ञानस्वभावकी ही दृष्टि हो जाती है, और वस्तुका नियत–अनियत स्वभाव कहा उसके निर्णयमें भी ध्रुवस्वभावकी दृष्टि हो जाती है। द्रव्यके नियतस्वभावको जानने पर रागको अनियत धर्म-रूपसे जानता है, इसलिये उस रागमें स्वभावबुद्धि नहीं होती; इसप्रकार आत्माके नियतस्वभावको जानने पर रागसे भेदज्ञान हो जाता है।

राग होता है वह आत्माका अनियतस्वभाव है—ऐसा जाने, अथवा रागको उस समयकी पर्यायके नियमरूपसे जाने, तो भी उन दोनोंमें, 'आत्माका नियतस्वभाव उस रागसे भिन्न है'—ऐसा भेदज्ञान होकर स्वभावदृष्टि होती है।

जो जीव त्रिकाली द्रव्यके नियतस्वभावको जाने वही जीव त्रिकालकी पर्यायोंके नियतपनेको यथार्थ जानता है, और क्षणिक भावोंके अनियतपनेको भी वही जानता है। पर्यायमें राग हुआ वह आत्माका अपना अनियतधर्म है, इसलिये कर्मके उदयके कारण राग हुआ यह बात नहीं रहती। आत्माका स्थायी स्वभाव वह नियत है और क्षणिकभाव वह अनियत है। पूर्व अनादिकालमें आत्मा नरक–निगोद आदि चाहे जिस पर्यायमें रहा, तथापि आत्माके नियत-धर्मको उसने अपने शुद्धस्वभावसे एकरूप बना रखा है; जहाँ–जहाँ परिभ्रमण किया वहाँ सर्वत्र अपने शुद्ध चैतन्यस्वभावको अपने

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

साथ रखकर भटका है। यदि ऐसे अंतर्स्वभावका ज्ञान करे तो वर्तमानमें अपूर्व धर्म होता है।

नियतनयका विषय त्रिकाल एकरूप रहनेवाला द्रव्य है और अनियतनयका विषय पर्याय है। 'अनियत'का अर्थ अक्रमबद्ध–अनिश्चित् अथवा उल्टी–सीधी पर्याय—ऐसा नहीं समझना; परन्तु पर्याय वह आत्माका त्रिकाल एकरूप रहनेवाला स्वभाव नहीं है किन्तु वह पलट जाता है उस अपेक्षासे उसे अनियत धर्म समझना। पर्याय तो त्रिकालके प्रत्येक समयकी जैसी है वैसी नियत है; उसमें कुछ उल्टा–सीधा नहीं हो सकता। बस ! तू अपने ज्ञानकी प्रतीति करके उसका ज्ञाता रह जा। शरीरादि मेरे हैं—यह बात भूल जा; और रागको बदलूँ—यह बात भी भूल जा; शरीरादि और रागादि—सबको जाननेवाला तेरा ज्ञानस्वभाव है उसे सँभाल; वह तेरा नियतस्वभाव है। अपने नियत-स्वभावको तूने कभी छोड़ा नहीं है।

आत्मा त्रिकाल ज्ञानस्वभाव है—इस प्रकार द्रव्यके नियत-स्वभावका निर्णय करे तो वह स्वभावदृष्टिसे रागादिका ज्ञाता हो गया।

द्रव्यके नियतस्वभावको जानने पर, रागको पर्यायके नियत रूपसे जाने तो उसमें भी रागका ज्ञाता हो गया।

राग आत्माका अनियत स्वभाव है अर्थात् वह आत्माका त्रिकाल स्थायी स्वभाव नहीं है–ऐसा जाने तो उसमें भी राग और स्वभावका भेदज्ञान होकर रागका ज्ञाता रह गया।

—इस प्रकार चाहे जिस रीतिसे समझे परन्तु उसमें ज्ञान-स्वभावकी सन्मुखता करना ही आता है और वही धर्म है।

'नियतवाद'का बहाना लेकर अज्ञानी लोग अनेक प्रकारकी अंधाधुंधी चलाते हैं। सर्वज्ञदेवने जैसा देखा है उसी प्रकार नियमसे होता है—इस प्रकार सर्वज्ञकी श्रद्धापूर्वकके सम्यक् नियतवादको भी अज्ञानी गृहीतमिथ्यात्व कहते हैं; परन्तु उसमें ज्ञानस्वभावके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निर्णयका महान पुरुषार्थ आता है उसकी उन्हें खबर नहीं है। तथा दूसरे स्वच्छन्दी जीव, सर्वज्ञके निर्णयके पुरुषार्थको स्वीकार किये बिना अकेला नियतका नाम लेकर पुरुषार्थको उड़ाते हैं उन्हें भी नियत-स्वभावकी खबर नहीं है।

गोम्मटसारमें नियतवादीको गृहीतमिथ्यादृष्टि कहा है। वह जीव तो ज्ञानस्वभावकी प्रतीतिका सम्यक् पुरुषार्थ नहीं करता, सर्वज्ञकी प्रतीति नहीं करता; परन्तु विकारका और परका स्वामी होकर कहता है कि 'जो नियत होगा वह होगा।' परन्तु 'जो नियत होगा वह होगा'—ऐसा जाना किसने उसका निर्णय कहाँ किया ?–अपने ज्ञानमें। तो तुझे अपने ज्ञानकी प्रतीति है। ज्ञानकी बड़ाई और महिमाको जानकर, उसके सन्मुख होकर, ज्ञेयोंके नियतको जो जानता है वह तो मोक्षमार्गी साधक हो गया है उसकी गोम्मटसारमें बात नहीं है, परन्तु जो मिथ्यादृष्टि जीव ज्ञानस्वभावके सन्मुख हुए बिना और सर्वज्ञकी श्रद्धा किए बिना मात्र परसन्मुख देखकर नियत मानता है वह मिथ्या नियत-वादी है और उसीको गोम्मटसारमें गृहीतमिथ्यादृष्टि कहा है।

सर्वज्ञस्वभावकी श्रद्धापूर्वक अपने ज्ञानस्वभावके सन्मुख होकर ऐसा निर्णय किया कि अहो ! सब नियत है; जिस समय जैसा होना है वैसा ही क्रमबद्ध होता है; मैं तो स्व–परप्रकाशी ज्ञाता हूँ। ऐसा निर्णय वह सम्यग्दृष्टिका सम्यक् नियतवाद है। इस नियतमें द्रव्य–पर्याय सबका समावेश हो जाता है; अज्ञानीका नियतवाद ऐसा नहीं होता। जिसने अपने ज्ञानस्वभावके सन्मुख होकर उसकी रुचिका सम्यक्–पुरुषार्थ प्रगट किया और शुभ–अशुभ भावोंकी रुचि छोड़ दी है उसीने वास्तवमें सम्यक् नियतवादको माना है; उसमें चैतन्यका पुरुषार्थ है, मोक्षका मार्ग है। उसका वर्णन स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षाकी ३२१–३३२ वीं गाथामें है; सम्यग्दृष्टि जीव वस्तुके यथार्थ स्वरूपका कैसा चिंतवन करता है वह उसमें बतलाया है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यहाँ प्रवचनसारमें जो नियतधर्म कहा है वह तीसरी बात है। यहां तो आत्माका जो त्रिकाल एकरूप शुद्ध निरपेक्ष चैतन्यस्वभाव है उसका नाम नियतधर्म है। स्वभाववान कभी अपने मूल स्वभावको नहीं छोड़ता—ऐसा उसका नियतधर्म है। यह नियतधर्म तो ज्ञानी-अज्ञानी सभी जीवोंमें है; परन्तु ज्ञानी ही उसे नियतनय द्वारा जानते हैं। नियतधर्म सभी आत्माओंमें है, परन्तु नियतनय सभी आत्माओंके नहीं होता; जो ज्ञानी आत्माके नियतस्वभावको जाने उसीके नियतनय होता है।

इस प्रकार नियतनयके तीन प्रकार हुए:—

(१) गोम्मटसारमें कहा हुआ ज्ञानकी प्रतीतिरहित गृहीत-मिथ्यादृष्टिका नियतवाद।

(२) स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षामें कहा हुआ ज्ञानीका नियतवाद; उसमें सम्यग्दृष्टि जीव ज्ञानस्वभावकी भावनापूर्वक सर्वज्ञ-देवके देखे हुए वस्तुस्वरूपका चिंतन करता हुआ, जैसा होता है वैसा पर्यायके नियतको जानता है; उसमें विषमभाव नहीं होने देता। इसलिये यह ज्ञानीका नियत-वाद तो वीतरागता और सर्वज्ञताका कारण है।

(३) इस प्रवचनसारमें कहा हुआ नियतस्वभाव; नियतनयसे सभी जीव त्रिकाल एकरूप ज्ञानस्वभावसे नियत हैं।

उपरोक्त तीन प्रकारोंमेंसे गोम्मटसारमें जिस नियतवादको गृहीतमिथ्यात्वमें गिना है वह अज्ञानीका है; उसे सर्वज्ञकी श्रद्धा नहीं है। स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षामें वर्णित नियतवाद तो सर्वज्ञकी श्रद्धा सहित और ज्ञातादृष्टास्वभावकी सन्मुखताके पुरुषार्थ सहित ज्ञानीका सम्यक् नियतवाद है। और प्रवचनसारमें जिस नियतवाद की बात है वह समस्त जीवोंका त्रिकाल एकरूप शुद्ध चिदानन्द-स्वभाव है उसकी बात है। आत्मा अपने असली चैतन्यस्वभावको कभी नहीं छोड़ता ऐसा उसका नियतस्वभाव है। जो जीव ऐसे नियतस्वभावको जाने उसे विकार पर बुद्धि नहीं रहती; क्योंकि

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विकार आत्माका त्रिकाल स्वभाव नहीं है। इस तीसरे बोलकी अपेक्षासे तो विकार आत्माका 'अनियतभाव' है, और दूसरे बोलकी अपेक्षासे तो विकारभाव भी 'नियत' है, क्योंकि उस समय उसी पर्यायका क्रम नियत है।

विकार होता है वह आत्माका त्रिकाली स्वभाव नहीं है, इसलिये अनियतरूपसे उसका वर्णन करेंगे; परन्तु उस अनियतका अर्थ ऐसा नहीं है कि उस समयकी उस पर्यायके क्रममें भंग पड़ा! आत्माकी पर्यायमें कभी विकार होता है और कभी नहीं होता; और न वह सदैव एक-सा रहता है—इसलिये उसे अनियत कहा है; परन्तु पर्यायके क्रमकी अपेक्षा तो वह भी नियत ही है। वस्तुस्वभाव त्रिकाल व्यवस्थित परिणमित हो रहा है; उसकी तीनों कालकी पर्यायोंमें इतनी नियमितता है कि उसके क्रमका भंग करनेमें अनंत तीर्थंकर भी समर्थ नहीं हैं। पर्यायोंके ऐसे व्यवस्थितपनेका निर्णय करनेवाला जीव स्वयं त्रिकाली द्रव्यके सन्मुख देखकर वह निर्णय करता है इसलिये वह स्वयं स्वभावोन्मुख और मोक्षपथमें बैठा हुआ साधक हो गया है। क्रमरूप पर्यायें एकसाथ नहीं होती इसलिये उस क्रमकी प्रतीति करनेवालेकी दृष्टि अक्रमरूप द्रव्यस्वभाव पर होती है, और उसीसे मोक्ष-मार्गका पुरुषार्थ आ जाता है।

धर्मी जीव नियतनयसे ऐसा जानता है कि मैंने अपने स्वभावको सदैव ऐसे का ऐसा नियत बना रखा है; मेरे स्वभावमें कुछ भी न्यूनाधिकता नहीं; विकारके समय मेरे स्वभावमेंसे कुछ कम नहीं हो जाता और न केवलज्ञान होनेसे कुछ बढ़ जाता है; पर्यायमें विहार हो या निर्विकारीपना हो, परन्तु अपने नियतस्वभावमेंसे तो सदैव एकरूप हूँ। इस प्रकार द्रव्यकी अपेक्षासे आत्माका नियतधर्म है परन्तु उसीके साथ पर्याय अपेक्षासे अनियतधर्म भी विद्यमान है उसे भी धर्मी जानता है; उसका वर्णन अगले बोलमें करेंगे।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अग्नि कभी ठण्डी हो और कभी गर्म हो—ऐसे दो प्रकार उसमें नहीं हैं; अग्नि गर्म ही होती है—ऐसा एक नियत प्रकार है। उसी प्रकार नियतनयसे आत्मामें भी ऐसा नियतस्वभाव है कि वह सदैव एकरूप शुद्ध चैतन्यस्वरूप ही रहता है। जिस प्रकार अग्नि कभी अपनी उष्णतासे पृथक् नहीं होती ऐसा उसके स्वभावका नियम है; उसी प्रकार आत्माके स्वभावका ऐसा नियम है कि वह अपने शुद्ध चैतन्यत्वसे पृथक् नहीं होता।

यहाँ त्रिकाली शुद्धस्वभावके नियमको नियत कहा है गोम्मटसारका नियतवादी तो ज्ञानस्वभावकी प्रतीतिके पुरुषार्थसे रहित है इसलिये वह गृहीतमिथ्यादृष्टि है। और द्वादशानुप्रेक्षामें ज्ञानस्वभावकी प्रतीतिके पुरुषार्थ सहित सम्यग्दृष्टिके सम्यक् नियतवादका वर्णन है। जिस पदार्थकी जिस समय, जिस प्रकार जिस अवस्थाका होना सर्वज्ञ-देवके ज्ञानमें प्रतिभासित हुआ है उस पदार्थकी उस समय उसी प्रकार वैसी ही अवस्था नियमसे होती है; कोई इन्द्र, नरेन्द्र या जिनेन्द्र भी उसमें फेरफार नहीं कर सकते—ऐसा वस्तुस्वरूप समझनेवाले सम्यग्दृष्टिको साथमें ऐसी भी प्रतीति है कि मैं ज्ञाता हूँ। इसलिये परसे उदासीन होकर वह उसका ज्ञाता रहा, और अपनी पर्यायका आधार द्रव्य है उस द्रव्यकी ओर उन्मुख हुआ; द्रव्य-दृष्टिसे उसे क्रमशः पर्यायकी शुद्धता होने लगती है।—ऐसा यह सम्यक् नियतवाद है।

देखो, गोम्मटसारमें नियतवादीको गृहीत मिथ्यादृष्टि कहा, और यहाँ सम्यग्दृष्टिके नियतवादको यथार्थ कहा। कहाँ कौन-सी अपेक्षा है वह गुरुगमसे समझना चाहिये।

ज्यां ज्यां जे जे योग्य छे तहां समजवुं तेह,
त्यां त्यां ते ते आचरे आत्मार्थी जन एह।

कुछ लोग तो 'नियत'—ऐसा शब्द सुनकर ही भड़क उठते हैं; परन्तु भाई! तू जरा समझ तो कि ज्ञानी क्या कहते हैं? 'क्रमबद्ध

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जैसा होना नियत है वैसा ही होता है'—ऐसा जाननेका बीड़ा किसने उठाया ? जिस ज्ञानने वह बीड़ा उठाया है वह अपने ज्ञानसामर्थ्यकी प्रतीतिके बिना वह बीड़ा नहीं उठा सकता; क्रमबद्ध जैसा होना नियत है वैसा ही होता है–ऐसा बीड़ा उठानेवाले ज्ञानमें ज्ञानस्वभावकी सन्मुखताका पुरुषार्थ–इत्यादि सभी समवाय आ जाते हैं।

(१) यहाँ कहा हुआ नियतधर्म सभी जीवोंमें है।

(२) द्वादशानुप्रेक्षामें कथित सम्यक् नियतवाद सम्यग्दृष्टिके ही होता है।

(३) गोम्मटसारमें कथित मिथ्या नियतवाद गृहीतमिथ्यादृष्टिके ही होता है।

—इसलिये नियतका जहाँ जो प्रकार हो वह समझना चाहिए; मात्र 'नियत' शब्द सुनकर भड़कना नहीं चाहिए।

'नियत स्वभाव' भी आत्माका एक धर्म है; और उस धर्मसे आत्माको जानने पर उसके दूसरे अनन्त धर्मोंकी स्वीकृति भी साथ ही आ जाती है। आत्मामें अनन्त धर्म एकसाथ ही हैं उनमेंसे एक धर्मकी यथार्थ प्रतीति करनेसे दूसरे समस्त धर्मोंकी प्रतीति भी साथ ही आ जाती है और प्रमाण ज्ञान होकर अनन्त धर्मोंके पिण्डरूप शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्माका अनुभव होता है।

पाँच समवाय कारणोंमें जो भवितव्य अथवा नियति आता है वह सम्यक् नियतवाद है; उसके साथ दूसरे चारों समवाय आ जाते हैं। न होनेवाला हो जाये—ऐसा कभी होता ही नहीं; जो होता है वह सब नियत ही है। परन्तु उस नियतके निर्णयमें ज्ञातास्वभावका 'पुरुषार्थ' है, स्वभावमें सो पर्याय थी वही प्रगट हुई, इसलिये उसमें 'स्वभाव' भी आ गया; और जितने अंशमें निर्मल पर्याय प्रगट हुई उतने अंशमें कर्मका अभाव है—वह 'निमित्त' है।—इस प्रकार एक समयमें पाँचों बोल एकसाथ आ जाते हैं। उनमें नियत–अनियतरूप अनेकान्त उतारना हो तो जो भवितव्य है वह 'नियत' और नियतके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अतिरिक्त अन्य चार बोल हैं वह 'अनियत'—इस प्रकार नियत अनियत-रूप अनेकान्त वह भगवानका मार्ग है। परन्तु उसमें 'अनियत' शब्दका अर्थ 'आगे-पीछे या अनिश्चित'—ऐसा नहीं समझना चाहिये, किन्तु आत्माके नियत धर्मके अतिरिक्त अन्य धर्मोंका नाम 'अनियत' समझना।

सम्यक् नियतमें तो विकारी-अविकारी और जड़की समस्त पर्यायें आती हैं; क्योंकि समस्त पर्यायोंका क्रम नियत ही है; और यहाँ कहे हुए नियतस्वभावसे तो अकेला ध्रुवस्वभाव ही आता है; उसमें पर्याय नहीं आती।

पर्यायके नियतका निर्णय भी द्रव्यके बिना नहीं किया जा सकता, क्योंकि पर्यायें द्रव्यमेंसे ही आती हैं। निश्चित पर्यायका निर्णय करनेमें द्रव्यसन्मुखताका अपूर्व पुरुषार्थ है; वह निर्णय करनेवालेको पर्यायबुद्धि नहीं रहती। वर्तमान पर्यायकी बुद्धि अंतर्मुख होकर द्रव्यमें प्रविष्ट हो जाये तभी सम्यक् नियतका निर्णय होता है। पर्यायमें समय-समयका विकार है वह मेरे त्रिकाली स्वभावमें नहीं है—इस प्रकार दोनों धर्मोंसे आत्माको जाने तो अवस्था विकारकी ओरसे विमुख होकर चैतन्यस्वभावकी ओर उन्मुख हो जाती है और सम्यग्ज्ञान होता है।

द्रव्यका त्रिकाल नियत स्वभाव है उसकी दृष्टि करे, या पर्यायके नियतका यथार्थ निर्णय करे अथवा नियत और पुरुषार्थ आदि पाँचों समवाय एक साथ हैं उन्हें समझे, तो मिथ्याबुद्धि दूर होकर स्वभावोन्मुखता हो जाती है। जिसने नियतका यथार्थ निर्णय किया उसके आत्माके ज्ञानस्वभावका, केवलीभगवानका और पुरुषार्थका विश्वास भी साथ ही है। नियतका निर्णय कहो, केवल-ज्ञानका निर्णय कहो, पाँच समवायका निर्णय कहो, सम्यक् पुरुषार्थ कहो—वह सब एकसाथ ही है।

नियतके साथ वाले दूसरे पुरुषार्थ आदि चार बोल हैं उन्हें नियतमें नहीं लेते इसलिये उन्हें अनियत कहा जाता है। इस प्रकार

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नियत और अनियत–ऐसा वस्तुस्वभाव है। अथवा दूसरे प्रकारसे—द्रव्यका एकरूप स्वभाव वह नियतधर्म है और पर्यायमें विविधता होती है वह अनियतधर्म है;—इसप्रकार नियत और अनियत दोनों धर्म एक साथ विद्यमान हैं। उनमें नियतनयसे आत्माके द्रव्य स्वभावका वर्णन किया; अब अनियतनयसे पर्यायकी बात करेंगे।

—यहाँ २६ वें नियतनयसे आत्माका वर्णन पूरा हुआ।

[२७] अनियतनयसे आत्माका वर्णन

नियतनयसे आत्माके एकरूप द्रव्यस्वभावका वर्णन किया; अब नियतनयसे पर्यायकी बात कहते हैं। आत्मद्रव्य अनियतनयसे अनियतस्वभावरूप भासित होता है; जिस प्रकार पानीमें उष्णता नियमित नहीं है परन्तु अग्निका निमित्त पाकर कभी-कभी उसमें उष्णता आ जाती है; उसीप्रकार अनियतनयसे आत्मा रागादि अनियतस्वभाव-रूप ज्ञाता होता है।

पानीका स्थायी स्वभाव ठण्डा है वह नियत है, और उष्णता उसके ठण्डे स्वभावसे विपरीत दशा है; वह उष्णता पानीमें नित्यस्थायी रहनेवाली नहीं है इसलिये अनियत है; उसीप्रकार आत्माकी अवस्थामें रागादि विकारीभाव होते हैं वे स्थायी रहनेवाले नहीं हैं परन्तु क्षणिक हैं इसलिये वे अनियत हैं। ऐसा अनियतपना भी आत्माका एक धर्म है। परन्तु "होना नहीं था और हो गया"—ऐसा यहाँ अनियतका अर्थ नहीं है। रागादिको अनियत कहा इसलिये कहीं पर्यायका क्रम टूट जाता है ऐसा नहीं है; जो रागादि हुए वे कहीं पर्यायका क्रम टूटकर नहीं हुए हैं। पर्यायके क्रमकी अपेक्षासे रागादि भी नियत क्रममें ही हैं; परन्तु रागादि अशुद्ध भाव हैं, वह आत्माका स्थायी स्वभाव नहीं है इसलिये उसे अनियतस्वभाव कहा है। अनियतनयसे देख तो उसमें भी क्रमबद्धपर्यायका फेरफार होना नहीं आता; पर्यायका क्रम तो नियत ही है।

गोम्मटसारमें एकान्त नियतवादीको मिथ्यादृष्टि कहा है,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वह तो अलग बात है और यहाँ अलग बात है। गोम्मटसारमें जिस नियतवादीको मिथ्यादृष्टि कहा है वह तो नियतके नामसे मात्र स्वच्छन्दका सेवन करता है; परन्तु नियतके साथ अपना ज्ञाता स्वभाव है उसे वह जानता नहीं है, स्वसन्मुख होनेके पुरुषार्थको और सर्वज्ञको मानता नहीं है, परसन्मुख ही रुचि रखता है किन्तु अनंतस्वसामर्थ्यमय ज्ञानस्वभावकी रुचि नहीं करता; स्वभावकी सम्यक्–श्रद्धा–ज्ञानके पुरुषार्थको वह स्वीकार नहीं करता, अपनी निर्मलपर्यायरूप स्वकालको वह जानता नहीं है, और निमित्तमें कितने कर्मोंका अभाव हुआ है उसे भी वह नहीं समझता।—इस प्रकार किसी प्रकारके मेल बिना मात्र नियतकी बातें करके स्वच्छन्दी होता है; नियतके साथके पुरुषार्थ आदि समवायोंको वह मानता नहीं है और श्रद्धा ज्ञानका सम्यक् पुरुषार्थ प्रगट नहीं करता, इसलिये वह मिथ्यादृष्टि है। परन्तु सम्यक्दृष्टि तो नियतके निर्णयके साथ–साथ सर्वज्ञका भी निर्णय करता है और 'मैं ज्ञाता स्वभाव हूँ'—ऐसा भी स्वसन्मुख होकर प्रतीति करता है इसलिये नियतके निर्णयमें उसे सम्यक्श्रद्धा–ज्ञानका पुरुषार्थ भी साथ ही है; उस समय निर्मलपर्यायरूप स्वकाल है तथा निमित्तमें मिथ्यात्वादि कर्मका अभाव है; इस प्रकार सम्यग्दृष्टिको एक साथ पाँच समवाय आ जाते हैं। नियतके निर्णयके सम्बन्धमें मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टिका यह महान अन्तर है वह अज्ञानी नहीं समझ सकते इसलिये भ्रमसे दोनोंमें समानता लगती है, परन्तु वास्तवमें तो उन दोनोंमें आकाल–पाताल जितना अन्तर है।

'मैं ज्ञायक हूँ'—इस प्रकार अपने ज्ञानस्वभावकी जिसे प्रतीति नहीं है और जो परमें फेरफार करनेके मिथ्याभिमानका सेवन कर रहा है, वे यह नियतवस्तुस्वभावकी यह बात सुनते ही भड़क उठते हैं कि 'अरे! क्या सब नियत है!! हमारे पुरुषार्थसे कुछ फेरफार नहीं हो सकता?' यानी उसे ज्ञाता नहीं रहना है किन्तु फेरफार करना है;—यह बुद्धि ही मिथ्यात्व है। अज्ञानी मानता है कि वस्तुकी पर्याय नियत नहीं है, अर्थात् निश्चित नहीं है; उसमें हम

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अपनी इच्छानुसार परिवर्तन कर सकते हैं;—यह उसकी मान्यता मिथ्या है; क्योंकि वस्तुकी पर्यायोंमें ऐसा अनियतपना नहीं है कि वे आगे-पीछे हो जायें ! यहां आत्माके अनियतधर्मका वर्णन करते हैं उसमें तो अलग बात है; कहीं उसमें पर्यायके क्रममें परिवर्तन करनेकी बात नहीं है।

अज्ञानी मानता है कि इस अनियतनयमें तो हमारी मान्यतानुसार वस्तुकी क्रमबद्धपर्यायमें फेरफार होना आयेगा !—परन्तु ऐसा नहीं है; किसी पर्यायका क्रम तो फिरता ही नहीं है—इस नियमको अबाधित रखकर ही सब बात है। द्रव्यस्वभावकी दृष्टिसे देखने पर आत्मा शुद्धरूप दिखाई देता है और पर्यायदृष्टिसे देखने पर अशुद्ध दिखाई देता है, वह अशुद्धता आत्माका अनियतस्वभाव है; क्षणिक अशुद्धताको भी आत्मा स्वयं अपनी पर्यायमें धारण कर रखता है।

आत्माके अनियतधर्मको कौन मान सकता है ?

आत्मा एकान्त शुद्ध है, उसकी पर्यायमें भी विभाव नहीं है—ऐसा जो माने उसने आत्माके अनियतधर्मको नहीं जाना है;

अथवा आत्माकी पर्यायमें जो विकार है वह परके कारण होता है—ऐसा माने तो वह भी आत्माके अनियतधर्मको नहीं जानता है;

और पर्यायमें जो क्षणिक विकार है उसीको यदि आत्माका स्थायी स्वभाव मान ले तो उसने भी आत्माके अनियतधर्मको नहीं जाना है;

पर्यायमें जो विकार है वह उसके अपने कारणसे है; परन्तु वह आत्माका त्रिकाल रहनेवाला स्वभाव नहीं है, परन्तु क्षणिक अशुद्धभाव है—ऐसा जो जाने उसीने आत्माके अनियतधर्मको यथार्थरूपसे माना कहा जाता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सर्व जीव कर्मके वश हैं—ऐसा अज्ञानी मानता है; इसलिये कर्म ही जीवको विकार करता है ऐसा वह मानता है, परन्तु आत्माके अनियतधर्मको वह नहीं जानता है। रागादि विकार होता है वह कहीं जड़कर्मका धर्म नहीं है, परन्तु वे रागादि आत्माकी ही अवस्थामें होते हैं इसलिये आत्माका ही अनियतधर्म है। तत्त्वार्थसूत्रमें भी औदयिकभावको भी आत्माका स्वतत्त्व कहा है। रागादिभाव आत्माका अनियतधर्म है, वह कहीं कर्मके वश नहीं है; आत्माका अनियतधर्म कहीं जड़कर्मके कारण नहीं है।

'आत्माकी पर्यायमें विकार नहीं होना था, किन्तु बहुतसे कर्मोंका एकसाथ उदय आया इसलिये विकार हुआ'—ऐसा अनियतपना नहीं है; परन्तु आत्माके स्वभावका जो एकरूप नियम है वैसा पर्यायमें नहीं है, इसलिये पर्यायके विकारको अनियत कहा है। चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा त्रिकाल है, उसकी अवस्थामें विकार और संसार है वह अनियतस्वभावसे है; एक समय पर्यंतका अनिश्चित है, इसलिये वह आत्मामें सदैव नहीं रहेगा, और शुद्ध स्वभाव तो ज्योंका त्यों रहनेवाला है; उस स्वभावकी महिमा करके उसके सन्मुख रहनेसे पर्यायमें अनियत ऐसा संसार दूर हो जायेगा। इसलिये हे जीव! मैं ज्ञायक आनन्दकन्दस्वभावसे नियत हूँ और अवस्थाका विकार वह अनियत है—ऐसी प्रतीति करके स्वभावोन्मुख हो! विकार आत्मामें स्थायी रहनेवाला भाव नहीं है, इसलिये पर्यायमें भले ही चाहे जितना विकार हो उससे तू अकुलाना मत, परन्तु उस प्रकारकी तुच्छता जान, और नित्यस्थायी शुद्ध नियतस्वभावकी महिमा लाकर उसके सन्मुख दृष्टि करके उसमें स्थिर हो!—ऐसा करनेसे, जैसा नित्यस्थायी शुद्ध-स्वभाव है वैसी शुद्धता पर्यायमें प्रगट हो जायेगी। और विकार नष्ट हो जायेगा आत्माके शुद्धस्वभावके आश्रयसे अनियत जो विकार है वह दूर हो जाने योग्य है, परन्तु पर्यायके क्षणिक विकारसे कहीं आत्माके नियतस्वभावका नाश नहीं हो जाता। रागादि विकार तो क्षणिक

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अनियत नाशवंत हैं, वे शरणभूत नहीं हो सकते, और द्रव्यका नियत-स्वभाव तो सदा शुद्ध है; उसकी शरणमें जानेसे जीवको शांति और कल्याण होता है। इस प्रकार नियतस्वभाव और अनियतस्वभाव—इन दोनोंसे आत्माको जानकर उसके ध्रुव स्वभावका आश्रय करना वह प्रयोजन है।

भाई! तेरा द्रव्यस्वभाव शुद्धचैतन्यमय है वह नियंत है और पर्यायमें विकारी संसारभाव है वह अनियत है, इसलिये वह दूर हो जायेगा। नियत शुद्धस्वभावकी दृष्टि करनेसे अनियत विकारी भाव दूर हो जायेगा। शुभाशुभ विकार तेरा क्षणिक पर्याय–धर्म है तो भी वह अनियत है, इसलिये वह पानीकी उष्णताकी भाँति दूर हो जाता है। अग्निकी उष्णता वह उसका नियतस्वभाव है इसलिये वह दूर नहीं होता, परन्तु पानीकी उष्णता अनियत है इसलिये वह दूर हो जाती है। उसी प्रकार आत्माका शुद्धचैतन्य द्रव्यस्वभाव तो नियत है, उसका कभी नाश नहीं होता, और पर्यायका विकार अनियतस्वभावरूप है इसलिये वह दूर हो जाता है। इसलिये पर्यायमें एक समयका विकार देखकर आकुलित मत हो, क्योंकि सारा द्रव्य विकाररूप नहीं हो गया है; द्रव्य तो नित्य शुद्धस्वभाव है ही; उसकी दृष्टि करनेसे विकार दूर हो जायेगा और शुद्धता प्रगट हो जायेगी। पर्यायका स्वभाव अनियत है ऐसा जानकर उसका आश्रय छोड़, और द्रव्यका स्वभाव नियत है—ऐसा जानकर उसका आश्रय कर। अहो! मैं सदैव एकरूप परम पारिणामिकभावसे नियत हूँ—ऐसा जानकर स्वाश्रय करनेसे सम्यग्दर्शनादि अपूर्वभाव प्रगट हो जाता है।

आत्मा सदैव चैतन्य प्रभुतासे परिपूर्ण है—ऐसा नियतनय देखता है, और पर्यायमें पामरता है उसे अनियतनय देखता है। यह दोनों धर्म आत्मामें एकसाथ हैं। आत्माके ऐसे दोनों धर्मोंको जो जानता है उसका बल पूर्णस्वभावकी प्रभुताकी ओर ढले बिना नहीं रहता, इसलिये द्रव्यकी प्रभुताके बलसे पर्यायकी पामरताका नाश हुए बिना नहीं रहता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

द्रव्यस्वभावमें विकार नहीं है और पर्यायमें विकार हुआ, तो वह कहाँसे आया ?—क्या कर्मके कारण आया ? नहीं; विकार भी आत्माका ही अनियत धर्म है; आत्माकी पर्यायमें उस प्रकारकी योग्यता है। अग्निके संयोगके समय पानी गर्म हुआ वह अग्निके कारण नहीं हुआ है परन्तु पानीकी पर्यायमें उस प्रकारकी योग्यता है; वह उष्णता पानीका अनियत धर्म है; उसी प्रकार आत्मामें जो रागादि पर्याय होती है वह उसका अनियत धर्म है। यदि उस एकधर्मको भी निकाल दें या परके कारण मानें तो सारी आत्मवस्तु ही सिद्ध नहीं होती अर्थात् सम्यग्ज्ञान नहीं होता। जिस प्रकार सौ वर्षकी उम्रका कोई व्यक्ति हो; उसके सौ वर्षमेंसे बीचका एक समय भी निकाल दिया जाये तो उस व्यक्तिकी सौ वर्षकी अखण्डता नहीं रहती, परन्तु उसके दो टुकड़े हो जाते हैं उसी प्रकार आत्मा अनंतधर्मोंका अखण्ड पिण्ड है; उसमेंसे उसके एक भी अंशको निकाल दें तो 'अखण्ड वस्तु सिद्ध नहीं होती।

यहाँ नयसे जिन-जिन धर्मोंका वर्णन किया है, वे धर्म आत्माके हैं इसलिये नयज्ञान स्वको ओर देखता है। परकी ओर देखनेसे आत्माके धर्मोंका यथार्थ ज्ञान नहीं होता, परन्तु आत्माकी ओर उन्मुख होनेसे ही उसके धर्मोंका यथार्थ ज्ञान होता है।

केवली भगवानको तेरहवें गुणस्थानमें योगका कम्पन है, वह उनका अनियतधर्म है; अघातिकर्मके कारण वह कम्पन नहीं है। योगका कम्पन भी आत्माका अपना औदयिक भाव है; वह भी स्वतत्त्वका धर्म है। द्रव्य और पर्याय दोनों मिलकर प्रमाण हैं, पर्यायका धर्म भी आत्माका अपना धर्म है; पर्यायका धर्म कहीं परके आधार पर अवलम्बित नहीं है। पर्यायमें जो विकार हुआ, उस पर्यायरूपसे कौन भासित होता है ?—अनियतनयसे आत्मद्रव्य स्वयं ही विकाररूप भासित होता है; कहीं परद्रव्य विकाररूप भासित नहीं होता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वस्तुके अनन्तधर्मोंको सर्वज्ञदेव प्रत्यक्ष जानते हैं; और साधक सम्यग्ज्ञानी उन्हें प्रतीतिमें लेते हैं। यह धर्म पूर्णरूपसे अपनी आत्माकी प्रतीति कराते हैं; धर्मी आत्माकी प्रतीतिके बिना धर्मकी प्रतीति नहीं होती। यह तो वीतरागताके मन्त्र हैं।

प्रमाणज्ञान करानेके लिये द्रव्य और पर्याय दोनोंकी बात साथ ही साथ ली है। नियतनय, द्रव्य अपेक्षासे आत्माके नियत-स्वभावको देखता है और उसी समय पर्यायकी अपेक्षासे आत्मामें अनियतस्वभाव भी है; उसे देखनेवाला अनियतनय है। आत्माकी पर्यायमें भूल और विकार सर्वथा हैं ही नहीं—ऐसा नहीं है; भूल और विकार भी आत्माका अपना अनियतस्वभाव है, और आत्माका स्थायी स्वभाव भूल रहित चैतन्यस्वरूपी है। वस्तुमें जैसा हो वैसा ही यदि न जाने तो ज्ञानकी महिमा क्या? और प्रमाणता क्या? आत्माके विकार रहित त्रिकालीस्वभावको ज्ञान जानता है। यदि स्वभाव और विकार—दोनोंको न जाने तो विकारमेंसे एकाग्रता दूर होकर स्वभावमें एकाग्र होना नहीं रहता, और सम्यग्ज्ञान भी नहीं होता इसलिये किसी प्रकारका धर्म नहीं होता।

द्रव्यरूपसे तो आत्मा सदैव एकरूप नियतस्वभावसे है, और उसकी पर्यायमें हीनाधिकताके अनेक प्रकार होते हैं इसलिये अनियतपना भी है। पर्यायमें अनेक प्रकार और विकार हैं, उन्हें यदि न जाने तो ज्ञान सम्यक् नहीं होता। जिस प्रकार अग्निमें उष्णता तो नियत है, और पानीमें उष्णता अनियमित है इसलिये कभी होती है और कभी नहीं भी होती। पानीका स्थायी स्वभाव नित्य ठण्डा होने पर भी उसकी वर्तमान पर्यायमें जो उष्णता है वह उसका अपना अनियतस्वभाव है; उष्णतारूप होनेकी उसकी अपनी क्षणिक योग्यता है; यदि उस अनियत उष्णतास्वभावको न जाने और पानीको एकान्त ठण्डा मानकर पीने लग जाये तो क्या होगा?—मुँह जल जायेगा! उसी प्रकार चैतन्यभगवान आत्मा उपशमरसका समुद्र नियतस्वभावसे सदा शुद्ध एकरूप होने पर भी उसकी व्यक्त पर्यायमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जो रागादि हैं वह भी उसका एकसमयका अनियतस्वभाव है। अपनी पर्यायमें वे रागादि हैं—ऐसा यदि न जाने और आत्माको सर्वथा शुद्ध माने तो उसे शुद्धताका अनुभव तो नहीं होगा परन्तु मात्र रागादिकी आकुलताका ही अनुभव होगा। आत्माकी पर्यायमें जो क्षणिक विकार होता है वह उसका अनियतस्वभाव है और वह 'अनियतनय'का विषय है, वह आत्माका स्थायी स्वभाव नहीं है। परन्तु यदि वह विकार एकसमयपर्यंत भी पर्यायमें न होता हो तो उसे दूर करके स्वभावमें एकाग्र होनेका प्रयत्न करना नहीं रहता; अर्थात् मोक्षमार्ग ही नहीं रहता। इसलिये द्रव्य और पर्याय—दोनोंका यथार्थ ज्ञान हो तभी मोक्षमार्गकी साधना हो सकती है।

वस्तुमें नियत और अनियत दोनों धर्म हैं। वस्तुका जो सदैव एकरूप रहनेवाला स्वभाव है वह नियत है, और जो क्षणिक स्वभाव है वह अनियत है। परन्तु क्रमबद्धपर्यायमें 'जो पर्याय होना हो उसके बदले उल्टी-सीधी होकर अनियत हो जाये—ऐसा यहाँ अनियतका अर्थ नहीं है। जिस प्रकार द्रव्य नियत है, उनके जड़-चेतनादि गुण नियत हैं, उसी प्रकार उनकी समय-समयकी पर्यायें भी नियत हैं। पर्यायोंका क्रम कहीं अनियत नहीं है; जिस समय जो पर्याय होना नियत है, उस समय वही पर्याय नियमसे होगी। सर्वज्ञ उसे जानते हैं। सर्वज्ञका ज्ञान अन्यथा नहीं होगा और वस्तुकी पर्यायोंका क्रम भी नहीं टूटता। अहो! इस निर्णयमें स्वतंत्र वस्तु-स्वभावका निर्णय आ जाता है, और पुरुषार्थकी सन्मुखता परकी ओरसे हटकर अपने ज्ञायकस्वभावकी ओर हो जाती है। यह अंतर्दृष्टिकी बात है। अनेक लोग अपनी कल्पितदृष्टिके अनुसार शास्त्र पढ़ जाते हैं, परन्तु पात्रता और गुरुगमके अभावसे अंतर्-दृष्टिका यह रहस्य नहीं समझ सकते। कोई तो ऐसा कहते हैं कि—'द्रव्योंकी संख्या नियत है, उनके चेतन-अचेतन गुण नियत हैं तथा प्रतिक्षण उनका किसी न किसी प्रकारका परिणमन होगा वह भी नियत है; परन्तु अमुक समयमें अमुक ही परिणमन होगा—यह बात नियत नहीं है; जैसे संयोग

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आयेंगे वैसी अवस्था होगी।' देखो, ऐसा कहनेवालेको स्वतंत्र वस्तु-स्वरूपकी कोई खबर नहीं है और सर्वज्ञकी भी श्रद्धा नहीं है। यह बात पहले कई बार विस्तारपूर्वक कही जा चुकी है। 'द्रव्यकी शक्ति तो नियत है, परन्तु परिणमन किस समय कैसा होगा वह अनियत है;—इस प्रकार नियत-अनियतपना वह जैनदर्शनका अनेकांतवाद है।'—ऐसा अज्ञानी लोग मानते हैं; परन्तु वह बात मिथ्या है; जैन-दर्शनके अनेकान्तवादका ऐसा स्वरूप नहीं है। नियत और अनियतका अर्थ तो जैसा कहा है वैसा ही है। द्रव्यस्वभावसे आत्मा नियत शुद्ध एकरूप होने पर भी उसकी पर्यायमें जो विकार होता है वह उसका अनियतस्वभाव है; विकार नित्य एकरूप रहनेवाला भाव नहीं है; इसलिये उसे अनियत कहा है—ऐसा समझना चाहिये।

नियतधर्मसे देखने पर आत्मा सदैव एकरूप शुद्ध ही भासित होता है और अनियतधर्मसे देखने पर वह विकारी भी है, अनेकरूप है। यदि आत्मामें अनियत रूपसे विकार होनेका धर्म न हो तो अनन्तकर्म एकत्रित होकर भी उसे विकारी नहीं बना सकते। विकार अनियत होने पर भी वह परके कारण नहीं है परन्तु आत्माका अपना भाव है। शुद्धस्वभाव त्रिकाल ध्रुव है, उसमें विकार नहीं है और पर्यायमें हुआ इसलिये उसे अनियत कहा है; परन्तु वह विकार होनेवाला नहीं था और हो गया—ऐसा अनियतस्वभाव नहीं है। पर्यायका जो नियतपना है वह बात यहाँ नहीं ली है, यहाँ तो नियतरूपसे त्रिकाली स्वभावको लिया है और अनियतरूपसे पर्यायकी क्षणिक अशुद्धता ली है।

—यहाँ २७ वें अनियतनयसे आत्माका वर्णन पूरा हुआ।

यहाँ प्रवचनसारके परिशिष्टमें पाँच समवायके बोल लिये हैं परन्तु वे दूसरी शैलीसे लिये हैं; उनमेंसे नियत तथा अनियत धर्मका वर्णन किया; अब आत्माके स्वभावधर्म और अस्वभावधर्मकी बात करेंगे। पश्चात् काल तथा अकाल तथा पुरुषार्थ और दैवका भी वर्णन करेंगे।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

[३०] कालनयसे आत्माका वर्णन

"आत्मद्रव्य कालनयसे, जिसकी सिद्धि समय पर आधार रखती है ऐसा है,–ग्रीष्म ऋतुके दिवस अनुसार पकनेवाले आम्रफल की भांति। आत्माकी मुक्ति जिस समय होना है उसी समय होती है—ऐसा कालनयसे ज्ञातव्य आत्माका एक धर्म है। जिस काल मुक्ति होती है उस काल भी वह पुरुषार्थ पूर्वक ही होती है; किन्तु पुरुषार्थसे कथन न करके "स्वकालसे मुक्ति हुई"—ऐसा कालनयसे कहा जाता है। स्वकालसे मुक्ति हुई इसलिये पुरुषार्थ उड़ जाता है–ऐसा नहीं है; स्वकालसे मुक्ति हुई उसमें भी पुरुषार्थ तो साथ ही है।

जिस समय मुक्ति होना है उसी समय होती है, किन्तु वह मुक्ति कहाँसे होती है?—द्रव्यमेंसे होती है, इसलिये ऐसा निर्णय करनेवालेका लक्ष अकेली मुक्तिकी पर्याय पर नहीं रहता किन्तु पर्यायके आधारभूत द्रव्य पर उसकी दृष्टि जाती है; "जिस काल मुक्ति होना हो उस काल होती है"—ऐसा धर्म तो आत्मद्रव्यका है, इसलिये आत्मद्रव्य पर जिसकी दृष्टि है वही इस धर्मका निर्णय कर सकता है; इसलिये इस निर्णयमें मुक्तिका पुरुषार्थ आ ही जाता है। अपनी मुक्तिपर्यायके कालको देखनेवाला वास्तवमें द्रव्यकी ओर देखता है, क्योंकि "जिसकी सिद्धि समयपर आधारित है"—ऐसा धर्म द्रव्यका है; द्रव्यकी ओर देखा वही अपूर्व पुरुषार्थ है। द्रव्यकी ओर देखनेवालेने निमित्त, विकार या पर्याय परसे दृष्टि उठा ली है, तथा एक-एक गुणके भेद पर भी उसकी दृष्टि नहीं है; ऐसी द्रव्यदृष्टिमें ही क्रमबद्धपर्यायका निर्णय, स्वकालका निर्णय, भेदज्ञान, मोक्षमार्गका पुरुषार्थ, केवलीका निर्णय—इत्यादि सब कुछ आ जाता है। कालनयका परमार्थ तात्पर्य भी यही है कि स्वद्रव्यकी दृष्टि करना। यह धर्म कहीं कालके आधारसे नहीं है किन्तु आत्माके आधारसे है, इसलिये मुक्तिके कालका निर्णय करनेवाला कालकी ओर नहीं किन्तु आत्माकी ओर देखता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

केवली भगवानके केवलज्ञानमें जो काल देखा उस काल ही मुक्ति होती है, मुक्तिका काल बदल नहीं सकता—ऐसा आत्मद्रव्यका एक धर्म है; आत्माके इस धर्मका निर्णय कहीं परसन्मुख देखनेसे नहीं होता किन्तु आत्मद्रव्यके समक्ष देखनेसे ही उसके धर्मका निर्णय होता है। कालनय भी किसे देखता है?—जिसकी सिद्धि काल पर आधार रखती है ऐसे आत्मद्रव्यको ही देखता है; इसलिये जो जीव अंतर्मुख होकर आत्मद्रव्यको देखता है उसीने कालनयको सच्चा माना कहा जाता है और उसका मुक्तिका काल अल्पकालमें ही होना होता है।

देखो, यहाँ एक-एक धर्मको सिद्ध नहीं करना है किन्तु पूर्ण आत्मद्रव्यको सिद्ध करना है; इसलिये धर्म देखनेवालेको स्वद्रव्याश्रित अनेक धर्मोंका निर्णय करनेमें अपना ज्ञान एक अपने आत्मोन्मुख करना है। इस प्रकार द्रव्यदृष्टि करके शुद्ध आत्माको प्रतीतिमें लेना ही इस सबका तात्पर्य है। जो जीव सम्पूर्ण आत्माको तो प्रतीतिमें लेता नहीं है और एक-एक धर्मको पृथक् करके देखता है, उसके सर्व नय मिथ्या हैं। प्रमाणज्ञानसे अनन्त धर्मात्मक अखंड आत्माको स्वीकार किये बिना उसके एक-एक धर्मका सच्चा ज्ञान नहीं होता, अर्थात् नय नहीं होता।

कालनय कहता है कि आत्मामें जिस समय सम्यग्दर्शन होना है उसी समय होगा, किन्तु ऐसा किसे लगा है?—जिसने द्रव्यसन्मुख दृष्टि की उसे! इसलिये जिसे यह बात जम गई उसे तो सम्यग्दर्शनका काल आ ही गया है। आत्माका जो धर्म है वह क्षणिक पर्यायके आधारसे नहीं है किन्तु द्रव्यके आधारसे है। पर्याय तो प्रतिसमय चली ही जाती है, एक गुणकी अनेक पर्यायें तो एक समयमें होती नहीं हैं, और द्रव्य तो सदैव एकरूप है; इसलिये उस द्रव्य पर दृष्टि जाते ही पर्यायके कालका या क्रमबद्धपर्यायका यथार्थ निर्णय होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रत्येक समयकी पर्यायका काल व्यवस्थित है। जिस पर्यायका जो काल है उसमें फेरफार नहीं हो सकता। यदि उसमें फेरफार हो तो वस्तुस्वभाव या केवलज्ञान ही सिद्ध नहीं होगा, केवलज्ञानको भी अव्यवस्थित मानना होगा, अतः त्रिकालवर्ती पर्यायोंके पिण्ड द्रव्य पर दृष्टि रखकर प्रत्येक समयकी पर्यायें व्यवस्थित हैं, प्रत्येक पर्यायका स्वकाल व्यवस्थित है ऐसा निश्चय करनेमें सच्चा पुरुषार्थ भी आ जाता है; क्योंकि पर्यायका निर्णय करनेवालेका मुख आत्मद्रव्य पर है, उसकी दृष्टिमें द्रव्यकी ही मुख्यता है; द्रव्य सन्मुख दृष्टिमें उसे पर्याय बदलनेकी बुद्धि नहीं रहती, किन्तु द्रव्यके आश्रयमें पर्यायका निर्मल परिणमन हो जाता है और अल्पकालमें केवलज्ञान प्राप्त कर लेता है। और पर्यायको अव्यवस्थित माननेवाला निःशंक हो ही नहीं सकता और व्यवस्थितके निश्चय बिना सच्चा पुरुषार्थ भी उसे नहीं होता।

अहो! वीतरागी संत चाहे जिस पक्षसे बात समझायें, किन्तु उसमें वस्तुका मूल स्वभाव ही बतलाना चाहते हैं।

जो मुक्तिका काल है उसी कालमें मुक्ति होती है—ऐसा कालनयसे आत्माका स्वभाव है। अब, आत्माको मुक्तिके समयका निर्णय करनेवालेको स्वभावसन्मुख दृष्टिसे ही वह निर्णय होता है, इसलिये स्वभावसन्मुख दृष्टिमें अल्पकालमें मुक्ति हो ऐसा काल उसको होता ही है। सर्वज्ञ भगवानने देखा है तभी मुक्ति होगी—ऐसा कालनयसे आत्माका धर्म है; किन्तु उस धर्मका निर्णय कब होता है? वह धर्म परके आश्रयसे नहीं है किन्तु आत्माके आश्रयसे ही है, इसलिये जब संपूर्ण आत्माको दृष्टिमें ले लें, तब उसके इस धर्मका निर्णय होगा। और जिसने आत्माको दृष्टिमें लिया उसके अल्पकालमें ही मुक्तिका स्वकाल अवश्य होता है। यह कालनय भी कहीं पुरुषार्थ उड़ानेके लिये नहीं है, किन्तु उसमें वीतरागी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञाताद्दष्टापनेका सम्यक् पुरुषार्थ आ जाता है, वह मोक्षका कारण है। जो अभेद स्वभाव पर दृष्टि करे उसीको यह नय यथार्थरूपसे जमता है; अन्य किसीको यह नय नहीं जमता।

शंका:—कालनयसे आत्माकी सिद्धि समय पर आधार रखती है, इसलिये अब हम क्या करें ? हमें तो कालकी ओर देखकर बैठना ही रहा ?

समाधान:—ऐसा नहीं है; सुन भाई ! कालनयसे जिसकी सिद्धि समय पर आधार रखती है—ऐसा कौन है ?—आत्मद्रव्य ! तो यह धर्म माननेवालेको काल सन्मुख देखना नहीं रहा किन्तु आत्माकी ओर देखना रहा। आत्मस्वभाव पर दृष्टि गई वहाँ स्वकाल अल्पसमयमें पकना ही होता है। यहाँ दृष्टान्तमें भी ऐसा आम लिया है कि जो ग्रीष्मऋतु आने पर पक जाता है; उसी प्रकार सिद्धांतमें ऐसा आत्मा लेना चाहिये कि स्वभावका निर्णय करके स्वभावकी ओरके सम्यक पुरुषार्थसे जिसकी मुक्तिका काल पक जाता है। सर्वज्ञदेवने तो मुक्तिका जो समय है वह देखा है, किन्तु "मैं मुक्त होऊँगा, मुक्त होना मेरे आत्माका स्वभाव है"— ऐसा जिसने निर्णय किया उसे बन्धन, संसार या रागकी रुचि नहीं रहती; किन्तु जिसमेंसे मुक्तदशा आना है ऐसे स्वद्रव्यकी ओर वह देखता है और अल्पकालमें उसकी मुक्तिका स्वकाल पक ही जाता है। जिसे रागकी या निमित्तकी रुचि है उसे वास्तवमें मुक्तिका निर्णय नहीं है। मुक्तिका निर्णय करनेवाला आत्माको देखता है, क्योंकि मुक्ति किसी निमित्तके, रागके या पर्यायके आश्रित नहीं है किन्तु आत्मद्रव्यके आश्रित है; इसलिये वह आत्मद्रव्यका अवलम्बन करके ज्ञाताद्दष्टा रहता है; उसे पर्यायबुद्धिका अधैर्य या उतावली नहीं होती, ज्ञाताद्दष्टारूपसे वर्तते हुए अल्पकालमें उसकी मुक्ति हो जाती है।

जिसने अपनी मुक्ति होनेका निर्णय किया कि स्वकालमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मुक्ति पर्याय होनेका धर्म मेरे आत्मामें है, उसने रागमें एकाग्र होकर वह निर्णय नहीं किया है किन्तु ज्ञाता द्रव्यमें ज्ञानपर्यायको एकाग्र करके वह निर्णय किया है; इसलिये वर्तमानमें वह साधक हुआ है; अब उसकी दृष्टि आत्मस्वभाव पर है, 'मैं शीघ्र मुक्ति करूँ और संसारको टालूँ'—ऐसी पर्यायदृष्टि उसके नहीं है, अब स्वभावमें एकाग्र होनेसे अल्पकालमें उसकी मुक्तदशा हो जायेगी।

मैं खूब शक्ति लगाकर झट अपनी मुक्ति कर डालूँ; दया; कठिन व्रत-तपादि करके जल्दी मोक्ष प्राप्त कर लूँ;—इस प्रकार पर्याय-सन्मुख देखकर आकुलता करे उसमें तो विषमता है; ऐसी विषमतासे मुक्त नहीं होती, किन्तु मैं तो ज्ञान हूँ,—इस प्रकार ज्ञान-स्वभावको लक्षमें लेकर उसमें एकाग्र होनेसे मुक्ति हो जाती है। ज्ञाता-दृष्टा स्वभावमें रहनेसे जिस समय मुक्त होना है उस समय हो जाती है; उस मुक्तिका समय आनेमें दीर्घकाल नहीं होता। अरे! शीघ्र मोक्ष करूँ—यह भी विषमभाव है, क्योंकि अवस्था ही वस्तुकी व्यवस्था है। शीघ्र मोक्ष करूँ—ऐसा कहे, किन्तु मोक्ष होनेका उपाय तो स्वद्रव्यका आश्रय करना है; वह उपाय तो करता नहीं है, फिर मोक्ष कहाँसे होगा? स्वद्रव्यकी दृष्टि करनेसे मोक्ष अल्पकालमें हो जाता है, किन्तु वहाँ मोक्षपर्याय पर दृष्टि नहीं रहती। स्वभावका अवलंबन रखकर ज्ञातादृष्टा हुआ उसमें पर्यायकी उतावली करना रहता ही कहाँ है? क्योंकि स्वभावके अवलम्बनसे उसकी पर्यायका विकास होता ही जाता है, अब मुक्ति होनेमें उसे अधिक काल नहीं लगेगा।

देखो, यह कालनयका रहस्य! जिसने इस कालनयसे भी आत्माका निर्णय किया उसके ज्ञानमें ज्ञातादृष्टापनेका धैर्य हो गया, उसके आत्मद्रव्यमें अल्पकालमें मुक्ति होनेका स्वकाल है ही; केवलीभगवानने भी अल्पकालमें उसका मोक्ष देखा है। कालनयसे आत्माकी मुक्ति समय पर आधार रखती है—ऐसा कहा उसमें पुरुषार्थकी निर्बलता नहीं है किन्तु स्वभावदृष्टिका बल है; इसका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निर्णय करनेवाला जीव द्रव्यस्वभाव पर दृष्टि रखकर बन्ध-मोक्षका भी ज्ञाता रह जाता है और अल्पकालमें उसको मुक्ति हो जाती है। केवलीभगवानके ज्ञानमें उसकी मुक्तिके प्रमाण अंकित हो गये हैं और उस आत्माके स्वभावमें भी वैसा धर्म है। अहो! इसमें मोक्षका पुरुषार्थ है किन्तु आकुलता नहीं है—ज्ञातादृष्टापनेका धैर्य है। उतावली करे तो उसके ज्ञातादृष्टापना नहीं रहा किन्तु आकुलता हुई—विषमभाव हुआ; वह तो मोक्षको रोकनेवाला है। श्रीमद् राजचन्द्रजी भी कहते हैं कि—जितनी उतावली उतनी कचास, और जितनी कचास उतनी खटास। स्वभावदृष्टिमें धर्मीको प्रमाद भी नहीं है; उतावली भी नहीं है, और न पुरुषार्थकी कचास भी है; स्वभावदृष्टिमें ज्ञातादृष्टारूपसे मोक्षका प्रयत्न उसको चालू ही है और अल्पकालमें मोक्षदशा हो जाती है।

देखो, आचार्यदेवने कालनयको गुप्त नहीं रखा; कालनयके वर्णनमें भी शुद्ध द्रव्यस्वभावके आश्रयका ही तात्पर्य निकलता है। अज्ञानी लोग बिना समझे अपनी स्वच्छन्द कल्पनासे विपरीत अर्थ करते हैं।

धर्मी कहते हैं कि—"भव मोक्षे पण शुद्ध वर्ते समभाव जो"—लेकिन वह किसकी दृष्टिमें? ध्रुवस्वभावकी दृष्टिमें; स्वभावदृष्टिमें बंध-मोक्षपर्याय पर धर्मीको समभाव है, अथवा बन्ध टालूँ और मोक्ष करूँ—इस प्रकार पर्यायकी विषमता पर उसकी दृष्टि नहीं है, किन्तु एकरूप चिदानन्दस्वभाव पर उसकी दृष्टि है, उस स्वभावकी दृष्टिमें अल्पकालमें भवान्त होकर मोक्ष हुए बिना नहीं रहेगा।

यह विकार मुझे नहीं चाहिये—इस प्रकार विकार की ओर देखता रहे तो वह विषमभाव है, उसका विकार दूर नहीं होता। मुझे विकार नहीं चाहिये—इस प्रकार जो विकारको टालना चाहता है उसकी दृष्टि विकारसन्मुख नहीं होती किन्तु शुद्ध स्वभाव पर होती है; शुद्धस्वभावमें विकार नहीं है इसलिये उस स्वभावकी दृष्टिसे विकार दूर होकर अविकारी मोक्षदशा प्रगट हो जाती है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मामें मोक्षदशा प्रगट होनेका जो काल है उसी काल वह प्रगट होती है—ऐसा आत्मद्रव्यका धर्म है;—ऐसा जिसने कालनयसे जान लिया उस जीवकी दृष्टि तो शुद्ध चैतन्यद्रव्य पर ही पड़ी है और उस द्रव्यके आश्रयसे अल्पकालमें अवश्य ही उसकी मुक्ति हो जाती है।

—इस प्रकार ३० वें कालनयसे आत्माका वर्णन पूरा हुआ।

[३१] अकालनयसे आत्माका वर्णन

"अकालनयसे आत्मद्रव्य जिसकी सिद्धि समय पर आधार नहीं रखती ऐसा है,—कृत्रिम गरमीसे पकाये जानेवाले आम्रफलकी तरह।"

जिसे स्वभावदृष्टि है वह जीव अल्पकालमें मोक्ष प्राप्त करता है। कोई जीव उग्र प्रयत्न द्वारा स्वभावमें एकाग्र होकर अल्पकालमें मोक्ष प्राप्त करे, वहां ऐसा कहा जाता है कि यह जीव उग्र पुरुषार्थ द्वारा शीघ्र मुक्त हुआ, इस जीवने अचिरेण अर्थात् शीघ्र मुक्ति प्राप्त की। तथा गुरु भी शिष्यको ऐसा आशीर्वाद देते हैं कि स्वभावके अवलम्बनसे तू अचिरं अर्थात् शीघ्र मोक्ष पदको प्राप्त करेगा। अकालनयसे ऐसा कथन किया जाता है परन्तु उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि मोक्षका जो समय है वह बदल जाता है। जैसे घासमें रखकर आमको पकायें, वहाँ भी वह आम तो उसके पकनेके कालमें ही पका है, लेकिन घासमें रखा था उससे ऐसा कहा जाता है कि वह आम घासमें रखकर जल्दी पका दिया। वैसे अल्प समयमें उग्र पुरुषार्थ करके जीव मुक्त हो वहाँ ऐसा कहा जाता है कि यह जीव पुरुषार्थसे शीघ्र मुक्तिको प्राप्त हुआ; वह अकालनयका कथन है और वैसा एक धर्म आत्मामें है। मुक्ति तो उसका जो समय था उस समय ही हुई, उसका समय कुछ बदल नहीं गया।

यह जीव आसन्न भव्य है, यह जीव पुरुषार्थ द्वारा शीघ्र मुक्ति प्राप्त करेगा—ऐसा कहा जाता है, उसका वाच्य भी वस्तुमें है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शिष्य भी गुरुके प्रति विनयसे कहे कि हे नाथ ! हे स्वामी ! आपने मुझे इस संसारसे तार दिया....यदि आप न मिलते तो हम अनन्त संसारमें भटकते भटकते मर जाते, आपके चरणकमलोंके प्रसादसे शीघ्र हमारे संसारका अन्त आ गया और अब शीघ्र ही हम अल्पकालमें मुक्ति प्राप्त करेंगे। आपके उपकारसे हमारा अनन्त संसार नष्ट हो गया और मोक्ष निकट आ गया—इस तरह अकालनयसे कहा जाता है, मोक्ष होनेका काल तो जो है वही है, वह कहीं उलटपुलट नहीं हो गया है।

आत्मा कैसा है ऐसा शिष्यने पूछा था। उसे आत्माके धर्मों द्वारा आत्माकी पहिचान कराते हैं। यहाँ आचार्यदेवने ४७ नयोंसे ४७ धर्मोंका कथन करके आत्माका स्वरूप बतलाया है। उनमें कालनयसे ऐसा कहा कि जिस समय जिसकी मुक्तिका स्वकाल है तभी वह मुक्तिको प्राप्त करता है। जैसे आम उसके मौसममें पकता है वैसे आत्माके स्वभावमें मुक्तिका जो समय है उस समय वह मुक्तिरूप परिणमित हो जाता है। स्वभावकी दृष्टि करके स्थिर हो वहाँ आत्माकी मुक्ति होती है। वहाँ आत्माकी अपने कालसे मुक्ति हुई ऐसा कालनयसे कहा जाता है। लेकिन वह मुक्ति बिना पुरुषार्थके नहीं हुई है।

उग्र पुरुषार्थ द्वारा जीवने शीघ्र मुक्ति प्राप्त कर ली—ऐसा अकालनयसे कहा जाता है, उसमें भी मुक्तिका जो समय है, वह तो वही है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं हो गया। अनन्त पुरुषार्थ करके जीवने बहुत कालके कर्मोंको अल्पकालमें नाश किया और शीघ्र मुक्ति प्राप्त की—ऐसा लक्षमें लेना वह अकालनय है।

यह जो धर्म कहे जा रहे हैं वे सभी धर्म शुद्ध चैतन्य वस्तुके आधारसे हैं; किसी निमित्तके आधारसे, रागके आधारसे, अकेली पर्यायके आधारसे अथवा एक एक धर्मके आधारसे यह धर्म विद्यमान नहीं हैं। अर्थात् इन धर्मोंका निर्णय करते समय धर्मी ऐसा चैतन्यद्रव्य लक्षमें आ जाता है। सम्पूर्ण वस्तुस्वभावको दृष्टिमें लिये

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बिना उसके धर्मका यथार्थ निर्णय नहीं हो सकता। आत्मद्रव्यकी सन्मुखतासे ही उसके धर्मकी यथार्थ प्रतीति होती है। चैतन्यस्वभाव सन्मुख जिसका पुरुषार्थ पलट गया हो उसे अचिरं (शीघ्र) मुक्ति हुए बिना नहीं रह सकती।

जैसे—अचानक सर्प वगैरहके काटनेसे छोटी उम्रमें कोई मनुष्य मर जाये तो वहाँ ऐसा कहा जाता है कि इस मनुष्यकी अकाल-मृत्यु हुई। यथार्थतः तो उसकी आयु जिस समय पूरी होना थी उस समय ही हुई है, कुछ जल्दी नहीं है, लेकिन लोक-व्यवहारसे अकालमें अवसान हुआ ऐसा कहा जाता है। वैसे ही आत्मामें एक ऐसा धर्म है कि आत्मा पुरुषार्थ करके अकालमें मुक्त हुआ अर्थात् शीघ्र मुक्तदशा प्राप्त की—ऐसा अकालनयसे कहा जाता है। जो जीव वस्तुस्वभावसे विपरीत मानता है और विपरीत प्ररूपणा करता है वह जीव प्रतिक्षण अनन्त संसारकी वृद्धि करता है, वैसे ही स्वभावदृष्टिके बलसे सम्यक्त्वी जीव संसारको एक क्षणमें नष्ट कर देता है और शीघ्र मुक्तिको प्राप्त करता है। ऐसा अकालनयसे कहा जाता है। पहले स्वभाव पर दृष्टि नहीं थी और संसार पर दृष्टि थी तब प्रतिक्षण अनन्त संसारकी वृद्धि करता है ऐसा कहा, और जहाँ सत्समागमसे विपरीत दृष्टिको बदलकर स्वभावदृष्टि की वहाँ एक क्षणमें अनन्त संसार नष्ट कर दिया—ऐसा अकालनयसे कहा जाता है। परन्तु संसार होना था और दूर हो गया अथवा उस समय मोक्ष नहीं होना था और हो गया—ऐसा अकालनयका अर्थ नहीं है। अकालनयसे पर्यायका क्रम बदल जाये–ऐसा नहीं है। लेकिन अनन्तकालके कर्म अल्पकालमें नष्ट कर दिये—ऐसा अकालनयसे कहा जाता है। छद्मस्थके ज्ञानमें यह नय होते हैं, केवलीभगवानके ज्ञानमें नय नहीं होते, उनको तो एक साथ सम्पूर्ण प्रत्यक्षज्ञान वर्त रहा है।

देखो, कालनय और अकालनयसे पृथक् पृथक् दो धर्म कहे हैं, वे दोनों धर्म अलग अलग जीवमें नहीं हैं परन्तु एक ही जीवमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दोनों धर्म एक साथ वर्त रहे हैं; इसी तरह नियत-अनियत आदि नयोंसे जो धर्म कहे हैं वे भी प्रत्येक आत्मामें एक साथ ही वर्त रहे हैं। एक जीव स्वकालानुसार मुक्ति प्राप्त करे और दूसरा जीव पुरुषार्थ करके अकालमें मुक्ति प्राप्त करे—ऐसा नहीं। अर्थात् एक धर्म एक जीवमें और दूसरा धर्म दूसरे जीवमें हो, ऐसा नहीं है। एक ही जीवमें समस्त धर्म एक साथ रहते हैं।

कालनयसे तो जीवको जिस समय मुक्ति प्राप्त करना है उस समय ही प्राप्त करता है और अकालनयसे उसमें अदलबदल हो जाये—ऐसा परस्पर विरोध नहीं है।

इस जीवने अपने स्वकालानुसार मुक्ति प्राप्त की ऐसा कहना वह कालनयका कथन है, परन्तु ऐसा जब कालनयसे कहा तब भी, बिना पुरुषार्थके उसे मोक्ष हुआ—ऐसा उसका अर्थ नहीं है, स्वकालके समय भी पुरुषार्थ तो मिला हुआ ही है।

और इस जीवने उग्र पुरुषार्थ द्वारा शीघ्र मुक्ति प्राप्त की—ऐसा कहना वह अकालनयका कथन है। परन्तु, पुरुषार्थसे शीघ्र मुक्ति प्राप्त की ऐसा जब अकालनयसे कहा तब भी मुक्तिका स्वकाल नहीं था और मुक्ति हो गई—ऐसा उसका अर्थ नहीं है, पुरुषार्थके समय उसका स्वकाल वैसा ही है।

इस प्रकार कालनय और अकालनय इन दोनों नयोंके विषय-रूप दोनों धर्म आत्मामें एक साथ विद्यमान ही हैं, ऐसा समझना चाहिये। यहाँ जिन धर्मोंका वर्णन किया जा रहा है उन सभी धर्मोंका अधिष्ठाता तो शुद्ध चैतन्यमूर्ति आत्मा है। ऐसे आत्माको दृष्टिमें लेना वही इन सब धर्मोंको जाननेका फल है।

—यहाँ ३१ वें अकालनयसे आत्माका वर्णन पूरा हुआ।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com